ISSN 2277-5587
Indexed in ULRICH & IIJIF
Impact Factor 3.193
Registered & Listed by UGC 43289

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

25TH VOLUME

Issue - 4 October-December 2017 RNI No. RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Issue - 4 Volume-25 October-December 2017

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Rajesh Choudhary
Deputy Director (Research)
Indian Council of Historical Research, **NewDelhi**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
BBD Govt. PG College, Chimanpura

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.)
National Archives of India, **NewDelhi**

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Contents

Volume-25 **Issue-4** **October - December 2017**

1. **कुंभाकालीन शिलालेखों में संरक्षित वंशावलियों का इतिहास लेखन में महत्व** **1-5**
   प्रो. एस.पी. व्यास, नई दिल्ली
2. **चर्मकार उपान्तिक वर्ग में आन्तरिक सामाजिक–आर्थिक स्तरीकरण का अध्ययन (मारवाड़ के विशष संदर्भ में)** **6-9**
   डॉ. अनिल पुरोहित, जोधपुर
3. **अवध में मुशायरे का विकास (1722–1856)** **10-15**
   डॉ. चित्रगुप्त, झांसी (उत्तरप्रदेश)
4. **दौसा जिले में जनसंख्या की आर्थिक क्रियाओं का भौगोलिक अध्ययन** **16-23**
   जे.एन. गुर्जर, अजमेर एवं अभिषेक वशिष्ठ, दौसा
5. **प्रगतिवादी विचाराधारा एवं नागार्जुन के उपन्यास** **24-28**
   प्रियंका यादव, जयपुर
6. **बून्दी जिले में सामाजिक–आर्थिक विकास के स्तर** **29-33**
   भूपेश जेतवाल, बून्दी
7. **नवमानववाद – व्यक्ति की स्वतंत्रता का दर्शन** **34-36**
   ज्योति देवल, अजमेर
8. **विदेशी यात्रियों द्वारा वर्णित मुगलकालीन सामाजिक स्थिति : एक विवेचन** **37-40**
   ईश्वर सिंह, अदमपुर (हरियाणा)
9. **समकालीन कविता में आदिवासी जीवन** **41-44**
   हरिकेश मीना, करौली
10. **राजस्थान वस्त्र परम्परा पर मुगल प्रभाव** **45-50**
    इन्दिरा, जयपुर
11. **भारत–आसियान सम्बन्ध : भारतीय विदेश नीति में बदलाव का प्रतीक** **51-58**
    डॉ. प्रेमलता परसोया, कोटा
12. **आधुनिक समाज में टूटते परिवार का संत्रास** **59-62**
    संदीपा विश्वकर्मा, कानपुर (उत्तरप्रदेश)
13. **शिक्षा के उद्देश्य : जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में** **63-66**
    सुषमा शर्मा, श्री गंगानगर
14. **नेहरू का लोकतंत्र : संकट के दौर में** **67-71**
    कैलाशचन्द सामोता, जयपुर
15. **जैन धर्म/दर्शन में अष्टांग योग** **72-76**
    डॉ. पुनीत कुमार मिश्र, मथुरा (उत्तर प्रदेश)
16. **राजस्थान में मनरेगा के अन्तर्गत सामाजिक अंकेक्षण की भूमिका** **77-81**
    कृष्णकांत मीना, जयपुर

17. **वैश्विक परिप्रेक्ष्य में साहित्य और समाज का अंर्तसम्बन्ध (डॉ. मधु संधु की कहानियों के संदर्भ में)** **82-86**
डॉ. दीप्ति, अमृतसर (पंजाब)

18. **ग्रामीण महिलाओं का यथार्थ : एक विवेचन (गुर्जर महिलाओं के विशेष सन्दर्भ में)** **87-90**
डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर, जयपुर

19. **नागार्जुन के उपन्यासों में दलित चेतना** **91-93**
जितेन्द्र कुमार बरबड़, उदयपुर

20. **19 वीं शताब्दी में कन्यावध एवं सती प्रथा उन्मूलन के प्रयास (मेवाड़ के सन्दर्भ में)** **94-99**
प्रीति मीना, जयपुर

21. **इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता : संवेदना के नए आयाम (कवि संजय कुंदन, हरिओम राजोरिया, हरे प्रकाश उपाध्याय एवं कवयित्री निर्मला पुतुल के विशेष सन्दर्भ में)** **100-102**
अंसारी मोहम्मद इकराम, पाटन (गुजरात)

22. **अंतर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा स्थापना में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका** **103-108**
दिनेश कुमार जांगिड़, जयपुर

23. **हिन्दू कोड बिल और डॉ. भीमराव अम्बेडकर** **109-111**
विरेन्द्र सिंह गौड़, जोधपुर

24. **कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चिकित्सा पद्धति** **112-114**
डॉ. सुनिता मीना, सवाई माधोपुर

25. **कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप : तन्त्र शास्त्र की दृष्टि से** **115-118**
प्रीति सिंह, जयपुर

26. **उत्तराखण्ड की सामरिक स्थितिः चीन व नेपाल के परिप्रेक्ष्य में** **119-123**
डॉ. सुरेन्द्र सिंह कुंवर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

27. **Women as Catalysts of Change in The Social Stratification in Ancient India (With Special Reference to The Sudra Women)** **124-130**
Dr. Manorama Upadhyaya, Jodhpur

28. **Post Modernist Artifice in The Novels of Namita Gokhale** **131-134**
Rasmi Agrawal, Kota

29. **Ramacharitmanas in Multiple Garbs** **135-137**
Dr. Charulata Verma, Shriganganagar & Dr. Dinesh Kumar Charan, Churu

30. **Impact of Quality of Services in Brand Image in Banking Industry** **138-143**
Dr. Asha Sharma, Delhi

31. **Regional Planning in Rajasthan: A Micro Level Study of Deoli Tehsil** **144-151**
Dr. Sandeep Yadav & Nikita Mangal, Bundi

32. **Understanding Community Policing: Community Mobilization for Crime Prevention in India** **152-158**
Dr. Shalini Chaturvedi & Rahul Verma, Jaipur

33. **Population Density: Types & Models in The Cities of Rajasthan** **159-164**
Dr. Jaya Bhandari, Jodhpur

34. **Role of Panchayati Raj Institutions in Education and Development of Rural India** **165-170**
Dr. Meenkashi Yadav, Kota

35. **Industrial Scenario of Pali City** **171-178**
Deepak Sharma, Jaipur

कुंभाकालीन शिलालेखों में संरक्षित वंशावलियों का इतिहास लेखन में महत्व

प्रो. एस.पी. व्यास
एमरटियस् फैलो, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

इतिहास–लेखन में राष्ट्रीय इतिहास के साथ–साथ, क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास का महत्व बढ़ा है। वंशावलियाँ 'नवीन पीढ़ियों को जड़ों से जोड़ने के साथ पूर्वज–पूजा का एक साधन था। साथ ही संस्कृति एवं परम्पराओं,साम्राज्यों के उत्थान–पतन, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं के विकास को जानने में सहायक है। मेवाड़ के शिलालेखों में वंशावलियों का उत्कीर्णन इतिहास–लेखन में महत्वपूर्ण स्त्रोत होने के साथ तत्कालीन व्यवस्था, स्तरीकरण, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति राजनैतिक–प्रशासनिक दृष्टिकोणों एवं विचारधाराओं को समझने का उत्तम आधार है।

संकेताक्षर : *इतिहास–लेखन, क्षेत्रीय इतिहास, चारण साहित्य, वंशावली लेखन, अंदरूनी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था, प्रशस्ति गायन।*

पिछले कुछ दशकों में इतिहास–लेखन में वैकल्पिक एवं समानान्तर लेखन का उदय दिखलाई पड़ रहा है। इसका मूल कारण है इतिहास की सैद्धान्तिक व्याख्याओं में परिवर्तन 'स्थूल' व्याख्याओं का स्थान 'सूक्ष्म' व्याख्याओं ने ले लिया है तथा 'महान वृत्तान्तों' का स्थान 'स्थानीय वृत्तान्तों' ने। इसने इतिहास अध्ययन का दायरा अत्यन्त विस्तृत कर दिया है – राष्ट्रीय इतिहास के साथ–साथ, क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास का महत्व बढ़ा है तथा स्थानीय इतिहास की राष्ट्रीय इतिहास के निर्माण में उपयोगिता को स्थापित कर दिया है। इन नवीन अध्ययन प्रवृत्तियों ने कुछ ऐसे स्त्रोतों की उपयोगिता को परिलक्षित किया है – जो चारण साहित्य का हिस्सा माने जाते रहे – जिनकी वस्तुनिष्ठता पर संदेह के कारण उनकी अस्वीकार्यता थी। निश्चित रूप से इस प्रकार के स्त्रोत अतिशयोक्तिपूर्ण प्रस्तुतिकरण वाले होते हैं – किन्तु इतिहास–लेखन में ये नवीन आयामों को जोड़ने का कार्य भी करते हैं। 'वंशावलियाँ' – ऐसा ही एक स्त्रोत है, जो कई नवीन सूचनाएँ प्रदान कर सकता है। इस संबंध में प्रसाद सखलानी[1] ने लिखा है

Vanshavallis or genealogical rolls of the ancient rulers may be taken as an important local source of history, supplying a long list of the names of the kings. It thus helps us to get us an insight into the traditions and customs prevailing among the royal families. From ancient times, it has been a custom in the royal and noble families to keep a careful record of their pedigree in the document called Vanshavalli."

वंशावलियों का उल्लेख, शिलालेखों में उनका अध्ययन एवं पुनर्लेखन कहीं न कहीं एक काल विशेष में अपने पूर्वजों की स्मृति एवं कीर्ति को अक्षुण्ण रखने एवं नवीन परिस्थितियों में नवीन पीढ़ियों को उनकी उपलब्धियों से परिचित करवाने तथा ''जड़ों से जोड़ने'' का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। संभवतः नव–उदित एवं पुनर्स्थापित साम्राज्यों के शासकों द्वारा पूर्वज–पूजा का ये एक साधन था। वर्षों पूर्व जिन पूर्वजों द्वारा एक सृजन की आधारशिला रखी गई एवं उसके लिये उनके द्वारा जो प्रयास किये गये, उन्हें स्वयं की समकालीन पीढ़ी से परिचित करवाने का प्रयास था – वंशावली लेखन अथवा क्षीण हुई कीर्ति की पुनर्स्थापना का प्रयास। 'वंशावली–लेखन' – Identity Crisis से जूझ रही पीढ़ियों को अपनी जड़ों से जोड़ने का एक माध्यम था। इसे गौरवशाली इतिहास की जुगाली भी कहा जा सकता है अथवा स्वयं की पहचान की आधारशिला। इस रूप में ये वंशावलियाँ इतिहास–अध्ययन एवं लेखन का महत्वपूर्ण स्त्रोत बन जाती है।

वंशावलियाँ व्यक्तिगत पहचान को बनाए रखने का साधन तो थी हीं, साथ ही संस्कृति एवं परम्पराओं को अक्षुण्ण रखने का अध्ययन भी। इनका अध्ययन साम्राज्यों के उत्थान–पतन, पारस्परिक संबंधों, रीति–रिवाज–परंपराओं, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं के विकास को जानने में सहायक है। भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का अस्तित्व वंश–परम्परा में खोजा जा सकता है। इसकी समृद्ध परम्परा के संबंध में हीगेल ने उचित ही कहा था – ''समस्त पश्चिमी जगत के लिये भारत अग्रणी बिन्दु है।'' अपनी पुस्तक 'इण्डिया – व्हाट इट कैन टीच', में लिखा है –All that we value, mosthas come from the East ...India will appear to you the mother of Human race, the cradle of all traditions."

भारतीय इतिहास लेखन एवं अध्ययन की सबसे बड़ी चुनौती यह रही है कि हमारे इतिहासकारों ने भारतीय स्त्रोतों को कहानियों एवं कथाओं के रूप में खारिज करते हुए उनकी उपयोगिता को नकार दिया है। वंशावलियों का अध्ययन भी केवल राजाओं के नामों की सूची कहकर खारिज कर दी जाती है। इसका मूलभूत कारण यह है कि हमने 'पश्चिम केन्द्रित' संस्कृतियों को मानव विकास की उच्चतम सीमा स्वीकार कर उन व्यवस्थाओं एवं आदर्शों को आधार बनाकर भारतीय इतिहास का अध्ययन किया करते हैं। टॉड महोदय की भांति हम प्राचीन वंश–परम्परा का अस्तित्व विदेशी उदय में ढूँढ़ने लगते हैं। यदि इनका अध्ययन सप्रमाण साक्ष्यों के आधार पर किया जाये, तो भारतीय इतिहास के अनेक अनसुलझे प्रश्नों का उत्तर प्राप्त किया जा सकता है।

वंशावलियों का इतिहास लेखन में महत्व

सामाजिक इतिहास–लेखन में वंशावलियों का महत्वपूर्ण स्थान है। रोमिला थापर ने वैदिक काल में राज्य संस्था के विकास को सामाजिक संदर्भ के विकास का सामाजिक संदर्भ में एक भिन्न परिकल्पना के साथ रखा है तथा पारम्परिक वंशावलियों के आधार पर कालक्रम के पुनर्निर्धारण को आवश्यक माना है। वंश–परम्परा से राज्य में निर्माण पर किये गये अपने एक स्वतन्त्र अध्ययन में रोमिला थापर[2] (From Leneage to state) ने प्रथम सहस्त्राब्दी ई.पू. के मध्य वंश–परम्परा पर आधारित समाज से पूर्ण राजतंत्रीय वर्गीकृत समाज के विकास की परिकल्पना की है। पार्जिटर द्वारा[3] पौराणिक आधार पर तैयार की गई राज वंशावलियों में मनु से नंदों के पतन तक कुल 135 पीढ़ियों के राजाओं द्वारा इस देश के विभिन्न भागों में राज्य करने की सूचना मिलती है।

वंशावलियों के अध्ययन से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जातियों का उदय, विकास एवं जातियों में परिवर्तन स्पष्ट रूप से परिलक्षित किया जा सकता है। जैसा प्रो. रामशरण शास्त्री[4] का मानना है कि जातियों का उदय समझने हेतु हमे उनके मूल तथा उत्पत्ति के सिद्धांतों को समझना होगा। इसी प्रकार के विचार एम.एन. श्रीनिवास द्वारा व्यक्त किये गये हैं।[5]

इसी प्रकार से आर्थिक इतिहास के अध्ययन हेतु भी वंश–परम्परा का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप आत्मनिर्भर रहा है। इस आत्मनिर्भरता और अंदरूनी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था को बनाए रखने में अनुवांशिक कारीगरों और कामगारों का बड़ा महत्व था। जाति–आधारित अनुवांशिक काम पीढ़ी–दर–पीढ़ी– से संचित 'विशिष्ट कौशल' का योगदान बनाता था।[6] भारत में कारीगर–कौशल एवं अर्थव्यवस्था तथा दस्तकारी उद्योग के विकास के मूल्यांकन हेतु Labour genealogies मे का अध्ययन आवश्यक है।

पालीवाल ब्राह्मणों, माहेश्वरियों, जैनों तथा ओसवालों की वंशावलियों के अध्ययन तत्कालीन व्यापारिक स्थिति का भान होता है। अतः वंशावलियों का अध्ययन भारतीय इतिहास लेखन का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत स्वीकार किया जा सकता है।

कुंभाकालीन अभिलेखों (विशेषतः शिलालेखों) में संरक्षित वंशावलियों के अध्ययन बहुत सारी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सूचनाएँ मिलती है। साथ ही इनका तुलनात्मक एवं सूक्ष्म अध्ययन इतिहास के कई तथ्यों को नवीन रूप में प्रस्तुत करता है। मेवाड़ के शिलालेखों में वंशावलियों की उत्कीर्णन एवं पुनर्लेखन के कारणों को स्पष्ट करते हुए अल्रिक व्यूज़र[7] ने लिखा है :–

These are interesting as historical texts for several reasons. First, they were created when a new dynasty gained power over an area, which had for sometime belonged to the Sultanate of Delhi. After the Conquests of large parts of Western India by the Sultan around 1300, the political and social structures were much altered compared to the medieval times before that. Second, the kings of Mewar undertook the reconstruction and creation of a huge and exceedingly complex legitimatory apparatus at that time. Old and new elements were assembled and manipulated, so that on one Land they could represent continuity, but were also adjusted to the new demands. Third, from the early medieval

times onwards the area developed an independent historiographical tradition; a tradition which relied heavily on information gained from earlier inscriptions, which were assessed critically. This tradition was employed again, but altered to serve the contemporary needs. Fourth, we are fortunate to gain some insight in what we call "intertextuality" as we have other contemporary texts which mirror content and method of compiling these inscriptions: So we can place them in a wider context and examine them as a part of a network of references.

संक्षेप में इन वंशावलियों के निर्माण में राजनैतिक–सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना, नवीन एवं प्राचीन के बीच संवाद की स्थापना, प्रमाण–पुरूषों की परंपरा की स्थापना तथा साहित्य में निहित सूचनाओं का प्रमाणीकरण, आधारभूत कारण रहे।

(I) समाधिश्वर महादेव मंदिर प्रशस्ति – 1428 ई. की चित्तौड़ स्थित समाधिश्वर महादेव मन्दिर प्रशस्ति में देव–वंदना के पश्चात् गुहिल वंश की धर्म संस्थापना तथा कार्य–क्षमता की प्रशंसा की गई है।[8] प्रशस्ति के 5वें श्लोक में कहा गया है[9] – ''यहाँ गुहिलवंशी राजाओं की जागृत प्रशस्ति का अवतरण किया जा रहा है, जो इस पवित्र भूमि पर धर्म एवं कर्म के उदय हेतु रहे।'' गुहिलवंशी राजा को इन्द्र के समान बताया गया है। इस प्रशस्ति में बप्पा रावल से अरिसिंह से पूर्व तक के शासकों का नामोल्लेख नहीं है जैसा कि रणकपुर के चौमुख मंदिर अभिलेख में है या अन्य प्रशस्तियों में है। मेवाड़ क्षेत्र पर अरिसिंह के अधिकार, का विस्तृत विवरण है – यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि इस प्रशस्ति में[10] अरिसिंह की साधनहीनता तथा विपरित परिस्थितियों के होते हुए भी श्रेष्ठ पराक्रम के आधार पर पृथ्वी को धारण करने वाला शासक बताया गया है। स्पष्ट है ये विवरण – गुहिलोतों की प्रारंभिक राजनीतिक स्थिति को बोध करवाता है तथा राज्य–निर्माण का संकेत भी देता है। इस प्रशस्ति में गुहिल महारावल परिवार (जेत्रसिंह से लेकर रत्नासिंह तक) तथा प्रारंभिक सिसोदिया शासक लक्ष्मणसिंह का उल्लेख स्पष्ट नहीं है जबकि इसकी पूर्ति रणकपुर चौमुख मन्दिर अभिलेख में हो जाती है।[11] जहाँ हम्मीर का वर्णन है, उसकी तुलना में अच्युत, कामदेव, ब्रह्मा, शंकर, कर्ण से की है तथा विस्तार से हम्मीर की योद्धिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों का विवरण दिया गया है –

जित्वा दुर्ग समग्रं नरपतिमहितं साधुवादस्य ..... ।

क्षेत्रसिंह के समय की समृद्धि का वर्णन उसके द्वारा स्थापित शान्ति से है जो अलाउद्दीन के आक्रमण के कारण भंग हो गई थी। लाखा (लक्षसिंह) को भी इसमें एक वीर योद्धा के रूप में उपस्थित किया गया है। प्रशस्ति लेखन में कई काल्पनिक विवरण भी हैं, जिनकी पुष्टि किसी भी साक्ष्य से नहीं होती। शासक के प्रशस्ति गायन के कई बार अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन दिखलाई पड़ते हैं, जैसे मोकल की विजयों में चीन, कश्मीर को सम्मिलित कर ऐतिहासिक तथ्यों को नष्ट किया गया है, परन्तु इसमें दिये गये नागोर के सुल्तान को परास्त करने का वर्णन तथ्यपूर्ण है। मोकल द्वारा चित्तौड़ के प्रासादों के निर्माण, सुवर्ण तुलादान तथा द्वारिकाधीश के मन्दिर का बनाना रोचक रूप से प्रस्तुत किया गया है।

समाधीश्वर लेख से सिसोदिया वंश के मेवाड़ के प्रमुख चार शासकों की उपलब्धियों का संकेत मिलता है।

(ii) रणकपुर चौमुख मंदिर प्रशस्ति : वंश–परम्परा को जानने की दृष्टि से यह प्रशस्ति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह छोटी किन्तु महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रशस्ति है, इसको हम तीन भागों में बांट सकते हैं –

(1) राजवंश वर्णन
(2) धरणा श्रेष्ठी वंश वर्णन
(3) प्रतिष्ठादि उल्लेख।

इसका सबसे महत्वपूर्ण अंश राजवंश वर्णन है। जैन लेखकों के पास उस समय भी ऐतिहासिक परंपराएँ विद्यमान थीं।[12] वंशावली संबंधी उल्लेखनीय भूल है तो बप्पा को गुहिल का पिता मानना – श्री मेदपाटराजाधिराज श्रीबप्प 1 श्री गुहिल 2 भोज 3 ....।[13] कुंभा के समसामयिक सब ही प्रशस्तिकार इस भ्रांति में बराबर पड़े ही रहे। कुंभलगढ़ की विस्तृत प्रशस्ति में भी, जो बहुत ही शोधपूर्ण है, उसमें भी बप्पा की तिथि संबंधी भूल विद्यमान है।[14] यह भूल लगभग 200 वर्ष पूर्व के चित्तौड़ के रावल समरसिंह के लेख में भी विद्यमान है।[15] अभिलेख में महारावल एवं महाराणा दोनों की परंपरा के नामों का स्पष्ट उल्लेख है किन्तु कुछ नाम छोड़ दिये गए हैं – महेन्द्र नागादित्य, अपराजित, महेन्द्र द्वितीय, खुमाण प्रथम, मत्तट, खुमाण तृतीय, भार्तभह्ल द्वितीय, शालिवाहन, अम्बाप्रसाद, शुचिवर्मा और रतनसिंह प्रथम। समरसिंह के पश्चात् बप्पा के वंश के भुवनसिंह का उल्लेख है, यह सिसोदिया के राणा शाखा का था, इनके पुत्र भीमसिंह का नाम छोड़ दिया है। डॉ. दशरथ शर्मा द्वारा प्रस्तुत की गई सूची से यह सूची भिन्न है।[16] इस प्रशस्ति में कुंभा के पूर्वजों के नामोल्लेख के अतिरिक्तसमाधीश्वर, प्रशस्ति की भांति

उपलब्धियों का वर्णन नहीं मिलता है। वंशावली में दूसरा उल्लेखनीय अंश महाराणा कुंभा का है। इस प्रशस्ति से ही कुंभा की प्रारंभिक विजयों का उल्लेख मिलता है। इनमें उल्लेखनीय है – बूंदी, गागरोन, सारंगपुर, नागोर, चाकसू, अजमेर, मंडोर, मांडलगढ़, खाटू आदि। इन नगरों पर विजय का उल्लेख कीर्तिस्तंभ–प्रशस्ति में भी है।

वंश–परंपरा के अध्ययन की दृष्टि से कुंभलगढ़ प्रशस्ति[17] में मेवाड़ की वंशावली का अध्ययन शाखानुसार किया गया है। इतिहास–लेखन की दृष्टि से शाखानुसार वंश–व्याख्या, तिथिक्रम के निर्णय में सहायक सिद्ध होती है। लोक संख्या 121 में बप्पा के विवरण के साथ गुहिलों की रावल शाखा का वर्णन है। फिर राजवंश शाखा का विवरण है जो योगराज के साथ समाप्त हो जाती है। फिर अल्लट के वंशजों का उल्लेख है। इस परंपरा के रणसिंह ने दो शाखाएं चलाई – रावल और राणा। एकलिंग महात्मय में इसका वर्णन अत्यन्त विस्तार से दिया हुआ है।[18] –

अथ कर्णभूमिभर्तुः शाखाद्वितीय विभाति भूलोके।
एक राडलनाम्नी राणानाम्नी परामहंती।।

इसमें इसके उत्तराधिकारी का नाम स्पष्टतः क्षेमसिंह दिया हुआ है। यह महणसिंह का छोटा भाई था। लोक संख्या 149 में इसका उल्लेख है। यह महणसिंह कौन था ? इसके बाद सामंतसिंह शासक हुआ। फिर अन्य नामों के साथ खुमाण के वंशजों की उपलब्धियों का उल्लेख है। चतुर्थ प्रशस्ति में हम्मीर शाखा का वर्णन आरंभ होता है जो कुंभा की विजयों के साथ समाप्त होता है। सभी प्रशस्तियों में हम्मीर का एकसमान विरूद मिलता है। विशमघाटी पंचानन साथ ही कुंभा के लिये विस्तृत विरूदों का प्रयोग मिलता है। प्रशस्तियों में वर्णित पूर्वज – सूचना के अतिरिक्त शासकों के कार्यों, धार्मिक रूचि, निर्माण कार्यों, प्रजा के प्रति दृष्टिकोण, सैनिक योग्यता आदि का स्पष्ट परिलक्षण होता है।

(2) श्रेष्ठि वंश परंपराः प्रशस्ति–प्रस्तुतिकरण में केवल राजवंशावलियों का ही विवरण नहीं मिलता अपितु मेवाड़ के श्रेष्ठ वर्ग की सामाजिक चेतना, उनके कल्याणकारी कार्यों का उल्लेख भी मिलता है। स्पष्ट है वंशावलियों का प्रशस्ति अंकन केवल राजपरिवार का अधिकार नहीं माना गया, वरन् तत्कालीन शासन एवं समाज ने इस माध्यम से कार्यों को सामाजिक स्वीकार्यता प्रदान की, ऐसा प्रतीत होता है। नागदा का अद्भुतजी की मूर्ति का लेख (वि.सं. 1494) कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इसमें महाराणा खेता के समय प्रसिद्ध रहे मेवाड़ के श्रेष्ठि रामदेव परिवार का विशद् वर्णन है। इस लेख में वंशावली रामदेव के पूर्वज लक्ष्मीधर से दी हुई है। इसका पुत्र लाधु हुआ था। रामदेव का वंशाक्रम कुछ इस प्रकार रहा – मेलादेवी से उत्पन्न पुत्र – सहणा – इसके पुत्र – रणमल – रणधीर, रणवीर, भांडा, सांडा, रणभूम, चउड़ा, कर्मसिंह तथा माल्हणदे से उत्पन्न – सारंग। रामदेव की पुत्री खीमाबाई के परिवार का वंशोल्लेख 1494 वि.सं. के वीसल परिवार के लेख में मिलता है। रणकपुर प्रशस्ति में तथा वि.सं. 1566 के आबू के अचलेश्वर लेख में धारणा श्रेष्ठि वंश का वर्णन मिलता है।[19] धारणा और रतना का परिवार पहले सिरोही से मालवे में गया था। धरणा का परिवार मेवाड़ आ बसा, किन्तु रतना का परिवार मालवा में ही रह गया। धरणा के दो पुत्रों का स्पष्ट उल्लेख शिलालेखों में मिलता है। सालिग का पुत्र सहसा मालवे के शासक गयासुद्दीन का मन्त्री था तथा उसने अचलगढ़ में चतुर्मुख जिनालय बनवाया था। इसी प्रकार वि.सं. 1507 का रणकपुर के मन्दिर का सिंघवी भीमा का लेख, वि.सं. 1508 के श्रेष्ठि जगसी परिवार का लेख भी श्रेष्ठि परिवार की वंशावलियों का उनकी सामाजिक–धार्मिक उपलब्धियों का वर्णन करते हैं। इन सूचनाओं से श्रेष्ठि परिवारों के स्थानान्तरण (migration), व्यापारिक संबंधों, सांस्कृतिक योगदानों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। साथ ही जनसाधारण में जैन धर्म की लोकप्रियता की सूचना मिलती है।

सूत्रधार वंश–वर्णन : मेवाड़ की प्रशस्तियों में सूत्रधार वंशावलियों के विवरणों का प्राप्त होना, उनके सामाजिक महत्व को इंगित करता है। सामाजिक–इतिहास लेखन में 'आम–आदमी' के इतिहास तथा राजाओं के यशःगान के महान, वृत्तान्तों के बीच यह 'लघु–वृत्तान्त', का यह स्पष्ट संकेत देता है। मेवाड़ के शासक महान निर्माता रहे। सूत्रधार मण्डन की स्थापत्य एवं वास्तु की रचना अद्भुत थी। ''डाइनेस्टिक हिस्ट्री'' के विराट कैनवास पर कारीगर–वर्ग की उपस्थिति तत्कालीन इतिहास–लेखन की नवीनता का परिचायक है।

वि.सं. 1496 की रणकपुर जैन मन्दिर प्रशस्ति में रणकपुर मन्दिर के निर्माता सूत्रधार देपाक या दीपा था। उसकी वंश परंपरा इस प्रकार अंकित है – सूत्रधार वाछा – दीपा – अरबुद – हरदास। इस हरदास ने आबू की पित्तमलय की मूर्तियाँ बनाई थीं। कड़िया के लेख[20] में तिलभट्ट के वंशक्रम का उल्लेख है। इसमें तिलभट्ट को मेवाड़ के राजपरिवार के गुरू के रूप में माना है। तिलभट्ट की पत्नी तारादेवी के परिवार का उल्लेख भी है।[21] सूत्रधार जइता परिवार के कई लेख कीतिस्तम्भ पर खुदे हैं। कीतिस्तम्भ के अतिरिक्त महलों का कुछ भाग व

कुम्भस्वामी मन्दिर भी इसी परिवार ने बनवाया था। इसमें सूत्रधार जइता के पुत्रों नापा, पुंजा, भूमी, चूपी थे।

मेवाड़ की कुंभाकालीन प्रशस्तियों में वर्णित वंशावलियाँ हमें तत्कालीन इतिहास के कई संकेत देती है। सामाजिक व्यवस्था, स्तरीकरण, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, धार्मिक रूचि, राजनैतिक–प्रशासनिक दृष्टिकोणों एवं विचारधाराओं को समझने की यह एक उत्तम आधार हो सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *प्रसाद सखलानी : एन्सियन्ट कम्यूनिटीज़ ऑफ द हिमालयाज़। पृ. 35, इण्डस पब्लिशिंग कम्पनी – नई दिल्ली*
2. *रोमिला थापर : फ्रॉम लिनियेज टू स्टेट, पृ. 18–19*
3. *पार्जिटर : एन्सियन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन, पृ. 1449–49, 179–183*
4. *रामशरण शर्मा : प्रारंभिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, पृ.*
5. *विस्तृत जानकारी हेतु देखें : एम.एन. श्रीनिवासः आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबन्ध पृ. 9–12*
6. *इरफान हबीब : भारतीय इतिहास में जातिय रचना अंक 22 जनवरी–फरवरी 2000, पृ. 6*
7. *अल्रिक व्यूज़र द्वारा एकनाथ कार्यशाला में प्रस्तुत किया गया पत्र – रिकन्सट्रक्टिंग रॉयल जीनियोलॉज़ीस इन 15th सेन्चुरी मेवाड़*
8. *अभिलेख का मूल पाठ – उपेन्द्र नाथ के कृत मेवाड़ अन्डर महाराणा कुंभा राजेश पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1978, के परिशिष्ट पृ. संख्या 158 से लिया गया है।*
9. *समाधिश्वर महादेव मन्दिर प्रशस्ति – लोक संख्या–5, मूलपाठ उपेन्द्रनाथ के – पूर्वोक्त से उद्धृत।*
10. *वही : लोक संख्या 12*
11. *देखें रणकपुर चौमुखा मन्दिर अभिलेख का मूल पाठ : उपेन्द्रनाथ डे : मेवाड़ अन्दर महाराणा कुम्भा, पृ. 166*
12. *रामवल्लभ–सोमानी : महाराणा कुम्भा (1490–1525) पृ. 340, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर 1968*
13. *रणकपुर चौमुखा मन्दिर प्रशस्ति अभिलेख का मूल पाठ : उपेन्द्रनाथ डे : पूर्वोक्त पृ. 166*
14. *कुंभलगढ़ प्रशस्ति*
15. *बाप्पा संबंधी यह मूल वि.सं. 1331 की चित्तौड़ की और 1342 की चित्तौड़ की और 1342 की आबू की वेदशर्मा की प्रशस्तियों में दृष्टव्य है। इनमें इसे गुहिल का पिता लिख दिया है। संभवतः प्रत्येक प्रशस्तिकार ने बिना पूर्ण जाँच किये बिना पुनर्लेखन कर लिया। इसके पूर्व के 1028 के नरवाहन के लेख में ''अस्मिन्दभूद्गुहिलगोत्रनरेन्द्रः श्री बप्पकः क्षितिपतिः क्षितिपीठरत्नम्'' वर्णित है।*
16. *विस्तृत सूची हेतु देखें : डॉ. दशरथ शर्मा : राजस्थान थ्रू द ऐजेज : पृ. 541–542 एवं 753–754, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 2014*
17. *कुंभलगढ़ प्रशस्ति की तृतीय शिला से उद्धृत।*
18. *एकलिंग महात्मय – पृ. 50*
19. *रामवल्लभ सोमानी : पूर्वोक्त पृ. 341*
20. *इस प्रशस्ति को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल को है, जिन्होंने वरदा वर्ष 6 अंक 3 पृ. 2 पर इसे सम्पादित कर प्रकाशित करवाया था।*
21. *गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, पृ. 39, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2011*

चर्मकार उपान्तिक वर्ग में आन्तरिक सामाजिक-आर्थिक स्तरीकरण का अध्ययन (मारवाड़ के विशष संदर्भ में)

डॉ. अनिल पुरोहित
सहायक आचार्य, महिला पी.जी. महाविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश
प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था के स्तरीकरण में सबसे निचला स्तर शूद्रों को प्राप्त था। कौशल निपुण होने पर भी मुख्य सामाजिक व्यवस्था में उन्हें निम्न स्थान ही प्राप्त था । उनके संस्कृतिकरण स्पष्ट बदलाव हमें गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल में मिलते है। मध्ययुगीन भारत में अनेक शिल्पकारों को सामन्ती पद प्रदान किये गये थे। जिससे उनकी सामाजिक स्थिती में अवश्य सुधार आया। राजस्थान के सामाजिक-आर्थिक इतिहास में समान रीति-रिवाज, परम्पराओं एवं व्यवस्थाओं के होने पर भी उनमें सामाजिक स्तरीकरण की भावना व्याप्त है। प्रस्तुत शोध - पत्र में रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज-मारवाड़ में वर्णित चर्मकार उपांतिक जाति के आंतरिक सामाजिक -आर्थिक स्तरीकरण का विशलेषण करने का प्रयास किया गया है।
संकेताक्षर *: सर्वहारा, शूद्र, दस्तकार, महत्तर, स्तरीकरण, व्यवसाय, नाता ।*

कार्लमार्क्स का यह कथन है कि, जिस समय सर्वहारा- वर्ग की सत्ता स्थापित होगी, उस समय वर्ग संघर्ष सदैव के लिये समाप्त हो जायेगा। किन्तु वास्तविक स्थितियों का यदि अध्ययन करें, तो मार्क्स की यह सोच मात्र यूटोपिया ही सिद्ध हो सकती है, क्योंकि साम्यवादी सरकारों (सर्वहारा का शासन) की स्थापना के साथ शोषण समाप्त नहीं हुआ।

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार वर्ण - व्यवस्था थी, जिसमें चार वर्णो को स्वीकारा गया है, यथा - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। इनमें स्तरीकरण में सबसे निचला स्तर शूद्रों को प्राप्त था, किन्तु यदि हम इस प्राचीन भारतीय व्यवस्था के इस वर्ण का अध्ययन करते है तो हमें ज्ञात होता है कि, इस वर्ण का विभाजन (आंतरिक रूप से) हो चुका था, जिसे हम तकनीकि शूद्र एवं गैर -तकनीकि शूद्र मान सकते है। यह विभाजन हमें इसलिये स्वीकारना चाहिये, क्योंकि क्षत्रिय वर्ण यद्यपि उच्च है, किन्तु उसके लिये युद्ध सम्बन्धी सामग्रियों, राजप्रासाद को सजाने - संवारने की सामग्रियों, सामान्य और राजउद्यानों की व्यवस्थाओं आदि कार्यों के लिये उन्हें जिन लोगों की आवश्यकता होती थी, वे सभी शूद्र वर्ण से जुड़े थे। इसके अलावा वैश्य वर्ण के लोग का मुख्य कार्य व्यापार करना था, किन्तु उनके लिये उत्पादों एवं उत्पादकों की प्राप्ति का स्त्रोत यही शूद्र वर्ण था, जो अपने कौशल से उपरोक्त सभी कार्य किया करता था। कौशल निपुण होने पर भी मुख्य सामाजिक व्यवस्था में उन्हें निम्न स्थान ही प्राप्त था, किन्तु अपने वर्ण में ये कौशल युक्त समुह अन्य सामान्य समूहों से उच्च था। शूद्रों में यह कौशल कैसे उत्पन्न हुए ? यह स्पष्ट रुप से नहीं कहा जा सकता हैं, किन्तु इसका एक कारण हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि, प्रारम्भ में भारत के अनेक क्षेत्रों में रहने वाली जंगली-जातियों को यद्यपि विजित क्षत्रियों ने किया, किन्तु उनका संस्कृतिकरण बाह्मणों ने किया तथा उन्होंने जीवन-यापन के तरीके वैश्यों से सीखें हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति के समीप रहने के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अलग-अलग तरीके से प्रयोग करना शूद्रों ने अधिक कुशलता से सीखा होगा। यद्यपि प्राचीन भारत में समाज की मुख्य व्यवस्था में शूद्रों की स्थिती में बदलाव आने लगे थे, किन्तु स्पष्ट बदलाव हमें गुप्त एवं गुप्तोत्तर भारत में मिलते है। स्कन्द पुराण में शूद्रों को अन्नदाता और गृहस्थ कहा गया हैं।[9] इस काल में दस्तकारों का अत्यधिक महत्त्व हुआ करता था। कोई भी क्षेत्र का स्वामी यह नहीं चाहता था कि, उसके क्षेत्र के दस्तकार उसका क्षेत्र छोड़ अन्य क्षेत्रों में चले जायें, क्योंकि से दस्तकार स्थानीय अर्थव्यवस्था का मुख्याधार थे। 7वीं शताब्दी के समुद्र गुप्त के दो अधिकार - पत्र प्राप्त होते है, जिनमें कर अदा करने वाले दस्तकारों एवं कृषकों से कहा गया है कि, वे गांव छोडकर ना जायें और ना ही करमुक्त क्षेत्रों में रहें।[10] कुछ चन्देल वंशी अनुदान पत्रों में भी दस्तकारों की ऐसी अनेक जातियों का वर्णन है,

 ISSN 2277-5587

जिन्हें दान किये जाने वाले ग्रामों के साथ पूर्णतः हस्तान्तरित कर दिया जाता था।[11] दक्षिण भारतीय इतिहास के स्त्रोतों में अनेक उदाहरण मिलते है, जिनमें अनेक दस्तकारों को मंदिरों एवं मठों को हस्तान्तरित किया गया था।[12] इसी प्रकार मध्ययुगीन भारत यद्यपि युद्धों का काल था, किन्तु दस्तकारों अथवा समाज के निम्नतम वर्ग की आवश्यकता इस काल भी समाज को अत्यधिक रही, क्योंकि जो सैनिक – अभियान हुआ करते थे, उनमें सेवा के विभिन्न कार्यों एवं आवश्यकताओं के लिये इन श्रम करने वाले लोगों की आवश्यकता थी। इस काल में अनेक शिल्पकारों को सामन्ती पद प्रदान किये गये थे। विजयसेना के देवपारा शिलालेखों से ज्ञात होता है कि, वारेन्द्र के शिल्पकारों की बस्ती के मुखिया शूलपाणी को रणक[13] की उपाधि दी गयी थी। इस काल में ठाकुर, राउत, नायक जैसी उपाधियां कायस्थ एवं उनके सम – जातियों को दी जाती थी, जिससे उनकी सामाजिक स्थिती में अवश्य सुधार आया होगा। आज भी ब्राह्मणों, राजपूतों, कायस्थों, नापतों, हज्जामों आदि उच्च एवं निम्न जातियों में ठाकुर मिलते है।

इस काल में ग्राम एवं भूमि सम्बन्धी रिकार्ड रखने का कार्य अहलक किया करते थे। इनमें कई श्रेणियां थी, जिनमें से कायस्थ प्रमुख थे। धीरे – धीरे यह पद महत्त्वपूर्ण हो गया तो, उच्चतर वर्ण के पढे– लिखे सदस्य भी इस पद की तरफ आकर्षित हुए। कल्हण ने लिखा है कि, बाह्मण शिवरथ को कायस्थ अधिकारी नियुक्त किया गया।[14] धीरे – धीरे उच्च वर्णो की विभिन्न श्रेणियों के लोग इस प्रकार के कार्यो से जुडने लगे तथा उन्होंने अपनी मूल श्रेणी से सम्बन्ध पूर्ण समाप्त कर लिये। कायस्थों की भांति ही इस काल में उत्तरी – भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम – प्रमुखों का एक वर्ग था, जिन्हे महत्तर कहा जाता था। भूमि – अनुदानों एवं भूमि की खरीद – फरोख्त के बारे में अपने क्षेत्र के महत्तर को सूचित करना अनिवार्य होता था। इसके अलावा ग्राम – विशेष के महत्तर की वहाँ की भूमि में काफी हद तक हिस्सेदारी हुआ करती थी। इससे प्रतीत होता है कि, प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शूद्र वर्ण का महत्तर पूर्व – मध्यकाल एवं मध्यकाल के समय में काफी अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। इसके अतिरिक्त अनेक उच्च वर्ग के लोग महत्तरों में परिवर्तित हो गये थें, इसी कारण हमें वर्तमान में मेहत्तर, महतो, महाथा, मल्होत्रा, मेहरीता आदि जातियां उच्च एवं निम्न दोनों प्रकार की जातियों में मिलती है।

गुप्तोत्तर काल में भारत आए ह्वेनसांग शूद्रों को खेतीहर स्वीकारता है।[15] किन्तु अलबरूनी, जो कि उसके कुछ शताब्दियों बाद ही भारत आया था, वह वैश्यों एवं शूद्रों की सामाजिक स्थिति में कोई विशेष अंतर नही बताता है।[16] जैसा कि स्कन्दपुराण में कहा गया था कि, वैश्य वर्ग का पतन हो जाएगा एवं वे तेल निकालने वाले एवं धान कूटने वाले बन जाएंगे। 11वीं शताब्दी तक ये परिवर्तन देखने को मिल जाते है।[17]

भारतीय इतिहास की भाँति क्षेत्रीय इतिहास में भी इस प्रकार का आंतरिक स्तरीकरण देखने को मिल जाता हैं। राजस्थान के सामाजिक–आर्थिक इतिहास पर विशेषतः मारवाड़ परगने के सामाजिक–आर्थिक स्तरीकरण पर सर्वप्रथम प्रामाणिक कार्य मारवाड़ नरेश जंसवतसिंह प्रथम के दीवान नैणसी ने अपने ग्रंथ 'मारवाड़ रा परगनां री विगत' के रूप में किया है। नैणसी के इस अध्ययन से हमें 17वीं शताब्दी में राजपूताना के एक बड़े हिस्से में व्याप्त जातियों के उदय एवं विकास की जानकारी हो जाती है। कालान्तर में कर्नल जेम्स टॉड के एनाल्स एण्ड एन्टिक्टीज ऑफ राजस्थान; एम.ए. रोरिंग के ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ राजपूताना; सी.टी. मैटकॉफ के दी राजपूत ट्राइब्स; मुंशी रायबहादुर मुंशीहरदयाल की रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राजमारवाड़,1891 (*Marwar Census Report-1891*) जैसे ऐतिहासिक ग्रंथों का आधार नैणसी की परगना री विगत ही रही होगी। मर्दुमशुमारी 1894 में प्रथम बार प्रकाशित हुई तथा इसमें 1891 में हुई तत्कालीन मारवाड़ की जन–गणना की रिपोर्ट है। इसमें तत्कालीन मारवाड़ की कौमों का इतिहास, रीति–रिवाज, परम्पराओं आदि का उल्लेख किया गया है। यह ग्रन्थ इसलिये भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें जिन कौमों–जातियों का उल्लेख किया गया है, उनका विभिन्न कालों में सामाजिक–स्तर परिवर्तन, व्यवसाय आदि का भी विवरण दिया गया है। मर्दुमशुमारी में जातियों का विभाजन छः श्रेणियां में (A,B,C,D,E,F) किया गया है। इनमें उपान्तिक वर्ग से सम्बन्धित श्रेणियां D एवं E है, इनमें भी E श्रेणी तुलनात्मक रूप से अधिक महत्वपूर्ण है। इन दोनो ही श्रेणियों में शिल्पी, कारीगर, मजदूर इत्यादि आदि उपान्तिक जातियों का सम्पूर्ण विवरण मिलता है।[18]

यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि, D एवं E श्रेणियों में आन्तरिक रूप से वर्ग – स्तरीकरण देखने को मिलता है। तथ्य यह है कि, इन श्रेणियों में जो विभिन्न जातियां मिलती है, उन जातियो में अनेक जो उप– जातियां है, उनमें समान रीति–रिवाज, परम्पराओं एवं व्यवस्थाओं के होने पर भी उनमें सामाजिक स्तरीकरण की भावना व्याप्त है। प्रस्तुत शोध – पत्र में रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज–मारवाड़ में वर्णित चर्मकार उपांतिक जाति के आंतरिक सामाजिक –आर्थिक स्तरीकरण का विशलेषण करने का प्रयास किया गया है। मर्दुमशुमारी में डी क्लास की चर्म–कार्य से संबंधित जातियां मुख्य रूप से चमार, मोची, रैगर, खटीक

एवं बलाई थी तथा ई क्लास में सरगरा जाति चर्म–कार्य से जुड़ी थी। यद्यपि 'ई' क्लास से भांबी, सांसी, थोरी आदि निम्नतर जातियां भी चर्म–कार्य से जुड़ी थी।

मारवाड़ के चमारों की उत्पत्ति स्थानीय लोग ब्राह्मणों से मानते हैं। इनका कहना है कि, दिल्ली के किसी ब्राह्मण के 7 पुत्र थे, एक बार इनकी रसोई में एक गाय आकर मर गयी, तब सबसे छोटे ब्राह्मण ने उसे घसीट कर घर से बाहर फेंक दिया। तब अन्य छः ब्राह्मणों ने उसे पुनः परिवार में स्वीकार नहीं किया। तब उसने मरे हुए मवेशियों को उठाने, खाल उतारने एवं रंग कर व्यवसाय करने का कार्य शुरू किया। उसी की संतानें चम्मार कहलाई। यह चम्मार दिल्ली से अजमेर एवं अजमेर से मारवाड़ आये।[19] मारवाड़ में आने के पश्चात् इस मूल चम्मार जाति के लोग मारवाड़ के विभिन्न हिस्सों में बस गये। आगे चलकर कार्यो के विभाजन के आधार पर इनसे चमार, मोची, खटीक, रैगर, बलाई, सरगरा, डबगर इत्यादि जातियां अस्तित्व में आयी।

इसमें से चमार मरे हुए विभिन्न पशुओं को उठाने एवं उनकी खाल को भी उतारने का कार्य मुख्य रूप से किया करते थे। चमार लोकदेवता रामदेव जी को मानते हैं, किंतु इष्ट इनका गंगाजी है। शराब का सेवन करते हैं। खान–पान रैगरों एवं भांबियों जैसा है किंतु उनमें यह संबंध नहीं करते हैं[20] क्योंकि ये रैगरों एवं भांबियो को अपने से निम्न मानते हैं। इसी प्रकार पूर्वी मारवाड़ में कुछ चमारों के समूह गाछों एवं मूंज का कार्य करते हैं[21] (जैसा कि सरगरा जाति के लोग करते हैं)। कार्य की समानता होते हुए भी वहां के चमार सरगरों में उनकी सामाजिक निम्नता के कारण संबंध नहीं करते हैं।

मारवाड की दूसरी चर्मकार जाति रैगर है। इनका मूल कार्य चमड़े को रंगने का है। यह लोग चमडे को देशी बबूल, आवंला की छाल, नमक, तेजाब आदि का प्रयोग करके रंगा करते है।[22] इस से चमड़ा रंगने के काबिल हो जाता है, इसे 'रांग' कहते है। रांग से चमड़े को रंगने वाले रांगर एवं कालान्तर में रैगर कहलाये।[23] यद्यपि रैगर यहां चमारों में से ही कार्यविभाजन के आधार पर निकलते है, किन्तु भीलवाडा जिले के हुरड़ा ग्राम से प्राप्त 1062 वि.स. के हुरड़ा लेख में इस जाति का नामोल्लेख आता है। जोधपुर में रैगरों को जटिया भी कहा गया है। यहां मुर्दा मवेशीयों की खाल को रंगने के कारण इन्हे जटिया कहा गया है, किन्तु ये लोग हिरण की खाल कभी नहीं रंगते है। बीकानेर में इन्हें जटियों को रंगिया एवं मेवाड़ में बूला कहा जाता है।[24] जटिया नाम के कारण यहां इनकी पत्नियॉ जाट स्त्रियों की भॉति पैरो में पीतल के कड़े पहनती है। ये लोग मृतको को जलाते भी है एवं गाड़ते भी है। सामाजिक नाते धोबी, डबगर, सरगरे, बावडी, महतर इत्यादि में निम्न मानकर नही करते है।[25]

मारवाड़ क्षेत्र की एक अन्य चर्मकार जाति डबगर है। मारवाड़ में ये दो है। हिन्दू डबगर एवं मुस्लिम डबगर। दोनों ही मूल रूप से राजपूत परिवारों की शाखाओं से थे। कार्यो के आधार पर इनमें दो डबगर है – सामान्य डबगर तो चमड़े को गालकर तेल, घी को रखने के कूपें एवं तराजू के पलड़े नक्कारो एवं मृंदग भी बनाते है, जबकि दूसरे ढालगर ढालो का निमार्ण एवं उन्हे रंगने का कार्य भी लेते है।[26] हिन्दु डबगरों के रीति रिवाज राजपूतों की भांति होते है। चूंकि इनका सम्बंध राजपूतों से रहा है, अतः यह अन्य सभी (चमार, रैगर,मोची,खटीक) चमार जातियों के हाथों से बनी रोटी तक नहीं खाते है। हिन्दू डबगर नाते भी राजपूत जातियो में ही करते है।[27] मुस्लिम डबगर मारवाडी मुस्लिमों की भॉति रीति रिवाज करते है।[28]

मारवाड़ क्षेत्र में चमड़े का कार्य शिल्प सहित कार्य करने वाली जाति मोची भी निवास करती है। मारवाड़ में हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही प्रकार के मोची है। हिन्दू मोची सामान्यतय यहॉ के प्रत्येक परगने में हैं एवं मुख्य रूप से जूतियां बनाने का कार्य करते हैं, किंतु हिन्दू मोचियों में मयानगर (छुरियों एवं तलवारों के म्यान बनाने वाले) हैं, जो पहले चौहान, पंवार एवं सोलंकी राजपूत थे। पन्नीगर मोची चांदी की पन्नी का कार्य करते हैं, जो पहले चौहान राजपूत थे। जीनगर मोची घोड़ों की जीन बनाने का कार्य करते हैं, जो पहले चौहान, पंवार, सोलंकी एवं राठौड़ राजपूत थे। जोड़ीगर मोची जूतियां बनाने का कार्य करते हैं एवं ये पंवार, खींची से संबंधित है। थेइगर मोची जामदारी एवं धन रखने की थेई बनाते हैं।[29] मोची आपस में ही नाते करते हैं तथा अन्य चर्मकार जातियों में नहीं करते हैं। ये लोग मुस्लिम मोचियों, गांछों भांबियों आदि के यहां ना तो रोटी खाते हैं ना ही पानी पीते हैं।[30] इनमें मयानगरों के अतिरिक्त सब मुर्दो को जलाते हैं, मया नगर ही मात्र गाड़ते हैं।[31]

मुस्लिम मोची मात्र जूतियां बनाते हैं। यद्यपि इनका जूता हिन्दू मोचियों से हल्का होता है, किंतु सुंदर अधिक होता है। ये सोलंकी, राठौड़, गुजर एवं खींची राजपूतों से संबंधित है।

मोचियों के अतिरिक्त खटीक जाति की मारवाड़ क्षेत्र की प्रमुख चमार कार्य से जुड़ी जाति है। खटीक मारवाड़ में चमड़े को रंगने का कार्य करते हैं, साथ ही मॉस को बेचने का कार्य भी करते हैं। ये लोग मॉस बेचते हैं,[32] किंतु जानवर को मारने का कार्य किसी ओर से करवाते हैं। किंतु

जब मुस्लिम कसाई माँस बेचने का कार्य करने लगे तो खटीक मात्र चमड़े को रंगने का कार्य करने लगे। खटीक मात्र हिरण, बकरी एवं भेड़ का चमड़ा रंगते हैं। यह पूर्व में राजपूत थे, अतः रीति–रिवाज राजपूतों की भाँति ही है। राजपूतों के संबंध किन जातियों से है, ये भी उन्हीं से संबंध रखते हैं। राजपूत इनके घर का दाना–पानी नहीं करते किंतु शराब साथ बैठकर पीते हैं।[33]

उपरोक्त जातियों के अतिरिक्त मारवाड़ में बलाई (डी क्लास) सरगरा, थोरी, भांबी, कोली, सांसी (ई क्लास) इत्यादि भी किसी न किसी रूप में चर्मकार वर्ग के कार्यों में लगे हुए हैं और आज भी मारवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में यह जातियाँ कार्यरत हैं। इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि चर्म कार्य करने में मारवाड़ क्षेत्र में विभिन्न जातियां समान रूप से संलग्न थीं, किंतु अपने पूर्व संबंधों एवं धार्मिक मान्यताओं के कारण स्वयं को दूसरी जातियों से उच्च मानती है तथा मारवाड़ के सामाजिक संगठन में इन व्यवस्थाओं को स्वीकृति भी प्राप्त है। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि, चमार जाति के आतंरिक स्तरीकरण में प्रारम्भ में जहाँ चमार समूह के लोग मूल और सर्वोच्च थे, किन्तु कार्यविभाजन के कारण धीरे–धीरे उनकी स्थिती सबसे हीन हो गई। अंत में यह कहा जा सकता है कि, इस संदर्भ में जैसे–जैसे चर्म संबंधित कर्म परिष्कृत होते गये, वैसे–वैसे ही उनसे संबंधित समूह के लोगों का सामाजिक–आर्थिक स्तर भी परिष्कृत होता गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. X-*31, महाभारत का अनुष्ठान पर्व, क्रिटीकल एडिशन, 48.18 में इसकी जानकारी हैं।*
2. *बोधायन धर्मसूत्र, I, 1.2.31*
3. *वर्ण संकर, अदुतपनन्नन व्रत्यानाहुरमनीशान, I.9.17. 15*
4. *उमा चक्रवती, द सोशल डाइमेन्शस ऑफ अर्ली बुद्धिज्म्, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1987, पृष्ठ 122–149*
5. *बोधायन गृहसूत्र, II.5.6*
6. *भारद्वाज गृहसूत्र, I.1*
7. *अत्रि स्मृति, पथ 196; अंगिरस स्मृति, पथ 3; यम स्मृति, पद्य 33*
8. *रामशरण शर्मा, शूद्राज इन एनशियंट इंडिया,तीसरा संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,1990, पृ. 324*
9. *स्कन्दपुराण,नगर खण्ड,VI,242.32*
10. *सी.आई.आई.,III,संख्या 60,II 12.3*
11. *ई.आई., XX, संख्या 14, बी. प्लेट्स,1.19*
12. *ई.आई., III, संख्या 40, एपियफिया कर्नाटिका, VII, शिकारपुरा तालुका 20 ए.*
13. *इस्क्रिप्सन ऑफ बंगाल, III,संपादक, एन.सी. मजूमदार,राजशाही,1929, संख्या 5, दोहा 36*
14. *पी.वी.काणे,हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र,II,77*
15. *टी.वार्टस्, ऑन युआन च्वांग्स् ट्रेवल्स इन इंडिया, सं. टी. रिस डेविड्स और एस.डब्ल्यू. बुशेल, दो खण्डों में, I,168,लंदन,1904–1905*
16. *अलबरुनीज् इंडिया, सं. एडवर्ड सी. सचाऊ, II,134–135, दिल्ली,1965*
17. *स्कन्दपुराण,ब्रह्मखण्ड,II39.291–292*
18. *मुंशी रायबहादुर मुंशीहरदयालसिंह, रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राजमारवाड़, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़ फोर्ट, जोधपुर, 2010, पृ. 1*
19. *वही., पृ. 540*
20. *वही.,*
21. *वही.,*
22. *चदंनमल नवल, रैगर जाति : इतिहास एवं संस्कृति, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2011, पृ.43–45*
23. *वही.*
24. *रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राजमारवाड, पृ. 541–542*
25. *वही.*
26. *वही., पृ. 543*
27. *वही.*
28. *वही.*
29. *वही., पृ. 544*
30. *वही., पृ. 545*
31. *वही., पृ. 544*
32. *वही., पृ. 546*
33. *वही. पृ. 548–549*

अवध में मुशायरे का विकास (1722–1856)

डॉ. चित्रगुप्त
पर्यटन सूचना अधिकारी, मोंढ़, झांसी (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अन्तरकालीन मुगल दरबार में रौनक कम होने के कारण साहित्यकार और अन्य कलाकार जीविकोपार्जन की तलाश में अवध आने लगे। अवध के नवाबो और बादशहों ने इन कलाकारों को आश्रय दिया जिनके संरक्षण में साहित्य का तेजी से विकास हुआ। इन शायरों में मुशायरों में अपनी रचनाओं की प्रस्तुति दी। शेख सैय्यद अख्तर मीर गुलाम नबी बिलग्रामी, मिर्जा मोहम्मद रफी सौदा, मीर हरूल देहलवी, मीर टकी मीर, गुलाम हमदानी मुअहफी, ईशा अल्लाह बो, सआदत जो रंगीन जैसे शायर अध्ययनकाल में अवध में मौजूद थे। इन शायरों को आश्रय देने वाले शाही और अमीर शौकीन मुशायरों का आयोजन करते थे। मुशायरों की भव्यता समय के साथ बढ़ती गयी। शायरों के आपसी नौंक–झौंक में उपस्थित जनसमूह आनन्द उठाता था। कई बार मुशायरा परिसर शायरों के जंग का मैदान बन जाता था। अवध में मुस्लिम शायरों के साथ हिन्दू शायर भी मुशायरों में भाग लेते थे। राय टिकैत राय भी अपने दरबार में मुशायरों का आयोजन करवाते थे। हिन्दू शायरों में ठाकुरदास बंदा,नवलराय वफा, राजा बेनी बहादुर, सेवक राय, बेताव, राजा जसवंत सिंह परवाना, राय सरबसुख' दीवाना तथा राय टीकारीम 'तसल्ली' अयोध्या प्रसाद 'हैरत' आदि प्रमुख थे। अवध के अंतिम बादशाह वाजिद अली शाह भी स्वयं शायरी करते थे और शायरों को आश्रय भी देते थे। अवध के इन शायरों ने तत्कालीन समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था पर भी रचनाऐं की है। अवध में इन मुशायरों में हिन्दू–मुस्लिम समन्वय में योगदान दिया। और यहां की संयुक्त संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

संकेताक्षरः *शायर, मुशायरा, मुगल, जीविकोपार्जन, नवाब, बादशाह, रेखता, मसनवी, तखल्लुस, मरहवा, मुकर्रर, आडम्बर, उमरा, थुरफा, मरसिया।*

उत्तरकालीन शासकों के समय में मुगलों की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति कमजोर पड़ रही थी। इसके साथ ही सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति भी शोचनीय हो गयी थी। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (1719–1748) के शासनकाल में हुए नादिरशाह के हमले ने स्थिति को और गंभीर कर दिया था।[1] मुगल दरबार की रौनक में कमी आने और दरबारी आश्रय अपर्याप्त होने के कारण दिल्ली मे साहित्यकारों को जीविकोपार्जन में कठिनाई होने लगी। इसके अतिरिक्त शायरों की संख्या अधिक और संरक्षण कम मिलने के कारण प्रतिस्पर्धा अधिक होने लगी। शिक्षा और साहित्य का स्तर भी चापलूसी और अश्लीलता तक पहुंच रहा था। ऐसी परिस्थितियों में अनेक शायर जीविकोपार्जन की तलाश में अन्य सूबों के दरबारों में पहुंचने लगे। इसी क्रम में कई शायर दिल्ली छोड़कर अवध में अपने जीविकोपार्जन के साधन खोजने आए।[2] अवध में इन शरणार्थी साहित्यकारों के लिए दरबारी आश्रय के अतिरिक्त उन्नति और जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध थे। इन शायरों ने तत्कालीन अवध के शायरों के साथ उर्दू शायरी को उन्नति प्रदान करने में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। अवध में उर्दू शायरी की जो महफिल स्थापित हुई वह दाबिस्तान–ए–लखनऊ कहलाने लगा।[3] दिल्ली में इस शायरी के रचनाकारों ने रेखता के साथ रेखती को भी जन्म दिया। इसके साथ ही इश्क मिजाजी भी इस काल के शायरों के

लिए प्रमुख विषय रही।[4] दिल्ली के ये शायर जब अवध आए तो अपने साथ शायरी के ये गुण भी लेकर आए थे। जो यहां की शायरी में भी पल्लवित होने लगे थे।दरबारी आश्रय के चलते इन शायरों में अपने आश्रयदाता को खुश करने की होड़ लगी रहती थी। जिसके कारण उनमें प्रतिस्पर्धात्मक काव्य गोष्ठियाँ होने लगे। यहीकाव्य गोष्ठियों को मुशायरा कहा जाता था। भारत में मुसलमानों द्वारा प्रचलित सभी सांस्कृतिक संस्थाओं में मुशायरे का भी प्रमुख स्थान है। 'मुशायरा' शब्द का अर्थ विशेष रूप से कवि गोष्ठी में कविता पाठ करने से है। मीर तकी मीर ने मुशायरा के लिए मराख्ता शब्द प्रयुक्त किया है।[5] ऐसी कवि गोष्ठियों के लिए 'मजलिस-ए-रेख्ता' शब्द भी प्रयोग किया जाता था।[6] अध्ययनकाल में मुशायरे बहुत लोकप्रिय हो गए थे। इनका आयोजन प्रायः हर महीने, पन्द्रहवें दिन या प्रति सप्ताह किया जाने लगा। मजमूआँ-ए-नग्ज के लेखक कुदरतुल्ला कासिम, जिन्होंने अपना तजकिरा 1806-07 में सम्पूर्ण किया, मुशायरों का आयोजन करने वाले विख्यात व्यक्तियों का उल्लेख किया है। उनमें से अवध के मुहम्मद तकी तरकी (फैजाबाद) का भी उल्लेख है।[7]

वध के प्रथम नवाब वजीर सआदत खां को दिल्ली की राजनीति में अत्यधिक व्यस्त होने के चलते उनके शासनकाल में साहित्य संरक्षण पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया।[8] तथापि प्रथम नवाब वजीर सआदत खां स्वयं फारसी के अच्छे शायर थे और 'अमीन' तखल्लुस से शेर कहते थे।[9] उनके दरबार में शेख सैय्यद 'अख्तर', ठाकुरदास 'बंदा', अहमद अली खां 'अमीन', मिर्जा इमात अली बेग, मिर्जा इमाम कुली खां 'हशमत', मीर गुलाम नबी बिलग्रामी 'गुलाम', अब्दुलअली कश्मीरी, अली कुली खां, 'वाला', मीर अब्दुल अली 'ताला', आका अब्दुल अली 'तहसीन' जाहिद अली 'सखा' शेख मुहम्मद 'फिदाई' थे।[10] द्वितीय नवाब सफदरजंग के दरबार में आश्रय प्राप्त कवि मिर्जा अजीमा 'अकसीर', राजा नवल राय 'वफा सैय्यद गुलाम अली विलग्रामी' मुहिब, मिर्जा आजमी असफहानी, मिर्जा बाकर 'हकीर', मीर मुहम्मद इस्माईल 'कुरबान', मिर्जा इब्राहिम 'नूर', हिदायत अली खां 'जमीर', मिर्जा अब्दुल रजा 'मतीन', और मददान अली 'मुवतिला' थे।[11] नवाब शुजाउददौला के समय से अवध में शायरों साहित्यकारों की काफी संख्या एकत्रित हो गयी थी। मिर्जा अब्दुल रजा मतीन, मिर्जा अबु अली हातिफ जैसे शायर इनके दरबार में थे। मिर्जा मोहम्मद रफी 'सौदा' की प्रसिद्धि को सुनकर नवाब शुजाउददौला ने उसे फैजाबाद आने का निमंत्रण दिया, परन्तु 'सौदा' ने उत्तर में यह रूबाई लिखकर नवाब के पास भिजवा दी-

'सौदा' पर-दुनियां तू बहस-सू कब तक?
आवारा अर्जी-कूचा ब-आं-कू कब तक?
हासिल यही इससे न कि दुनियाँ होवे
बिल्फर्ज हुआ यूं भी तो फिर तू कब तक?[12]

लेकिन दिल्ली की सुविधा-पूर्ण जिन्दगी अधिक समय तक सौदा के लिए न रह सकी। बाद में आश्रय की तलाश में उनको अवध आना पड़ा। 1771 में नवाब की सेवा में आ गए। लेकिन पूर्व में नवाब के निमंत्रण को ठुकरा देने के कारण उनके व्यंग्यपूर्ण आक्षेप से दोनों के सम्बन्धों में कटुता आ गयी थी।[13] लेकिन शीघ्र ही 'सौदा' ने नवाब से सम्बन्ध अच्छे बना लिए और नवाब की मृत्यु (1775) तक उनके कृपा पात्र बने रहे।[14] नवाब आसफ-उद-दौला (1775-1797) के शासनकाल में मुशायरे स्थाई रूप से सामान्य हो चुके थे।[15] नवाब आसफ-उद-दौला को शेरो-शायरी से बड़ा लगाव था। वे भी एक शायर थे और स्वयं 'आसिफ-उद-दौला' नाम से रचनाऐं लिखते थे। उनके पुस्तकालय में लगभग 3 लाख पुस्तकें हुआ करतीं थी।[16] कवि 'सौदा' भी अपने अंतिम समय में नवाब आसफ-उद-दौला के आश्रय में रहे। नवाब आसफ-उद-दौला ने 'सौदा' को 'मलिकु शुअरा' की उपाधि प्रदान की थी।[17] नवाब आसफ-उद-दौला ने सैय्यद मुहम्मद मीर 'सोज' को शायरी के लिए अपना गुरू बना लिया था।[18] नवाब आसफ-उद-दौला के मामा नवाब सालारजंग ने प्रसिद्ध शायर मीर हसन देहलती को आश्रय दिया। मीर हसन देहलवी ने मसनवी सहरूल बयान लिखा।[19] नवाब आसफ-उद-दौला ने मीर मुहम्मद तकी 'मीर' को संरक्षण प्रदान किया। मीर भी 1783 में आर्थिक परेशानियों के चलते दिल्ली छोड़कर लखनऊ आ गये थे।[20] मीर के नाम उर्दू साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान पर है। जनसाधारण में वे 'खुदा-ए-सखुन' या 'कविता' के ईश्वर कहे जाते थे। मिर्जा गालिब ने भी उन्हें एक उस्ताद के रूप में स्वीकार किया था-

रेखते के तुम्ही उस्ताद नहीं हो गालिब
कहते हें अगले जमाने में कोई मीर भी था।[22]

मीर ने कई रचानाऐं लिखीं जिनमें अनेक मसनवियां प्रसिद्ध हुई। उनकी मसनवियों में अजगर नामा, शोला-ए-इश्क जोश-ए-इश्क, दरिया-ए-इश्क, एजाज-ए-इक, ख्वाब-ओ-ख्याल, मामलात-ए-इश्क,

शिकारनामा प्रमुख थीं। मीर तकी मीर की रचनाओं में तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक अराजकता तथा बदहाली स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।[23] नवाब आसफ–उद–दौला के समय में लखनऊ में मुशायरे के लिए मिर्जा सुलेमान शिकोह का दरबार भी प्रसिद्ध था। मिर्जा सुलेमानशिकोह मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय के सबसे छोटे पुत्र थे। आसफ–उद–दौला के काल में 19 अप्रैल 1789 में यह दिल्ली से लखनऊ आ गये थे।[24] आसफ–उद–दौला ने शहजादे के खर्च के लिए 6 हजार रूपया मासिक निर्धारित कर दिया था।[25] लखनऊ में मिर्जा सुलेमान शिकोह भी मुशायरे के शौकीन थे। उनके दरबार में अनेक शायर आश्रय प्राप्त थे। जिनमें गुलाम हमदानी मुसहफी को सुलेमान शिकोह ने शायरी में अपना गुरू बना लिया थ। मुसहफी ने आठ दिवान तथा तजकिरो की रचना की।[26] मिर्जा सुलेमान शिकोह ने तत्कालीन प्रसिद्ध शायर इंशाअल्लाह खां 'इशा' को भी संरक्षण दिया। इंशा की रचनाओं में उस युग की आर्थिक और सामाजिक दशा की झलक मिलती है।[27] शायर सआदत खां 'रंगीन' को भी लखनऊ सुलेमान शिकोह का दरबारी संरक्षण प्राप्त हुआ था। रंगीन के बारे में कहा जाता है कि इन्होंने सत्रह भाषाओं में शायरी की है।[28] नवाब वजीर आसफ–उद–दौला के समय कुछ और दरबारी भी थे। जिनसे शायर सम्बन्ध थे जिनमें मिर्जा मेंदू का दरबार भी था। मिर्जा मेंदू, नवाब वजीर शुजा–उद–दौला के पुत्र थे। ये शायर थे और 'अमीर' तखल्लुस से रचनाऐं करते थे।[29] इनके दरबार से 'इंशा', 'कासिम', शाह वाकिफ, अजीम जैसे शायर सम्बन्ध थे। मिर्जा सेफ अली खां का दरबार भी मुशायरे से सुशोभित था। यह भी शुजाउददौला के पुत्र थे। ये शायर थे ओर शगुफ्ता तखल्लुस से शेर कहते थे।[30] इनके दरबार से मिर्जा काजिम अली 'जवां', अलहाम, मुन्तजिर जैसे शायर आश्रय प्राप्त थे। इनके अलावा नवाब खान आलम, नवाब मोहब्बत खां, नवाब शौकत जंग, राजा टिकैत राय, जवाहर अली खां ओर हसन रजा खां के दरबार में भी अनेक शायर आश्रय प्राप्त थे।[31] लखनऊ के अन्य नियमित मुशायरों में मिर्जा रजा अली वेग आशफ्ता, मिर्जा हैदर अली, हुसैन अली खां असर, लाला मोतीलाल (कश्मीरी पण्डित) नवाब आगामीर, मिर्जा जाफर, कमरूल्ला कमर और नवाब सैय्यद मुहम्मद खां रिन्द द्वारा आयोजित प्रमुख थे।[32] शेख इमाम बख्श नासिख भी अच्छे शायर थे। अवध के बादशाह गाजी–उद–दीन हैदर ने उसे अपने दरबार में उपस्थित होकर कसीदा सुनाने ओर मलिकु शुअरा की उपाधि ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। 'नासिख' ने उनका यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और टिप्पणी की ''एक नवाब मात्र के द्वारा प्रदान की गयी उपाधि जिसके पास न तो दिल्ली के सम्राट की मान प्रतिष्ठा है और न ही कंपनी बहादुर की शक्ति है, व्यर्थ से भी बदतर है।''[33] ख्वाजा हैदर अली 'आतिश' का नाम उर्दू गजल लेखकों में मीर और गालिब के बाद ही था। उसने कभी किसी के संरक्षण या कृपा की आशा नहीं की थी, उसने फकीरों के समान मस्त जीवन व्यतीत करना अधिक पसंद किया। मिर्जा रजबअली बेग 'सरूर' शायर के साथ–साथ एक ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ भी था।[34] बादशाह गाजी–उद–दीन हैदर द्वारा लखनऊ से निकाले जाने के कारण उसे कानपुर में रहना पड़ा, जहां उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'फसाना–ए–अजायब' की रचना की।[35] 1846 में बादशाह वाजिद अलीशाह ने उसे पचास रूपये मासिक वेतन पर अपना दरबारी कवि बना लिया। नवाब के आदेश से 'शमशेर खानी' का अनुवाद 'सरूर–ए–सुल्तानी' के नाम से किया। उसने दो अन्य प्रसिद्ध ग्रंथ 'शरर–ए–इश्क और 'शगूफा–ए–मुहब्बत' की रचना भी की थी।[36] बादशाह अमजद अली शाह के समय में मीर अनीस प्रसिद्ध शायर था। उसका जन्म फैजाबाद में ही 1803ई0 में हुआ था।[37] मरसिया लिखने में अनीस इतना प्रसिद्ध हुआ कि अवध में उसे शायरे आजम कहा जाने लगा था। मीर अनीस ने मरसियों के रूप में उर्दू काव्य को बहुत बड़ा उपहार दिया है।[38] अवध के अंतिम बादशाह वाजिद अलीशाह भी शायरी और मुशायरे के शौकीन थे। वे स्वयं 'अख्तर' नाम से रचनाऐं करते थे।[39] उन्होंने छह दीवान सहित कई रचनाऐं की जिनमें हुस्न–ए–अख्तर, सहीफा–ए–सुल्तानी, इश्कनामा, अवध की शायरी में यहां के हिन्दू शायर भी मुशायरों में भाग लेते थे। राजा टिकैत राय के दरबार में मुशायरे चलते रहते थे।[41] प्रथम नवाब वजीर सआदत खां बुराहान–उल–मुल्क के समय में ठाकुरदास 'बन्दा', सफदरजंग के समय में महाराज नवल राय 'वफा' तथा शुजा–उद–दौला के समय में राजा बेनी बहादुर तथा सेवकराय 'बेताब' जैसे कई हिन्दू शायर दरबार में संबद्ध थे। नवाब आसफ–उद–दौला के समय में राजा जसवन्त सिंह 'परवाना' राय सरबसुख 'दीवाना' तथा राय टीकाराम तसल्ली जैसे उर्दू के शायर थे। नवाब सआदत अली खां के समय में पं. अयोध्या प्रसाद 'हैरत' अच्छी शायरी करता था। वह 'जुर्रत' का शिष्य था। राजा ज्वाला प्रसाद 'वकार' ने वाजिदअली शाह की प्रशंसा में कसायद सबा के नाम से सात कसीदा लिख। लखनऊ में हिंदू शायरों में सबसे अधिक संख्या कायस्थों में सक्सेना की थी। लाला साहब राय 'फरियाद', मोतीलाल 'हैफ' मुन्नूलाल 'सबा', गिरधारी लाल 'तर्ज–

आदि शायर कायस्थ ही थे।[42] मोहल्ला नौबस्ता, नवाबगंज तथा गणेश गंज मोहल्ले के हिन्दू उमरा के यहां भी मुशायरों का आयोजन किया जाता था।[43]

अवध में मुशायरों के आयोजन के लिए विशेष प्रबंध किये जाते थे। मुशायरा की तिथि की घोषणा के बाद से ही उसका खूब प्रचार कराया जाता था। इसके लिए लिखित सूचना पत्र तैयार कर शायरों और शौकीनों में बांटा जाता था। इस सूचना पत्र में 'मिसरा-ए-तरह' (स्थाई टेक) का ऐलान होता था।[44] विख्यात शायरों को मुशायरे में शामिल होने के लिए उनसे प्रार्थना करनी पड़ती थी।[45] मुशायरा के लिए समय अधिकांशतया रात्रि का ही रखा जाता थ। मुशायरा स्थल की कई प्रकार से सजावट की जाती थी तथा रोशनी आदि की समुचित व्यवस्था की जाती थी। अतिथियों के स्वागत सत्कार के लिए उचित व्यवस्था रखी जाती थी उनके स्वागत के लिए हुक्का व पान के साथ-साथ भोजन एवं मिष्ठान इत्यादि की भी व्यवस्था होती थी।[46] शौकीन रईस लोगों के अलावा जनसाधारण भी मुशायरे में पहुंचता था। शायर मुशायरे की महफिलों में सर्वसाधारण की भी प्रशंसा और दाद पाने के लिए लालायित रहते थे। अवध के शासक एवं उमरा वर्ग के समान ही शुरफा तथा अवाम में भी मुशायरा लोकप्रिय हो गया था। शायर मुशायरे में एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए जोड़-तोड़ करते और एक दूसरे पर आरोप लगाते थे। शायरों की यह नौंक-झोंक और प्रतिस्पर्धा 'शायरानाच मक' या 'मार्काआराई' के नाम से प्रसिद्ध थी।[47] मुशायरे के आयोजन के दौरान शासक वर्ग और उलमा वर्ग कवि तथा विशिष्ट अतिथियों के लिए जलपान की व्यवस्था भी करते थे। नवाब अमीनुदौला मुईनुलमुल्क नासिर जंग उर्फ मिर्जा मेण्दू शायरों का सत्कार स्वादिष्ट व्यंजनों से करते है। रमजान के महीने में मुस्लिम शायरों को स्वादिष्ट व्यंजन और हिन्दू शायरों को मिठाईयां सत्कार में दी जाती थीं।[48] मुशायरे में शिष्टाचार का पालन करने की उपस्थित जन समूह से अपेक्षा की जाती थी। उस युग का मुशायरा आधुनिक सिनेमा की बराबरी करता था, अतः जनसाधारण भी मुशायरा स्थल पर पहुंचकर आनंद उठाता था।[49] मुशायरों में वद्धि और युवा समान रूप से पहुंचकर आनंद उठाते थे और शायरों का उत्साहवर्धन ताली बजाकर तथा विभिन्न प्रकार के उद्‌बोधन देकर किया करते थे। वाह-वाह, सुभान-अल्लाह, खूब, मरहवा तथा मुकर्रर आदि शब्दों से प्रोत्साहित होकर शायर अपनी रचनाओं का पाठ किया करते थे।[50]

अवध में मुशायरों की लोकप्रियता के साथ कई विकृतियां भी इसके आयोजन में आने लगीं थी। इन मुशायरों में रेख्ती कविता का पाठ अश्लीलता को परिलक्षित करता था। जिसका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है, ''यह भ्रष्ट युग मे एक भ्रष्ट मस्तिष्क द्वारा आविष्कृत गीति-काव्य का एक अपभ्रष्ट रूप थी।''[51] यह समाज पर दूषित प्रभाव भी डालती थी।[52] इन रचनाओं में शायर ऐसे लिखता था जैसे कि वह कोई स्त्री हो। ऐसी रचनाऐं अधिकांशतया कामुकता, अश्लीलता, और छिछोरेपन को दर्शाती थीं। रेख्ती रचनाओं का मुख्य उददेश्य हास्य उत्पन्न करना, वासनाओं भड़काना और तुच्छ यौन-भावनाओं को आकर्षित करना होता था।[53] इन मुशायरें में कई बार स्थिति इतनी लम्पटता की ओर पहुंच जाती थी कि शायर स्त्री परिधान धारण करके बाजारू स्त्री की भांति हाव भाव प्रदर्शित करता हुआ काव्य पाठ करता था। जिनमें से जानसाहब जैसे रेख्ती शायर प्रमुख थे। इनके पाठ से श्रोतागण और मुशायरे में मौजूद अन्य शायर खूब आनंद उठाते थे।[54]

मुशायरे में शायरों में आपसी प्रतिस्पर्धा के चलते कई और विकृतियों ने जन्म ले लिया था। शायरों में एक दूसरे के प्रति नफरत और ईर्ष्या की भावना बन गयी थी। शायर अपने संरक्षक को खुश करने और कृपा पाने के लिए आपस में संघर्ष करने को तैयार हो जाते थे। इनमें ज्यादा समय तक मधुर संबंध नहीं रहते थे।[55] सौदा ने इन मुशायरों में शायरों के व्यवहार को इन पंक्तियों द्वारा बतलाया है,

''बाजे ऐसे भी हैं नामाकूल है जिनका सुखन
अपनी शुहरत होने की समझे हैं वो तदबीर जंग
मैं तो हैरान हूँ कि इन शायरों की वजै पर
करते फिरते हैं तो पढ़-पढ़ शेर बे तासीर जंग।[56]

कई बार इन मुशायरों की स्थिति युद्ध स्थल की तरह हो जाती थी। लखनऊ में शहजादा सुलेमान शिकोह के दरबार में इंशा और मुसहफी के झगड़े बहुत कुख्यात थे। इनके झगड़ों में जनमानस भी काफी आनंद उठाता था।[57] उनके संरक्षक भी उनके झगड़ों को प्रोत्साहित करते। विपक्षियों को आहत करने के लिए जुलूसों का आयोजन किया जाता था, जिसमें व्यंग्य रचनाओं को सार्वजनिक रूप से गाया जाता था। उनके संरक्षक उनकी व्यंग्य रचनाओं का आनंद उठाते थे।[58]

अवध में कई अच्छाई और विकृतियों के साथ मुशायरे से जनसाधारण में साहित्य के प्रति लोकप्रियता बढ़ी। समाज

बाह्य आडम्बर, बेरोजगारी, और आर्थिक विपन्नता के साथ शासक वर्ग तथा अमीरों का आलीशान वैभव और विलासिता पूर्ण जीवन भी था। इस प्रकार के जीवन का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। जिसका समय-समय पर वर्णन शायरों ने मुशायरों के माध्यम से किया। शायरों ने जनसमस्याओं के प्रति शासक वर्ग को अपनी शायरी के माध्यम से चेताया तो जनमानस को भी उनके कर्तव्यों के प्रति सावधान भी किया। अवध में खारजी शायरी का प्रचलन होते हुए भी मरसियों का भी प्रचलन था और नैतिक तथा धार्मिक शायरी का भी विकास हुआ। यहां के मुशायरों में हिन्दू और मुस्लिम शायर मिलकर शायरी करते थे। जिससे अवध की संयुक्त संस्कृति के विकास में सहयोग मिला।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *रेहाना बेगमः अवध का सामाजिक जीवन, (दिल्ली, 1994), पृ. 22*
2. *वही*
3. *वही*
4. *वही*
5. *मीर तकीमीरः निकातु शुअराः, सम्पादक मौलवी अब्दुल हक (औरंगाबाद दक्षिण, 1935) पृ. 147।*
6. *वहीं पृ. 50*
7. *कुदरतुल्ला कासिमः मजमूआँ-ए-नग्ज, भाग-01, पृ. 31, 188, 274, 361, भाग-2, प. 24,125,189,290,340*
8. *रेहाना बेगमः पूर्वोद्धत, पृ0 23*
9. *गुलाम अलीः इमाद-उस-सआदतः (नवल किशोर प्रेस, 1897) पृ. 30*
10. *रेहाना बेगमः पूर्वोद्धत, पृ. 23*
11. *वही*
12. *मुहम्मद हुसैन आजादः आव-ए-हयात (लाहौत,1917) पृ. 50*
13. *रामबाबू सक्सेनाः ए हिस्ट्री ऑव उर्दू लिटरेचर (इलाहाबाद, 1940), पृ. 62*
14. *कृष्ण मुरारि मिश्राः उत्तरी भारत में मुस्लिम समाज (जयपुर, 1974), पृ. 15*
15. *वहीः पृ. 105*
16. *योगेश प्रवीनः ताजदारे अवध (लखनऊ, 2003), पृ. 68*
17. *मुहम्मद हुसैनः पूर्वोद्धत, पृ. 151*
18. *रेहाना बेगमः पूर्वोद्धत, पृ. 31*
19. *वहीं*
20. *रामबाबू सक्सेनाः पूर्वोद्धत, पृ0. 71*
21. *वही, पृ. 76*
22. *असदुल्ला खां गालिबः दीवान-ए-गालिब, सम्पादक मालिकराम (दिल्ली, 1957), पृ. 72*
23. *मीर तकी मीरः दीवान-ए-मीर, भाग-1 (पाण्डुलिपि, स्टेट आरकाइवज ऑव उत्तर प्रदेश), पृ0 284: सफदर'आह':मीर और मीरयात (बम्बई,1972), पृ. 232*
24. *वासू पीः अवध एण्ड ईस्ट इंडिया कंपनी (1785-1801), पृ. 47*
25. *नजमुल गनीः तारीख-ए-अवध, भाग-2, पृ. 235-36*
26. *रेहाना बेगमः पूर्वोद्धत, पृ. 35*
27. *मिर्जा मुहम्मद असकरीः कलाम-ए-इंशा (इलाहाबाद, 1952) पृ. 94-154*
28. *रेहाना बेगमः पूर्वोद्धत, पृ. 36*
29. *नजमुल गनीः पूर्वोद्धत, भाग-1 पृ. 163*
30. *कमालुददीन हैदरः स्वानेहात-ए-सलातीन-ए-अवध, (लखनऊ, 1879), भाग-1 पृ. 2*
31. *रेहाना बेगमः पूर्वोद्धत, पृ. 24*
32. *लाला श्रीरामः खमखाना-ए-जावीद, (दिल्ली, 1917) भाग-1, पृ. 9, 69, कुदरतुल्ला कासिमः मजमूआ-ए-नग्ज, सम्पादक महमूद शीरानी, (लाहौर, 1933), पृ. 34*
33. *रामबाबू सक्सेनाः पूर्वोद्धत, पृ. 103*
34. *वही, पृ. 258*
35. *सही*
36. *वही*
37. *योगेश प्रवीनः गुलिस्ताने अवध, (लखनऊ, 2002), पृ. 112*
38. *अब्दुल हलीम शररः पुराना लखनऊ (गुजिश्ता लखनऊ, हिन्दी अनुवाद नूरनवी अब्बासी, नई दिल्ली, 1971), पृ. 81*
39. *कृष्णमुरारि मिश्राः पूर्वोद्धत, पृ. 33*
40. *वही, पृ. 34*
41. *रेहाना बेगमः पूर्वोद्धत, पृ. 24*
42. *वही, पृ. 39*
43. *वही*
44. *मुहम्मद दाऊद रहबरः मुशायरे का अर्तका ओर उसकी अहमित, उर्दू, अप्रैल 1945, पृ. 166*

45. वही
46. वही
47. रेहाना बेगमः पूर्वोद्धत, पृ. 25
48. कुदरतुल्ला कासिमः पूर्वोद्धत, पृ. 72
49. मुहम्मद दाऊद रहबरः पूर्वोद्धत, पृ. 166
50. एस.एम.जफरः एज्यूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया (पेशावर, 1936), पृ. 233
51. अब्दुस्सलाम नदवीः शेरूल-हिंद (आजमगढ़, 1926), भाग-2, पृ. 81
52. रामबाबू सक्सेनाः पूर्वोद्धत, पृ. 96
53. वही, पृ. 94
54. वही, पृ. 95
55. वही, पृ. 81
56. मिर्जा मुहम्मद रफी सौदाः कुल्लियात-ए-सौदा (लखनऊ, 1916), पृ. 311
57. कुदरतुल्ला कासिमः पूर्वोद्धत, भाग-1, पृ. 81
58. रामबाबू सक्सेनाः पूर्वोद्धत, पृ. 92-93

दौसा जिले में जनसंख्या की आर्थिक क्रियाओं का भौगोलिक अध्ययन

जे.एन. गुर्जर
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, एस.पी.सी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अजमेर
अभिषेक वशिष्ठ
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या में आर्थिक कारक भी अस्थिर रहा है जिससे क्षेत्र की धरातलीय स्थिति के साथ भौगोलिक कारक भी स्थानीयता के अनुसार प्रभाव डालते रहे है। दौसा जिला भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। अध्ययन क्षेत्र दौसा जिले की अक्षांशीय स्थिति 26°22' से 27°14' तक तथा देशांतरीय स्थिति 76°8' से 77°4' पूर्वी देशान्तर के मध्य है। प्रस्तुत शोध-पत्र में आर्थिक क्रियाओं के स्वरूप के अन्तर्गत कार्यशील सीमान्त एवं अकार्यशील का अध्ययन सम्मिलित है। इसमें कार्यशील जनसंख्या ही अधिक महत्वपूर्ण है जो आर्थिक क्रियाओं में सहयोग प्रदान करती है। अध्ययन क्षेत्र दौसा जिले की जनसंख्या को आर्थिक गतिविधियों के अनुसार वृहद रूप में दो भागों में विभाजित किया है। ये वर्ग काम करने वाले तथा काम नहीं करने वालों के है। काम करने वालो को फिर दो भागों में बांटा है, मुख्य काम करने वाले तथा सीमान्त काम करने वालों में विभक्त किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में दौसा जिले की आर्थिक क्रियाओं और जनसंख्या के अन्तर सम्बन्धों का भौगोलिक अध्ययन किया गया है।

संकेताक्षर : *आर्थिक क्रियाएँ, कार्यशील जनसंख्या, सीमान्त कार्यशील जनसंख्या, अकार्यशील जनसंख्या, पारिवारिक उद्योग, काश्तकार, विनिर्माण कार्य, खनन् एवं उत्खनन्।*

तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या में आर्थिक कारक भी अस्थिर रहा है जिससे क्षेत्र की धरातलीय स्थिति के साथ भौगोलिक कारक भी स्थानीयता के अनुसार प्रभाव डालते रहे है। दौसा जिला भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। जनसंख्या की आर्थिक क्रियाएं परिवर्तनशील रही है इसके पीछे सामाजिक कारकों में शिक्षा एवं तकनीकी विकास का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा है।

शोध के उद्देश्य

1. आर्थिक क्रियाओं का स्थानीय अभिज्ञान।
2. क्षेत्रीय/तहसीलवार असंतुलन का अध्ययन करना।
3. आर्थिक क्रियाओं के नियोजन हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पनाये

1. बढ़ती जनसंख्या ने आर्थिक क्रियाओं के स्तर में परिवर्तन किया है।
2. जीवन स्तर के सुधार में आर्थिक क्रियाओं का योगदान रहता है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध-पत्र में वर्ष 2011 के आधार पर अध्ययन को आर्थिक क्रियाओं के आधार पर क्रमबद्ध अध्ययन किया गया है,

जिसमें तालिकाओं, आरेखों, मानचित्रण के साथ अध्ययन को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

आँकड़ों के स्रोत

प्रस्तुत शोध–पत्र में द्वितीय आँकड़ों का सहयोग लिया गया है। ये आँकड़े संस्थाओं से संकलित किये हैं जो इस प्रकार हैः–

1 आर्थिक एवं सांख्यिकीय निदेशालय, राजस्थान, जयपुर

2 जनगणना निदेशालय, राजस्थान, जयपुर

3 भारतीय सर्वेक्षण विभाग जयपुर।

4 जिला कार्यालय दौसा, राजस्थान।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र दौसा जिले की अक्षांशीय स्थिति 26°22' से 27°14' तक तथा देशांतरीय स्थिति 76° 8 से 77°4' पूर्वी देशान्तर के मध्य है। वर्ष 2011 के अनुसार 5 तहसीलों से युक्त इस जिले में राष्ट्रीय राजमार्ग 11, 11। व बाणगंगा नदी की उपस्थिति उल्लेखनीय है। दौसा जिले की इसमें बसवा, दौसा, लालसोट, सिकराय व महुवा को मानचित्र–1 में दर्शाया गया है।

दौसा जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3400 वर्ग किलोमीटर है। यहां की कुल जनसंख्या 2011 के अनुसार 16,34,409 व्यक्ति है। जिले में कुल कार्यशील जनसंख्या 41.88 प्रतिशत है जिसमें 46.41 पुरूष एवं 36.87 प्रतिशत महिलाऐं है।

प्रस्तुत शोध–पत्र में आर्थिक क्रियाओं के स्वरूप के अन्तर्गत कार्यशील सीमान्त एवं अकार्यशील का अध्ययन सम्मिलित है। इसमें कार्यशील जनसंख्या ही अधिक महत्वपूर्ण है जो आर्थिक क्रियाओं में सहयोग प्रदान करती है।

कार्यशील जनसंख्या

अध्ययन क्षेत्र दौसा जिले की जनसंख्या को आर्थिक गतिविधियों के अनुसार वृहद रूप में दो भागों में विभाजित किया है। ये वर्ग काम करने वाले तथा काम नहीं करने वालों के है। काम करने वालो को फिर दो भागों में बाटा है, मुख्य काम करने वाले तथा सीमान्त काम करने वालों में विभक्त किया है।

जिले में कुल कार्यशील जनसंख्या 41.88 प्रतिशत है जिसमें 46.41 पुरूष एवं 36.87 महिलाएँ है। पुरूष अधिक कार्यशील होने का प्रमुख कारण यह है कि पुरूष सभी प्रकार के व्यवसाय जैसे कृषि एवं नौकरी करते है जबकि महिला घरेलू कार्य करती है। जिले की कुल कार्यशील जनसंख्या 43.97 प्रतिशत ग्रामीण व 29.03 प्रतिशत नगरीय है। ग्रामीण कार्यशील जनसंख्या का अधिक होने का कारण यह है कि जिले की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती है।

तालिका–1

कार्यशील सीमान्त एवं अकार्यशील जनसंख्या 2011

(प्रतिशत में)

तहसील	क्षेत्र	कार्यशील			सीमान्त			अकार्यशील		
		पुरूष	स्त्री	योग	पुरूष	स्त्री	योग	पुरूष	स्त्री	योग
बसवा	ग्रामीण	47.56	42.04	39.02	2.18	3.76	2.55	52.43	58.10	47.79
	नगरीय	44.72	6.62	26.57	0.79	0.31	0.57	55.27	93.37	73.42
	योग	47.18	37.36	42.52	1.19	3.31	5.52	52.81	62.64	57.47
दौसा	ग्रामीण	45.82	40.41	43.24	1.49	3.10	3.40	54.17	59.58	45.16
	नगरीय	45.45	10.90	29.13	0.41	0.40	0.40	54.54	89.09	70.86
	योग	45.74	34.43	40.36	1.27	1.40	1.99	54.25	65.56	59.64
लालसोट	ग्रामीण	46.85	40.92	44.02	1.86	2.42	2.13	53.15	59.07	55.97
	नगरीय	47.42	14.85	31.73	0.44	0.96	0.69	52.68	85.14	68.24
	योग	46.90	35.08	42.81	1.72	2.08	1.99	53.09	56.42	57.18
महवा	ग्रामीण	46.17	38.41	34.87	1.74	4.55	2.51	53.82	61.59	47.13
	नगरीय	46.79	9.86	21.22	0.57	1.54	1.03	53.20	90.13	70.74
	योग	46.26	34.40	40.68	1.58	4.18	2.78	53.74	65.60	59.32
सिकराय	ग्रामीण	46.00	40.67	43.47	1.43	2.38	1.88	54.00	59.32	56.53
	नगरीय	–	–	–	–	–	–	–	–	–
	योग	46.00	.40.67	43.47	1.43	2.38	1.88	54.00	59.32	56.53

स्रोत– जिला जनगणना प्रतिवेदन सन् 2011 जिला दौसा

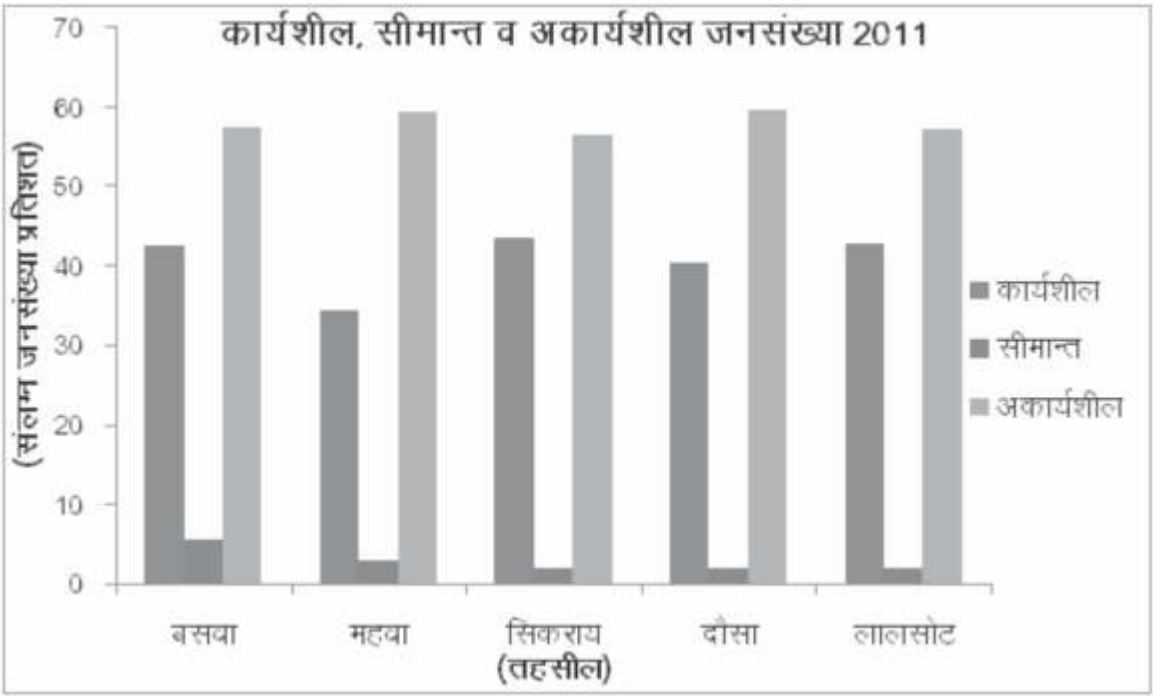

जिले में सीमान्त कार्यशील कुल जनसंख्या का 2.23 प्रतिशत है जिसमें मात्र 1.59 पुरूष एवं 2.93 स्त्रियाँ है। महिलाओं का सीमान्त कार्यशील अधिक होने का प्रमुख कारण है कि महिलाए पारिवारिक कार्य घर पर ही रहकर करती है। क्षेत्र के अनुसार कुल सीमान्त कार्यशील जनसंख्या का 5.17 ग्रामीण व मात्र 0.60 नगरीय है। ग्रामीण जनसंख्या का अधिक होने का कारण जनसंख्या का गाँवों में रहना है।

जिले में अकार्यशील जनसंख्या का कुल 58.12 प्रतिशत है जिसमें 53.58 पुरूष व 63.12 महिलाएँ है। अकार्यशील जनसंख्या में महिलाओं का अधिक प्रतिशत होने का कारण शिक्षा की कमी ही रहा है क्योंकि भारतीय समाज पुरूष प्रदान समाज रहा है। अतः महिला केवल गृहणी के रूप मानी जाती है और पुरूष को कार्यशील माना है इसलिए अकार्यशील महिलाओं का प्रतिशत अधिक है। तालिका–1 में दौसा जिले में कार्यशील सीमान्त कार्यशील व अकार्यशील जनसंख्या को दर्शाया गया हैः–

तालिका–1 से ज्ञात होता है कि कार्यशील जनसंख्या का तहसीलवार अध्ययन किया जाये तो सबसे अधिक कार्यशील जनसंख्या 43.47 सिकराय तहसील में है जिसमें 46.00 पुरूष व 40.67 महिलाऐं है। सिकराय तहसील में कार्यशील जनसंख्या अधिक होने का प्रमुख कारण इस तहसील में जनसंख्या का रोजगार युक्त होना है एवं सिकराय में कृषि सुविधाएं अधिक होने के कारण पुरूष कार्यशील जनसंख्या भी अधिक है। सबसे कम कुल कार्यशील जनसंख्या दौसा तहसील में 40.36 प्रतिशत एव महवा तहसील में 40.68 प्रतिशत है। बसवा तहसील में 47.18 प्रतिशत पुरूष व 37.36 प्रतिशत महिला कार्यशील है, जिसमें 43.97 प्रतिशत ग्रामीण एवं 29. 03 नगरीय है महवा तहसील में 46.26 प्रतिशत पुरूष व 34.40 प्रतिशत महिला है, जिसमें 38.41 प्रतिशत ग्रामीण व 9.86 नगरीय है। (आरेख–1)

तालिका–1 द्वारा स्पष्ट है कि यह कार्यशील सीमान्त वर्ग में समान्तर है क्योकि एक भौगोलिक कारकों द्वारा यह क्षेत्र प्रभावित रहा है।

सीमान्त कार्यशील

सीमान्त कार्यशील जनसंख्या का तहसीलवार अध्ययन से स्पष्ट है कि सबसे अधिक सीमान्त कार्यशील जनसंख्या महवा और सिकराय तहसील में है। महवा तहसील में कुल सीमान्त कार्यशील जनसंख्या का 2.78 प्रतिशत है। जिसमें 1.58 प्रतिशत पुरूष व 4.18 प्रतिशत महिलाएँ है। जिसमें 4.55 प्रतिशत ग्रामीण व 1.54 प्रतिशत नगरीय है। जबकि सिकराय तहसील में 1.88 प्रतिशत है

जिसमें 1.43 प्रतिशत पुरूष तथा 7.38 प्रतिशत महिलाएँ है। जिसमें इस तहसील की सम्पूर्ण जनसंख्या का प्रतिशत ग्रामीण है तथा नगरीय जनसंख्या का अभाव है।

सबसे कम सीमान्त कार्यशील जनसंख्या का 1.88 प्रतिशत सिकराय तहसील में है जिसमे 1.43 प्रतिशत पुरूष व 7.38 प्रतिशत महिलाऐं है। जिसमें 1.88 प्रतिशत ग्रामीण है। इस तहसील में सबसे कम सीमान्त कार्यशील जनसंख्या होने का प्रमुख कारण पारिवारिक कार्य कम करना है। अतः सीमान्त कार्यशील जनसंख्या कम है। अन्य तहसीलों में कुल सीमान्त कार्यशील जनसंख्या का 5.52 प्रतिशत बसवा तहसील में है जिसमें से 1.19 प्रतिशत पुरूष व 3.31 प्रतिशत महिलाएँ है। जिसमें 5.55 प्रतिशत ग्रामीण व 0.57 प्रतिशत नगरीय है। दौसा तहसील में कुल सीमान्त कार्यशील जनसंख्या का 1.99 प्रतिशत है जिसमें 1.27 प्रतिशत पुरूष व 1. 46 प्रतिशत महिलाएँ है। जिसमें 3.40 प्रतिशत ग्रामीण व 0.40 प्रतिशत नगरीय है।

अकार्यशील जनसंख्या

अकार्यशील जनसंख्या का सबसे अधिक 59.64 प्रतिशत दौसा तहसील में है जिसमें 54.25 प्रतिशत पुरूष व 65. 56 प्रतिशत महिलाएँ है। इस तहसील में पुरूषों की अपेक्षा महिला प्रतिशत अधिक होने तथा ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा नगरीय क्षेत्र का प्रतिशत अधिक होने का प्रमुख कारण यह है कि यह तहसील जिला मुख्यालय भी है। अतः नगरीय क्षेत्र की वजह से पुरूष कार्य करते हैं और महिलाएँ घर पर ही रहती है। पुरूष नौकरी एवं कई प्रकार के कार्य करते हैं जबकि महिलाएँ नगरीय क्षेत्रों में कार्य नहीं करती हैं

महवा तहसील में भी दौसा तहसील के समान ही 59.32 प्रतिशत कुल अकार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत है जिसमें 53.74 प्रतिशत पुरूष व 65.60 प्रतिशत महिलाऐं है। जिसमें 61.59 प्रतिशत ग्रामीण व 90.13 प्रतिशत नगरीय है। इस तहसील में भी महवा प्रमुख नगरीय क्षेत्र होने की वजह से आबादी अधिक है अकार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत अधिक है। सबसे कम अकार्यशील जनसंख्या 56.53 प्रतिशत सिकराय तहसील में है जिसमें 54.00 प्रतिशत पुरूष व 59.32 प्रतिशत महिलाएँ है, जिसमें सम्पूर्ण अकार्यशील जनसंख्या का ग्रामीण प्रतिशत है। इस तहसील में सबसे कम प्रतिशत होने का प्रमुख कारण नगरीय जनसंख्या का अभाव होना है।

अन्य तहसीलों में लालसोट तहसील में अकार्यशील जनसंख्या का 57.18 प्रतिशत है जिसमें 53.09 प्रतिशत पुरूष व 56.42 प्रतिशत महिलाएँ है जिसमें 85. 14 प्रतिशत ग्रामीण व 56.42 प्रतिशत नगरीय है। बसवा तहसील में कुल अकार्यशील जनसंख्या का 57. 47 प्रतिशत है जिसमें 52.81 प्रतिशत पुरूष व 62.64 प्रतिशत महिलाएँ है। जिसमें47.79 प्रतिशत ग्रामीण व 73.42 प्रतिशत नगरीय है। (आरेख–1)

अतः अध्ययन से स्पष्ट है कि जिले में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत सर्वाधिक है जो सम्पूर्ण जनसंख्या का 60.00 प्रतिशत है, जबकि कार्यशील और सीमान्त कार्यशील जनसंख्या 40.00 प्रतिशत है। जिले में पुरूष अकार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत भी सर्वाधिक है। जो कुल पुरूषों का 52.55 प्रतिशत तक है। जिले में अकार्यशील जनसंख्या अधिक होने का प्रमुख कारण यह है कि यहाँ अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है।

जिले की कुल कार्यशील जनसंख्या को प्रमुख रूप से चार वर्गो में विभाजित किया है– (1) काश्तकार (2) खेतीहर मजदूर (3) पारिवारिक उद्योग में लगे हुए व्यक्ति (4) अन्य कार्य करने वाले– जिले में कुल कार्यशील जनसंख्या का 49.46 प्रतिशत काश्तकार है। जिनमें 34.35 प्रतिशत पुरूष व 56.84 प्रतिशत महिलाएँ है। इस प्रकार जिले में पुरूष की अपेक्षा महिला काश्तकार अधिक है। जिसका प्रमुख कारण यह है कि कृषि यहाँ की अर्थव्यवस्था का मूल आधार है, इसलिए महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्र में कृषि कार्य करती है। जिले में कुल कार्यशील जनसंख्या का 24. 89 प्रतिशत खेतीहर मजदूर है जिसमें 21.54 प्रतिशत पुरूष व 26.53 प्रतिशत महिलाएँ है। (आरेख–2)

जिले में कुल कार्यशील जनसंख्या का 3.23 प्रतिशत पारिवारिक उद्योग में कार्यरत है जिनमें 3.80 प्रतिशत पुरूष व 2.96 प्रतिशत महिलाएँ है । पारिवारिक उद्योगों में कार्य करने वाले पुरूषों का नगरीय क्षेत्र में अधिक होने का कारण यह है कि यहाँ महिलाओं की अपेक्षा पुरूष नगरीय क्षेत्र में पारिवारिक उद्योग में कार्य करते है इस कारण पुरूषों का नगरीय क्षेत्र में प्रतिशत अधिक है।

जिले में कुल कार्यशील जनसंख्या का 22.39 प्रतिशत अन्य कार्य करने वाली जनसंख्या का है जिनमें 40.30 प्रतिशत पुरूष व 13.64 प्रतिशत महिलाएँ है। अन्य कार्य करने वाली जनसंख्या में विभिन्न प्रकार के कार्य करने वाले लोगों को शामिल करते हैं। जिनमें प्रमुख रूप से पशुपालन, खनन व उत्खनन, विनिर्माण कार्य, व्यापार व वाणिज्य, परिवहन, संग्रहण, संचार व सर्विस करने, विनिर्माण संसाधन, मरम्मत का कार्य करने अर्थात्

पारिवारिक उद्योगों को छोड़कर अतिरिक्त कार्य करने वाली जनसंख्या को इसमें शामिल करते है। जिले में इस प्रकार कार्य करने वालों में नगरीय क्षेत्र में पुरूषों का अधिक होने का प्रमुख कारण यह है कि विभिन्न प्रकार के कार्य नगरीय क्षेत्र में ही उलब्ध होते है, जिसमें पुरूष ही कार्य करते है। इसलिए यह प्रतिशत पुरूष का नगरीय क्षेत्र में अधिक पाया जाता है। निम्न तालिका–2 से दौसा जिले में मुख्य कार्यशील जनसंख्या का वितरण का प्रतिशत दर्शाया गया है।

तालिका–2

मुख्य कार्यशील जनसंख्या विवरण वर्ष 2011

तहसील	काश्तकार			खेतीहर मजदूर			पारिवारिक उद्योग			अन्य कार्य करने वाले		
	कुल	पुरूष	स्त्री	कुल	पुरूष	स्त्री	कुल	पुरूष	स्त्री	कुल	पुरूष	स्त्री
बसवा	55.12	39.17	61.78	23.03	20.36	24.25	20.14	3.09	1.69	19.70	37.36	12.36
महवा	46.92	35.02	51.83	37.75	37.25	37.98	1.51	2.15	1.15	13.81	25.56	9.01
सिकराय	44.44	31.31	50.95	25.86	21.33	28.11	4.01	4.60	3.71	25.67	42.69	17.21
दौसा	53.76	38.44	61.61	19.93	16.68	21.66	4.81	5.12	3.99	21.48	39.74	12.73
लालसोट	53.51	37.97	60.36	23.78	22.33	24.56	4.04	4.83	3.08	19.65	34.81	11.89
जिलादौसा	49.46	34.35	56.84	24.89	21.54	26.53	3.23	3.80	2.96	22.39	40.30	13.64

स्त्रोत– जिला जनगणना प्रतिवेदन सन् 2011 जिला दौसा

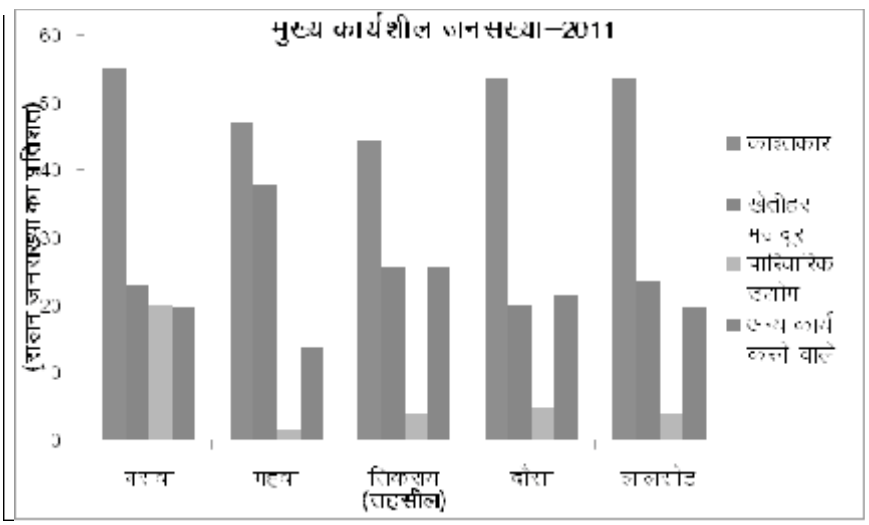

तालिका–2 से स्पष्ट है कि जिले में सर्वाधिक काश्तकार 55.12 प्रतिशत बसवा तहसील में है जिनमें 39.17 प्रतिशत पुरूष व 61.78 प्रतिशत महिलाएँ है। बसवा तहसील में सर्वाधिक काश्तकार होने के कारण यह है कि इस तहसील में नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत कम है और इस तहसील की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है जिसकी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि कार्य है। बसवा तहसील के बाद दूसरे स्थान पर 53. 76 प्रतिशत काश्तकार दौसा तहसील में है जिसमें 38. 44 प्रतिशत पुरूष व 61.61 प्रतिशत महिलाएँ है। दौसा तहसील के बाद तीसरे स्थान पर लालसोट तहसील में 53.51 प्रतिशत काश्तकार है जिसमें 37.97 प्रतिशत पुरूष व 60.36 प्रतिशत महिलाएँ है। लालसोट तहसील के बाद चतुर्थ स्थान पर 46.92 प्रतिशत महवा तहसील में है जिनमें 35.02 प्रतिशत पुरूष व 51.83.21 प्रतिशत महिलाएँ है। सिकराय तहसील में काश्तकार कम होने का प्रमुख कारण यह है कि सिकराय तहसील में कृषि विकास कम है।

जिले में सर्वाधिक खेतीहर मजदूर महवा तहसील में 37. 75 प्रतिशत है जिसमें 37.25 प्रतिशत पुरूष व 95.98 प्रतिशत महिलाएँ है। महवा तहसील में सर्वाधिक खेतीहर मजदूर होने का प्रमुख कारण यह है कि तहसील की अधिकांश जनसंख्या इस तहसील में रहने लगी है क्योकि महवा राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या–11 पर होने के कारण अधिकांश लोग गाँवों से शहरों में आकर रहने लगे है एवं इस तहसील की जनसंख्या भी अधिक है। खेतीहर मजदूरों की जनसंख्या जिले में सबसे कम दौसा तहसील में 19. 93 प्रतिशत है जिसमें 16.68 प्रतिशत पुरूष व 21.60 प्रतिशत महिलाएँ है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यह तहसील में जिला मुख्यालय भी है। अतः यहाँ लोग अपना स्वयं का रोजगार करते है और खेतीहर मजदूरी पर कम ध्यान देते है, यही कारण है कि इस तहसील में जनसंख्या भी कम पायी जाती है। यहां कृषि मजदूरी के अपेक्षा अन्य कार्यों में मजदूरी अधिकांश रहती है। अध्ययन क्षेत्र की सिकराय तहसील में 25.86 प्रतिशत खेतीहर मजदूर है जिसमें 21.33 प्रतिशत पुरूष व 28.11 प्रतिशत महिलाएँ है। लालसोट व बसवा तहसीलों में खेतीहर मजदूरों का प्रतिशत लगभग एक समान लालसोट तहसील में 23.78 प्रतिशत है जिसमें 22.37 प्रतिशत पुरूष व 24.56 प्रतिशत महिलाएँ है। लालसोट तहसील में 23.78 प्रतिशत है जिसमें 22.37 प्रतिशत पुरूष 24. 56 प्रतिशत महिलाएँ है इन तहसीलों में खेती हर मजदूरों की जनसंख्या कम होने का प्रमुख कारण यह है कि यह तहसील ग्रामीण है तथा कोई बड़ा कस्बा नहीं होने के कारण यहाँ अन्य रोजगार नहीं मिलता है। जिले में पारिवारिक उद्योग में कार्य करने वाली जनसंख्या का सर्वाधिक प्रतिशत दौसा तहसील में 4.81 प्रतिशत है जिसमें 5.12 प्रतिशत पुरूष व 3.99 प्रतिशत महिलाएँ है। दौसा तहसील जिला मुख्यालय होने के कारण नगरीय घनी आबादी क्षेत्र है, इसलिए नगरीय क्षेत्र में पुरूषों का प्रतिशत अधिक है जबकि सबसे कम महवा तहसील में मात्र 1.51 प्रतिशत पाया जाता है जिसमें 2.15 प्रतिशत पुरूष व 1.15 प्रतिशत महिलाएँ है महवा तहसील में सबसे कम पारिवारिक उद्योगों में होने का प्रमुख कारण यह है कि इस तहसील की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है। जिले की अन्य तहसीलों में बसवा तहसील में कुल पारिवारिक उद्योग में कार्य करने वाली जनसंख्या का 2.14 प्रतिशत है जिसमें 3.09 प्रतिशत पुरूष व 1.69 प्रतिशत महिलाएँ है। लालसोट तहसील में कुल 4.04 प्रतिशत है जिसमें 4.82 प्रतिशत पुरूष व 3. 08 प्रतिशत महिलाएँ है एवं सिकराय तहसील में कुल 4. 01 प्रतिशत जिसमें 4.60 प्रतिशत पुरूष व 3.71 प्रतिशत महिलाऐं है।

अन्य कार्य करने वाली जनसंख्या का सर्वाधिक प्रतिशत सिकराय तहसील में 25.67 प्रतिशत है जिसमें 42.69 प्रतिशत पुरूष व 17.21 प्रतिशत महिलाएँ है। सिकराय तहसील में अन्य कार्य करने वाली जनसंख्या का सर्वाधिक प्रतिशत होने का प्रमुख कारण यह है सिकन्दरा व मानपुर कस्बे समीप है। इस तहसील में पुरूषों की नगरीय क्षेत्र में अन्य कार्य के लिए जाते हैं जिससे यह प्रतिशत अधिक है। जिले में सबसे कम प्रतिशत महवा तहसील में 13.81 प्रतिशत है इस तहसील में 25.56 प्रतिशत पुरूष व 9. 01 प्रतिशत महिलाएं है इसका प्रमुख कारण यह है कि इस तहसील की सम्पूर्ण जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों की है। अन्य तहसीलों में कुल 21.48 प्रतिशत है। जिसमें 39. 74 प्रतिशत पुरूष व12.73 प्रतिशत महिलाएँ है, लालसोट तहसील में कुल 19.65 प्रतिशत है। जिसमें 34.81 प्रतिशत पुरूष व 11.89 प्रतिशत महिलाएँ है तथा बसवा तहसील में कुल 19.70 प्रतिशत है जिसमें 37.36 प्रतिशत पुरूष व 12.36 प्रतिशत महिलाएँ है। (आरेख–2)

प्रस्तुत शोध–पत्र के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि दौसा जिले में आर्थिक क्रियाओं की क्षेत्रीय असमानता पायी जाती है जिसे नियोजन द्वारा संतुलित करने के लिए आर्थिक क्रियाओं की समानता की ओर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है। जिससे स्थानीय आधार पर जनसंख्या रोजगार प्राप्त कर, आर्थिक विकास में सहयोग प्रदान कर सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 Anderson, J.R., (1976): Landuse Landcover Changes- A Framework for Monitoring, Journal of Research, U.S., Geological Survey, Volume 5, No. 3, 143-153

2 Lillesand, T.M. & Keifer, R.W., (1979): Remote Sensing and Image Interpretation, New York: John Wiley & Sons, Inc, 1-10

3 शर्मा, एच.एस., शर्मा एम.एल. (2006): राजस्थान का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

4 महावर गोपीलाल (2016): दौसा जिला राजस्थान में नगरीयकरण की प्रवृति, अनाल्स, वोल्यूम नं. 33, पृष्ठ 154 से 158

5 जिला सांख्यिकीय रूपरेखा (2012–13)

प्रगतिवादी विचाराधारा एवं नागार्जुन के उपन्यास

प्रियंका यादव
शोधार्थी, मणिपाल विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

साहित्यकार के व्यक्तित्व का साहित्य एवं समाज से गहरा सम्बन्ध होने के कारण वह सामाजिक दायित्वों से मुक्त नहीं हो सकता। साहित्यकार को समाजोन्मुखी बनाने में प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रमुख भूमिका निभाता है। स्वतंत्रता के बाद के उपन्यासकारों में सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार बाबा नागार्जुन के उपन्यासों में समाज की यथार्थ अभिव्यक्तिके साथ आम आदमी के दुःख दर्द, पीड़ा और शोषण के विरुद्ध आक्रोश का वर्णन भी है। नागार्जुन के उपन्यास किसान एवं मजदूरों की जिंदगी के दस्तावेज हैं। नागार्जुन के पात्र अदम्य उत्साह और साहस के साथ अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रगतिवादी विचार के परिप्रेक्ष्य में नागार्जुन के उपन्यासों का मूल्याकंन किया गया है।

संकेताक्षरः *प्रगतिवाद, प्रगतिवादी साहित्य, नागार्जुन, उपन्यास ।*

कला की कोटि को क्रमबद्ध करने की कसौटी कला मीमांसक अपने काल रूचि एवं आवश्यकता के आधार पर तय करते हैं लेकिन यदा–कदा कुछ कलाकारों की कलाकृतियाँ ऐसी होती हैं जो अपनी कसौटी स्वयं निर्मित करती हैं। ऐसी यदा–कदा सृजित रचनाऐं ही चिरंतनतता की सीमा तक पहुंचती है और स्वयं के लिए ऐसा स्थान तय करती हैं जो अगली परम्परा के लिए उदाहरण बन जाता है। नागार्जुन (वैद्यनाथ मिश्र) हिन्दी साहित्य में ऐसे ही स्थान पर है। जून 1911 में जन्मे नागार्जुन का रचनाकाल 1929 से 1997 तक रहा है। काव्य, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, संस्मरण इनकी कलम से कुछ भी अछूता नहीं रहा। संवेदना के प्रत्येक रंग को इन्होने कलमबद्ध किया। नागार्जुन की विचारधारा एवं रचना हिन्दी साहित्य के बुद्धि बोझिल रूपवादी ढाँचे को तोड़ती है। अपनी इसी विशेषता के कारण वे कबीर, भारतेन्दु, निराला की कड़ी में ही खड़े दिखाई देते हैं। हिन्दी में जन वेदना को समझने एवं उसे पूरा करने के लिए प्रयास करने वाला साहित्य बहुत बड़ी मात्रा में लिखा गया है। ऐसी ही एक साहित्य धारा प्रगतिवाद या प्रगतिशील साहित्य धारा के नाम से जानी जाती है। नागार्जुन प्रगतिशील साहित्यधारा के प्रमुख साहित्यकार हैं। इनके साहित्य में शोषण एवं अन्याय का विरोध, संघर्ष की अभिव्यक्ति, क्रान्ति की भावना देखने को मिलती है, ये सभी प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृतियाँ भी हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में प्रगतिवाद की छवि देखने से पूर्व प्रगतिवाद का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना अधिक उपयुक्त है।

प्रगतिवादी विचारधारा

प्रगति शब्द का अर्थ है, आगे बढ़ना इस अर्थ के अनुसार प्रत्येक काल का साहित्य प्रगतिशील साहित्य होता है, क्योकि वह अपने से पूर्व के साहित्य से आगे बढता है। किन्तु हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त प्रगतिवाद एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है, हिन्दी में जो साहित्य साम्यवाद की अभिव्यक्ति है उसे प्रगतिवादी साहित्य कहते हैं। जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद तथा दर्शन के क्षेत्र में तदात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद कही जाती है। प्रगतिवादी साहित्य सामाजिक वैषम्य का निवारण रकने के लिए मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचारक साहित्य है।

हिन्दी में प्रगतिवादी साहित्य की पृष्ठभूमि

भारत में अंग्रेजी राज्य के स्थापित जो जाने पर औद्योगिकरण प्रारम्भ हो गया। अनेक मिलो एवं कारखानों की स्थापना से पूँजीपति एवं मजदूर वर्ग उत्पन्न हुए। परिणामतः यहाँ भी श्रमिक और पूँजीपति, शोषित एवं शोषक वर्ग की उत्पति हुई और कालान्तर में इन दोनों वर्गों के मध्य विभिन्न प्रकार के संर्घष स्वाभाविक रूप से उठ खड़े हुए। इससे मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित होकर यहाँ भी साम्यवाद का प्रसार होने लगा। इस विचारधारा से भारतीय समाज एवं साहित्यकार दोनों प्रभावित हुए।

1936 में मुंशी प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। इसी के साथ साम्यवाद ने साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश किया। मुंशी प्रेमचंद तथा रविन्द्रनाथ टैगोर जैसे उच्चकोटि के रचनाकारों ने साम्यवाद को प्रश्रय दिया।

हिन्दी के प्रगतिवादी साहित्यकारों में विशेष रूप से उल्लेखनीय सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, रांगेय राघव। इसके अतिरिक्त कुछ नये साहित्यकार भी इससे प्रभावित हुए जैसे गिरिजा कुमार माथुर, सोहनलाल द्विवेदी, मुक्तिबोध तथा सुधीन्द्र।

प्रगतिवादी विचारधारा, मार्क्सवाद के समान ही समाज को शोषक एवं शोषित के रूप में देखता है। प्रगतिवादी शोषक वर्ग के विरूद्ध शोषित वर्ग में चेतना लाने तथा उन्हें संगठित कर शोषण मुक्त समाज की स्थापना की कोशिशों का समर्थन करता है। जनता के दारिद्रय, पूँजीपतियों के विरूद्ध आक्रोश, इतिहास, धर्म, संस्कृति एवं कला की भौतिकवादी व्याख्या, ब्रह्मवाद का विरोध तथा रीतिकालीन अंलकृत शैली के विरूद्ध अभिधावादी शैली का प्रयोग प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषता रही हैं। इस अर्थ में प्राचीन से नवीन की ओर, शांति से क्रान्ति की ओर, आदर्श से यथार्थ की ओर, पूंजीवाद से समाजवाद की ओर एवं रूढ़ियों से स्वछन्द जीवन की ओर बढ़ना ही प्रगतिवाद है।

नागार्जुन समाजवादी यर्थाथवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं। दरभंगा जिले की कहानियों के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय सर्वहारा वर्ग की पीड़ा तथा वर्ग संघर्ष को अभिव्यक्त करने में सफल रहे हैं। मार्क्सवादी तथा प्रगतिवादी सिद्धान्त तथा विचारधारा की विशेषताएँ इनके उपन्यासों में विशेष रूप से दृष्टिगत होती हैं। इनके समस्त उपन्यासों में प्रगतिवादी विचारधारा का उन्मेष निम्न प्रकार से दृष्टिगोचर होता है।

नागार्जुन के उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना

नागार्जुन हर प्रकार में शोषण और अन्याय के विरूद्ध डटकर खड़े होने वाले, संघर्ष की अभिव्यक्ति करने वाले निडर प्रगतिशील साहित्यकार है। इस कारण आलोचकों ने उन्हें मार्क्सवादी, समाजवादी भी माना है। ये सिद्धान्त के तौर पर किसी भी विचारधारा से जुड़े हुए नहीं थे अपितु उन विचारों से प्रभावित होकर शोषितों की मुक्ति के लिए लिखने वाले साहित्यकार हैं। प्रगतिशील साहित्य की सभी विशेषताऐं हमें नागार्जुन के साहित्य में दृष्टव्य होती हैं जो निम्नानुसार है।

शोषित जन की पक्षधरता

प्रगतिशीलता की पहली शर्त है मानव को संत्रास से मुक्ति। आज के निर्मम शोषण की चक्की के पाटों में पिसने वाले शोषित वर्ग, मजदूरों किसानों एवं पीड़ितों की दशा का प्रगतिवादी साहित्य में मार्मिक चित्रण किया है। शोषितों के दुख दर्द और उनका संघर्ष व्यक्त करना नागार्जुन के उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य है। यह पक्षधरता उनके पहले उपन्यास रतिनाथ की चाची से ही आरम्भ हो गई थी। चाची गौरी एक शोषित पात्र है उनका शोषण कई प्रकार से होता है कभी लोगों द्वारा, कभी सामाजिक मान्यताओं द्वारा। बलचनमा, वरूण के बेटे, बाबा बटेसरनाथ, गरीबदास आदि उपन्यासों में भी जमीदारी शोषण से पीड़ित पात्र दुख सहते हुए शोषण के विरूद्ध संघर्ष करते हैं। बलचनमा जमीदारों के विरूद्ध लड़ता है, मलाही गोंदियारी के मछुआरे समूह बनाकर लड़ते हैं, बाबा बटेसरनाथ को बचाने के लिए गांव के सब लोग लड़ते हैं दुखमोचन की लड़ाई भी सबकों संगठित करने के लिए ही है। ये सभी शोषितों के संघर्ष हैं।

बाबा बटेसरनाथ उपन्यास में झिगुंर जैसे छोटे प्राणी के बारे में नागार्जुन लिखते है कि झिगुंर एक तुच्छ कीड़ा होता है। सैकड़ों की तादाद में जब ये एक स्वर होकर आवाज करने लगते है तो अजीब समां बंध जाता है, सामुहिक स्तर की एकाग्र महिमा के आगे मेरा सर सदैव नत होता है एवं होता रहेगा।

यहां झिगुंर को शोषित वर्ग का प्रतीक बताया गया है एवं उनकी एवं उनकी एकता एवं संगठन का आहवाहन किया

गया है। इन्होंने अपने सभी उपन्यासों में शोषित पात्रों को केन्द्र में रखकर कथानक की रचना की तथा शोषण से मुक्ति की तरफ अग्रसर भी किया।

रूढ़ियों का विरोध

प्रगतिवादी साहित्यकार धर्म, समाज तथा उस तथाकथित ईश्वर द्वारा निर्मित नियमों और उपनियमों को छिन्न–भिन्न कर देना चाहता है। उसे मानव की महत्ता स्वीकार्य है उसे अन्ध विश्वासों, मिथ्या परम्पराओं एवं रूढ़ियों पर प्रखर प्रहार करके मानव को मानव रूप में देखना अभिष्ट है। यही विशेषता नागार्जुन के उपन्यासों में देखने को मिलती है। इनका बलचनमा हर शोषण और अत्याचार को ईश्वर प्रदत्त समझकर स्वीकार नही करता अपितु उसका मानना है कि यह स्थिति मानवकृत है। ईश्वर का नाम लेकर उसका भय दिखाकर शोषक वर्ग जनसाधारण को ठगता है। बलचनमा इसका विरोध करता है।

इसी प्रकार ''नई पौध'' में एक रूढ़ीवादी परम्परा अनमेल विवाह की समस्या का विरोध करके उसका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। गाँव के प्रगतिशील नवयुवक बिसेसरी का विवाह एक बूढे वर से रोककर एक युवक से उसका विवाह कराते हैं। यह घटना सड़ी गली परम्पराओं एवं रूढ़ियों पर नवीन स्वस्थ चेतना तथा विचारधारा का परिचायक है। नागार्जुन का साम्यवादी रूझान पुनर्विवाह एवं अन्तरजातीय विवाह का समर्थन कर पुरानी गलत परम्पराओं को दूर करने का समाधान प्रस्तुत करता है। दुखमोचन उपन्यास इसका सटीक समाधान है। भोली–भाली ग्रामीण जनता के भरोसे एवं विश्वास का गलत फायदा उठाकर उन्हें अंधविश्वास के दलदल में धकेलने की कहानी ''जमनिया का बाबा'' उपन्यास कहता है।

शोषको के प्रति घृणा एवं रोष

साम्यवादियों के अनुसार इस संसार में केवल दो ही जातियाँ है शोषक–शोषित, प्रगतिवादी साहित्यकार शोषकों के प्रति सदैव घृणा एवं आक्रोश की भावना व्यक्त करता आया है एवं शोषितों की मुक्ति का प्रयत्न ही उनके साहित्य का उद्देश्य रहा है। 1952 में लिखा गया ''बलचनमा'' एक वर्ग विभाजित समाज का साफ नजारा है। इसमें नागार्जुन ने पूँजीपति एवं जमीदारों द्वारा किये गये शोषण को खुलकर चित्रित किया है एवं शोषकों पर विद्रोह पूर्व करारा व्यग्ंय किया है। बलचनमा के पिता को जमीदारों के जुल्मों ने मौत का शिकार बना दिया था। उनकी बहन के साथ भी बलात्कार का प्रयास किया गया था इस कारण बचलनमा के हृदय में शोषकों के प्रति रोष का भाव था। इसी घृणा एवं रोष के कारण उसमें वर्ग संघर्ष की भावना प्रबल हो जाती है। नागार्जुन का मानना है कि हर शोषण से मुक्ति के लिए व्यक्त किया गया विचार प्रगतिशील विचार है। नागार्जुन ने अंग्रेजी शासन एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की भी जमींदारी का यथार्थ चित्रण कर उस पर प्रगतिशील चिन्तन व्यक्त किया है। उनके रतिनाथ की चाची, बलचनमा, दुखमोचन, वरूण के बेटे तथा बाबा बटेसरनथ उपन्यासों में ये विशेषता देखने को मिलती है।

जातीवाद का विरोध

प्रगतिशील कथाकार होने के कारण नागार्जुन के उपन्यासों में व्याप्त जीवन दर्शन समाजवादी चेतना के अधिक निकट दिखाई देता है। समाज में सभी जातियों के वर्गों को विकास के समान अवसर प्रदान करने की पक्षधरता इनकी रही है। इनके उपन्यासों में भारतीय समाज में चली आ रही छूआछूत एवं जाति प्रथा का भी विरोध किया गया है। बलचनमा उपन्यास का मुख्य पात्र बलचनमा जब फूलबाबू के पास आश्रम में जाता है तो वे उसे आश्वासन दिलाने का प्रयास करते है कि इस आश्रम में सब समान हैं, जातीवाद या छुआछूत की मान्यता यहां नही हैं तो बलचनमा कहता है कि छुआछूत का भेद सदा से चला आ रहा है बाहर से ये लोग चाहे कितना भी दिखावा कर ले किन्तु हृदय से आज भी नीची जाति वालों का सम्मान नहीं करते उनके साथ खाना खाने की बात तो काफी बड़ी है। भिन्न – भिन्न जातियों में भेद के अलावा एक ही जाती में भी वंश श्रेष्ठता की भावना प्रबल थी।

''रतिनाथ की चाची'' उपन्यास में जातीय भेदभाव की प्रथा का चित्रण किया गया है एक बार कुली राउत नाम का दलित पात्र रतिनाथ को उसके मामा के यहाँ छोड़ने जाता है तो उसे वहाँ अपनी जाती के लोगों के यहाँ ही ठहरना पड़ता है यहाँ तक कि उन लोगों को मालिक के सामने गाड़ी या छकड़े में बैठने की अनुमति भी नहीं थी।

गरीबदास उपन्यास में तो प्रखर रूप से दलित जीवन का चित्रण किया है कि हरिजनों की बस्ती को गाँव के बाहर बसाया गया क्योंकि उनको नीची जाती का माना जाता था। दलित बच्चों को पाठशाला में नहीं बैठने दिया जाता था, गरीबदास ऐसे ही दलित एवं निम्नजाती के विद्यार्थियों

के लिए अलग पाठशाला खोलते है। भारतीय समाज के ऐसे सभी सामाजिक यर्थाथ का वर्णन तथा विरोध नागार्जुन ने किया।

भाग्यवाद एवं ईश्वर का विरोध

प्रगतिवादी साहित्यकारों की मान्यता थी कि गरीब जनता अधिक भाग्यवादी है। वह समझती है कि उनकी यह जो दयनीय अवस्था है वह उनके पूर्वजन्म के कर्मफल का कारण है। भगवान जैसा चाहेगा वैसा ही हम रहेंगे ऐसा उनका माना होता है। वे यह भूल जाते हैं कि इस अवस्था का निर्माता भगवान नहीं शोषक वर्ग है। प्रगतिवादी साहित्यकारों ने शोषितों की आँखे खोलने का कार्य किया। नागार्जुन ने अपने कई उपन्यासों में भाग्यवाद एवं ईश्वरवाद का विरोध किया। बलचनमा के नायक ने अपने निजी अनुभवों से यह जाना कि न्याय एवं कानून ईश्वर प्रदत्त नही अपितु मानवता है। अमीर एवं गरीब ईश्वर के बनाये हुए नहीं अपितु शोषक समाजकृत है। अतः वह न्याय के प्रति लोक जीवन की अंधश्रद्धा पर प्रहार करता हुआ कहता है कि :–

''चार परानी का परिवार छोड़कर मेरा बाप मर गया यह भी ईश्वर ने अच्छा ही किया। भूख के मारे दादी एवं माँ आम की गुठलियों का गुदा चूर–चूर कर फांकते हैं यह भी भगवान ठीक ही करते है। सरकार आप खुशबूदार भात अरहर की दाल, परबल की तरकारी, घी दही, चटनी खाते है यह भी भगवान की लीला है।''

''नई पौध'' उपन्यास में भी इसी तरह का उल्लेख बिसेसरी के विवाह के प्रति उसकी माँ का दृष्टिकोण वर्णित करते समय देखने को मिलता है। वह भी ईश्वर भरोसे सब कुछ मानकर अपनी पुत्री का विवाह एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से करने को तैयार हो जाती है।

''रतिनाथ की चाची'' उपन्यास में भी गौरी अपनी अव्यवस्था का कारण अपने भाग्य को मानती है जबकि उसका कारण उसका देवर एवं वह समाज था।

स्त्री शोषण का विरोध

मानव अस्तित्व के लिए नारी और पुरूष दोनों का अस्तित्व समान महत्वूपर्ण है। स्त्रियाँ सदैव शोषण की शिकार रही एवं समान अधिकारों से वंचित रही हैं। महिलाओं के शोषण का वर्णन तो पूर्ववर्ती सभी साहित्यकारों में किया किन्तु उससे निकलने का समाधान कुछ ही साहित्यकार प्रस्तुत कर पायें। नागार्जुन उन साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने नारी पर हो रहे शोषण का पुरजोर विरोध किया साथ ही संर्घषशील नारी की छवी भी प्रस्तुत की जिसमें नारी शोषण का पुरजोर विरोध किया गया। नागार्जुन ने स्त्रियों से सम्बन्धित निम्न समस्याओं में चित्रण किया है सम्पत्ती का अधिकार एवं अनमेल विवाह, विधवा जीवन की समस्यायें, स्त्रियों की खरीद बिक्री एवं वेश्यावृत्ती की समस्या। नागार्जुन ने बलचनमा एवं रतिनाथ की चाची उपन्यास में स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार ना देने का विरोध किया एवं इससे उत्पन्न समस्याओं को भी दर्शाने का प्रयास किया।

''नई पौध'' ''उग्रतारा'' एवं ''पारो'' उपन्यास में इन्होंने अनमेल विवाह की समस्या से जूझ नही स्त्रियों की स्थिति एवं संघर्ष को उजागर किया। विधवा जीवन के दुष्परिणामों को भोगती हुई स्त्रियों का का चित्रण भी नागार्जुन के उपन्यासों के केन्द्र में रहा। 'रतिनाथ की चाची की गौरी नई पौध की परमेसरी, कुम्भीपाक' की चम्पा तथा 'उग्रतारा' में चारों पात्र विधवा जीवन की प्रताड़ना को झेल रही थी। 'कुम्भीपाक' उपन्यास में वेश्यावृत्ती का दंश झेल रही स्त्रियों की व्यथा का वर्णन किया गया है। नागार्जुन ने समस्याओं को प्रस्तुत करने के साथ ही उनसे छूटने का संघर्ष तथा समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

स्त्री शिक्षा एवं स्वतंत्रता का महत्व

स्त्री–शोषण का सबसे बड़ा कारण उनका अज्ञान या अशिक्षा था स्त्री शिक्षा के प्रति उसके परिवार वालों का दृष्टिकोण बड़ा ही निम्न था। शिक्षा के प्रति नागार्जुन के विचार बड़े साफ थे। वे जानते थे कि शिक्षा से ही स्त्रियों के जीवन में प्रकाश आयेगा फिर उसका शोषण कोई नहीं पायेगा वह स्वंय को स्वतंत्र अनुभव कर पायेगी। ''बलचनमा'' के द्वारा उन्होंने कहलवाया है कि –

''हमारे तरफ जनाना लोग पढ़ी लिखी नहीं होती। अब दरभंगा मधुबनी जैसे शहरों में मास्टरनी, डाक्टरनी दिखाई पड़ती है। देहात में कही –कही लड़कियों के स्कूल देखने को भी मिलते है मगर इतने से क्या हो जाता है ? जब लड़कियां भी लड़कों की तरह पढ़ी– लिखी होगी तभी इस मुल्क का उद्धार होगा''।

'नई पौध' की बिसेसरी भी थोड़ी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् की अनमेल विवाह का विरोध कर पाती है।''कुभीपाक'' की भुवन शिक्षा के माध्यम से ही वेश्यावृत्ती के दलदल से निकल कर स्वतंत्र जीवन का स्वप्न साकार कर पाती है।

मजदूर एवं किसान आन्दोलन

जमींदारी उन्मूलन कानून पास होनेपर जमींदारों ने किसानों को बेदखल करना प्रारम्भ कर दिया था। कानून के अनुसार हल चलाने वाला ही जमीन का मालिक होगा। लेकिन जमींदार इसकी पालना ना करके किसानों को मजदूर बना रहे थे। इसके विरोध में किसानों एवं मजदूर वर्ग में चेतना का संचार होने लगा था। एवं वे अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर उनके लिए लड़ने भी लगे थे। इसी के कारण किसान सभाओं का निर्माण होने लगा था मजदूर संगठन बनने लगें। ''बाबा बटेसरनाथ'' उपन्यास तथा बलचनमा उपन्यास में इसी प्रकार के संघर्ष को अभिव्यक्त किया गया 'वरूण के बेटे' उपन्यास में भी मछुओं के संगठन एवं आन्दोलन को उजागर कियागया। यही प्रगतिवाद की विशेषता है कि यदि किसान मजदूर अपना विकास चाहते है तो उनमें संगठन एवं संघर्ष करने की क्षमता होनी चाहिए यह क्षमता नागार्जुन के उपन्यासों में भी देखने को मिलती है। नागार्जुन स्वयं भी स्वामी सहजानन्द से मिलकर राहुल सांस्कृत्यायन की प्ररेणा से किसान आन्दोलन में कूद पड़े थे। सक्रीय प्रगतिशीलता उनकी चेतना में कूट–कूट कर भरी थी।

नागार्जुन द्वारा चित्रित संघर्ष से स्पष्ट है कि श्रम करने वाला संगठित होकर अगर कुछ करें तो उसके आगे अन्यायी की कुछ नहीं चलती। उनका मानना था कि इस प्रकार के संगठन सकारात्मक कार्यो को सही दिशा देने के लिए होने चाहिए।

इस प्रकार नानार्जुन जी ने शोषित वर्ग के मनोबल को नवीन शक्ति प्रदान की है। वे प्रगतिशील विचारों के सच्चे समर्थक है। आदर्श समाज की कल्पना उनके लिए महत्वपूर्ण है। नागार्जुन जनमानस के भविष्य का विचार करके निराश नहीं होते अपितु परिस्थितियों को बदलने में विश्वास रखते है। वे प्रगतिशील परम्परा के सच्चे नायक है इसीलिए उनका साहित्य आज भी प्रासंगिक है। इन्होंने उनका साहित्य आज भी प्रासंगिक है। इन्होंने सर्वहारा वर्ग को प्रमाणिकता के साथ संसार के समक्ष प्रस्तुत किया। इसीलिए नागार्जुन सच्चे देशभक्त एवं प्रगतिवादी साहित्यकार हैं क्योंकि देश उनके लिए एक भौगोलिक इकाई ही नहीं अपितु एक सजीव सभा है जिसे उन्होंने सारी अच्छाईयों एवं बुराईयों के साथ जाना समझा एवं प्रस्तुत किया। उन्होंने हर्ष विषाद आशाऐं, आकांक्षाऐं स्वप्न संघर्ष क्रान्ति आन्दोलन सबको अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया। वे जन्मना ब्राह्मण होकर भी केवल ब्राह्मण नही थे, बुद्ध की शरण में जाकर भी केवल बोद्ध नहीं थे, वे केवल अपने लोक एवं परिवेश के है, यही कारण है कि वे प्रगतिशील साहित्यकार है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *शर्मा शिवकुमार ''हिन्दी साहित्य : युग एवं प्रवृतियां'', आर.जी. पब्लिकेशन, 2015*
2. *डॉ. हरीसिंह, काव्यशास्त्र, चित्रा प्रकाशन, बुलन्दशहर, 2012*
3. *सिंह, डॉ. नामवर, 'आधुनिक साहित्य की प्रवृतियां, किताब महल, इलाहाबाद, 1966*
4. *सिंह डॉ. विजयबहादुर, नागार्जुन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1977*
5. *यादव, सुरेन्द्र कुमार 'नागार्जुन का उपन्यास साहित्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001*
6. *नागार्जुन रचनावली भाग–4, 'बलचनमा' सम्पादक शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली , 2003*
7. *नागार्जुन रचनावली भाग–4, 'वरूण के बेटे', सम्पादक शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2003*
8. *नागार्जुन रचनावली भाग–4, 'रतिनाथ की चाची', सम्पादक शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2003*
9. *नागार्जुन रचनावली भाग–4, 'बाबा बटेसरनाथ', सम्पादक शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली , 2003*
10. *नागार्जुन रचनावली भाग–4 'नई पौध' , सम्पादक शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2003*
11. *नागार्जुन रचनावली भाग–5, 'जमनिया का बाबा' , सम्पादक शोभाकान्त , राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2003*
12. *नागार्जुन रचनावली भाग–5 'कुंभीपाक' , सम्पादक शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन , दिल्ली 2003*
13. *शोभाकान्त , नागार्जुन मेरे बाबुजी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990*
14. *यास्मिन, डॉ. सूफिया, 'नागार्जुन' के उपन्यासों में स्त्री, साहित्यगार, जयपुर, 2016*

बून्दी जिले में सामाजिक–आर्थिक विकास के स्तर

भूपेश जेतवाल
शोधार्थी, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पृथ्वीतल पर जलवायु, उच्चावच, मृदा, जनसंख्या, सामाजिक और आर्थिक संरचना में प्रादेशिक भिन्नता पाई जाती है। अतः कृषि में प्रादेशिक भिन्नता का पाया जाना स्वाभाविक है। हरित क्रान्ति के पश्चात् वैज्ञानिक एवं तकनीकि विकास के कारण कृषि, उद्योग एवं तृतीयक व चतुर्थक व्यवसायों में काफी प्रगति हुई, फलस्वरूप मानव–जीवन भी प्रोन्नत हुआ है, परन्तु विभिन्न भागों में इन परिवर्तनों में बेहद असमानताएँ रही हैं, जिससे क्षेत्रीय असन्तुलनों काजन्म हुआ। इसी कारण विभिन्न प्रदेशों में मानव–जीवन के सामाजिक–आर्थिक तथ्यों के वितरण–प्रारूप में भी काफी भिन्नता उत्पन्न हुई है। आज विश्व की बदलती परिस्थितियों में मानव–जीवन में सामाजिक–आर्थिक विकास, मानव की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति का एकमात्र साधन है। विकास एक ऐसी अनवरत प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत कोई भी प्रदेश अपने सभी उत्पादक साधनों का अधिकतम कुशल उपयोग करके राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि करके उच्च स्तर की ओर बढ़ता है जिससे जीवन–स्तर व सामान्य कल्याण में वृद्धि होती है और सुखी जीवन के लिए अधिकाधिक सुविधाएँ प्राप्त होती जाती हैं। विकास के इसी दौर में सामाजिक–आर्थिक एवं प्रादेशिक विषमताएँ भी बढ़ती जाती हैं जिसके लिए आर्थिक विकास के प्राचलों का व्यवहार उत्तरदायी होता है। प्रस्तुत अध्ययन में विभिन्न चर मूल्यों को लेकर सामाजिक–आर्थिक विषमताओं को इंगित करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षरः *क्षेत्रीय असन्तुलन, प्रादेशिक विषमताएँ, सामाजिक चर, आर्थिक चर, सामूहिक सूचकांक, आधारभूत सुविधाएँ।*

किसी भी क्षेत्र में विकास–कार्यक्रमों के फलस्वरूप सामाजिक सुविधाओं के विकास से उस क्षेत्र के लोगों के आर्थिक व सामाजिक जीवन में सुधार होता है। वास्तव में प्रादेशिक विकास ही सामाजिक विकास के मापन की उपयुक्त विधियों में से एक है। प्रादेशिक विकास के तत्वों में स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन व संचार, पेयजल, विद्युत–आपूर्ति इत्यादि शामिल हैं। ये तत्व सामाजिक व्यवस्था के कार्यों की किस्म, आर्थिक कल्याण की क्षमता एवं नीति के बारे में विचार और व्यक्तियों के व्यवहार के तरीके के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। सामाजिक–आर्थिक अध्ययन एक अन्तर्विषयक उपागम है जो किसी प्रदेश या क्षेत्र के समाज व अर्थव्यवस्था के कई पक्षों के सहसम्बन्धों को प्रकट करता है। किसी भी विकासशील देश के किसी प्रदेश या क्षेत्र में बढ़ती हुई समृद्धि व कल्याणकारी कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए उस प्रदेश के सामाजिक–आर्थिक विकास का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

राजस्थान के दक्षिण–पूर्व में हाडौती प्रदेश में विस्तृत बून्दी जिले में गत दशकों में हुए विकास–कार्यों के बावजूद कई क्षेत्रों में प्रादेशिक असमानताएँ पायी जाती हैं। जिले में सामाजिक–आर्थिक भिन्नता को ज्ञात करने के लिए विभिन्न चर मूल्यों को

लेकर विकास के स्तर को ज्ञात करना आवश्यक हो जाता है। अतः जिले के संतुलित विकास हेतु प्रमुख सुझावों को इंगित किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

- समाजिक–आर्थिक चरों का विश्लेषण करना।
- समाजिक – आर्थिक विकास के स्तर निर्धारित करना।
- जिले के संतुलित विकास हेतु सुझाव देना।

परिकल्पनाएँ

- साक्षरता, सामाजिक–आर्थिक विकास का प्रमुख चर है।
- आर्थिक विकास व सामाजिक परिवर्तन परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं।

विधि–तंत्र

प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक आंकडों की सहायता से जिले में सामाजिक–आर्थिक दशाओं को व्यक्त करने वाले 16 चर मूल्यों को लेकर सामूहिक सूचकांक–विधि द्वारा जिले को चार सामाजिक – आर्थिक विकास के स्तरों में विभाजित किया गया है।

अध्ययन– क्षेत्र का परिचय

बून्दी जिला राजस्थान राज्य के दक्षिण– पूर्वी भाग में स्थित है जो भौगोलिक दृष्टि से हाडौती पठार के नाम से जाना जाता है। यह 24° 59‘ 11‘‘ से 25° 53‘11‘‘ उत्तरी अक्षांश तथा 75° 19‘30‘‘ से 76° 19‘ 30‘‘ पूर्वी देशान्तर के बीच विस्तृत है। बून्दी जिले का कुल क्षेत्रफल 5820 वर्ग किमी. है। वर्तमान में बून्दी जिला 6 उपखण्डों व 6 तहसीलों में विभक्त है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार जिले की जनसंख्या 11.11 लाख है। जिले का धरातलीय स्वरूप काफी विविधतापूर्ण है। मध्य भाग में अरावली एवं विंध्यन पहाडियों की दोहरी श्रृंखला का होना एक विशिष्ट लक्षण है। उत्तरी भाग ‘नगरचाल मैदान’ के रूप में तथा दक्षिणी भाग चम्बल कमाण्ड क्षेत्रान्तर्गत काली मिहि का मैदान है। जिले का दक्षिणी–पश्चिमी भाग ‘बरड‘ पठारी क्षेत्र के रूप में विस्तृत है।

सामाजिक– आर्थिक विकास के चर मूल्य

जिले के सामाजिक–आर्थिक विकास के स्तर को प्राप्त करने के लिए सन् 2015–16 को आधार मानकर सामाजिक–आर्थिक दशाओं को व्यक्त करने वाले निम्नांकित 16 चर मूल्यों का विश्लेषण किया गया।

A. सामाजिक चर मूल्य

1. प्रति एक लाख जनसंख्या पर चिकित्सा संस्थाओं की संख्या
2. प्रति एक लाख जनसंख्या पर माध्यमिक – उच्च माध्यमिक विद्यालयों की संख्या
3. प्रति दस हजार जनसंख्या पर प्राथमिक – उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या।
4. पुरूष–साक्षरता प्रतिशत में।
5. महिला–साक्षरता प्रतिशत में।
6. जनसंख्या–घनत्व (व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.)
7. जल–प्रदाय योजना से लाभान्वित ग्रामों का प्रतिशत।
8. डाक–तार घर सुविधायुक्त ग्रामों का प्रतिशत।

B. आर्थिक चर मूल्य

9. सिंचित क्षेत्र प्रतिशत में।
10. उन्नत किस्म के बीजों के अन्तर्गत क्षेत्र(प्रतिशत में)
11. प्रति हैक्टेयर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग (किग्रा. में)
12. प्रति हैक्टेयर शुद्ध काश्त क्षेत्र पर ट्रेक्टरों की संख्या।
13. कुल जनसंख्या से कृषि में लगे व्यक्तियों का प्रतिशत।
14. प्रति हैक्टेयर शुद्ध काश्त क्षेत्र पर पम्पसेट की संख्या।
15. विद्युतीकृत ग्रामों का प्रतिशत।
16. प्रति 100 वर्ग किमी. पर पक्की सड़कों की लम्बाई (किमी. में)

सामाजिक–आर्थिक चर मूल्य (2015–16)

तहसील	X1	X2	X3	X4	X5	X6	X7	X8	X9	X10	X11	X12	X13	X14	X15	X16
बून्दी	28.47	13.38	13.97	72.78	42.58	185	7.87	18.5	85.89	84.08	126.2	56.78	27.63	291.6	99.63	23.21
हिण्डोली	30.69	10.05	20.43	64.29	27.6	141	5.75	25.1	48.48	27.75	46.17	19.67	46.79	285.9	100	25.22
के.पाटन	29.24	13.22	18.42	76.46	41.55	176	11.01	22	80.94	82.05	109.6	42.76	32.81	156.1	98.6	30.09
नैनवां	32.12	9.93	15.83	71.84	32.13	149	5.52	26.1	47.68	21.65	45.44	24.36	35.71	355.1	98	20
इन्द्रगढ़	28.78	13.1	18.03	75.8	40.16	171	10.91	21	78.16	81.81	108.7	40.6	33.94	202.1	95.5	28.75

तालेड़ा	27.87	12.92	13.05	90.62	40.72	181	7.07	17.8	83.71	83.5	124.3	54.92	26.13	290.7	98.41	22.76
$\bar{X}$	29.53	12.1	16.62	75.3	37.46	167.2	8.02	21.75	70.81	63.47	92.91	39.84	33.73	263.6	98.36	25
S.D.	1.59	1.5	2.83	8.67	6.11	17.98	2.43	3.37	20.09	30.11	37.56	15.29	7.35	116.9	2.82	3.83

सामूहिक सूचकांक

																C.I.
बून्दी	-0.66	0.85	-0.94	-0.29	0.83	0.99	-0.07	-0.96	0.75	0.68	0.89	1.11	-0.82	0.24	0.45	-0.46	0.16
हिण्डोली	0.73	-1.36	1.35	-1.3	-1.61	-1.45	-0.93	0.99	-1.11	-1.18	-1.24	-1.32	1.77	0.19	0.58	0.06	-0.36
के.पाटन	-0.18	0.75	0.64	0.13	0.67	0.49	1.23	0.07	0.5	0.63	0.44	0.19	-0.12	-0.92	0.08	1.33	0.37
नैनवां	1.63	-1.44	-0.28	-0.4	-0.87	-1.01	-1.03	1.29	-1.15	-1.39	-1.26	-1.01	0.27	0.78	-0.13	-1.3	-0.45
इन्द्रगढ़	-0.47	0.66	0.5	0.06	0.44	0.21	1.19	-0.22	0.37	0.61	0.42	0.05	0.03	-0.52	-1.01	0.98	0.21
तालेड़ा	-1.04	0.55	-1.26	1.77	0.53	0.77	-0.44	-1.17	0.65	0.67	0.84	0.79	-1.03	0.23	0.02	-0.58	0.08

उपर्युक्त सामाजिक–आर्थिक चर मूल्यों के आधार पर सामूहिक सूचकांक की गणना कर जिले को चार सामाजिक–आर्थिक प्रदेशों में विभाजित किया गया है।

क्र.सं.	सूचकांक	स्तर	शामिल तहसीलें
1.	+0.30 से अधिक	उच्च	केशवराय पाटन
2.	+0.10 से +0.30	मध्यम विकसित	बून्दी, इन्द्रगढ
3	−0.30 से +0.10	अल्प विकसित	तालेडा
4.	−0.30 से कम	पिछडा हुआ	नैनवां, हिण्डोली

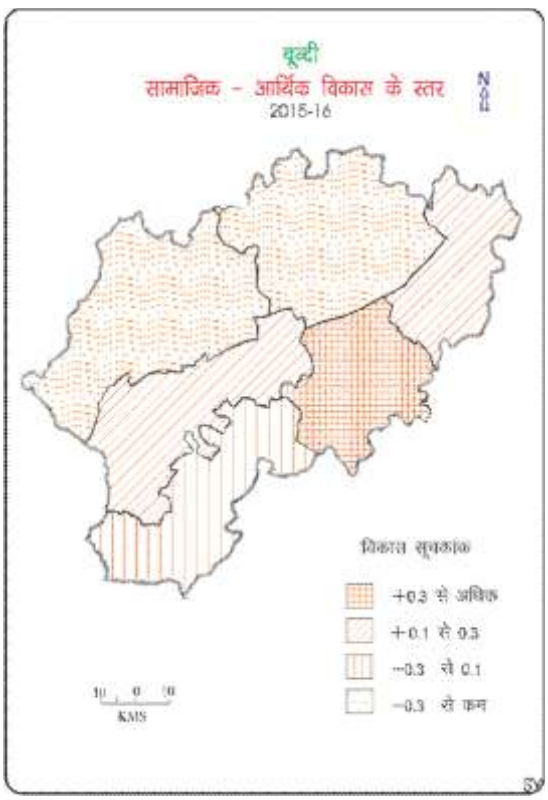

1. विकसित सामाजिक–आर्थिक प्रदेश

इस प्रदेश के अन्तर्गत जिले की केशवरायपाटन तहसील शामिल है। इस प्रदेश के सामाजिक–आर्थिक चरों का सामूहिक मान 0.37 है। यहाँ जिले की पुरूष–साक्षरता, पेयजल–व्यवस्था तथा सडक–घनत्व का सर्वाधिक तथा महिला– साक्षरता, जनसंख्या–घनत्व, सिंचाई, उन्नत बीज, उर्वरक, मशीनीकरण आदि का उच्च अनुपात है। इस प्रदेश का सामाजिक स्तर बेहद उन्नत है। यहाँ शिक्षा, चिकित्सा एवं पेयजल की बेहतर सुविधाएँ हैं। फलस्वरूप विकसित सामाजिक सुविधाओं के कारण यह प्रदेश सम्पूर्ण जिले में उच्च स्तर रखता हैं।

2. मध्यम विकसित सामाजिक–आर्थिक प्रदेश

इस प्रदेश के अन्तर्गत जिले की बून्दी एवं इन्द्रगढ़ तहसील शामिल हैं। विभिन्न सामाजिक–आर्थिक चरों का सामूहिक मान 0.16 एवं 0.21 परिकलित किया गया है। इस तहसील में माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालयों, महिला–साक्षरता, जनसंख्या–घनत्व, सिंचाई, ट्रेक्टरों की संख्या, उन्नत बीज आदि का सर्वाधिक अनुपात तथा पुरूष–साक्षरता, विद्युत–पम्प, विद्युतीकरण का उच्च अनुपात मिलता है। जिले का प्रमुख नगर इसी प्रदेश में स्थित होने के कारण यह प्रदेश आर्थिक दृष्टि से उन्नत है। सामाजिक सुविधाओं की दृष्टि से यह प्रदेश मध्यम स्थिति में है।

3. अल्प विकसित सामाजिक–आर्थिक प्रदेश

इस प्रदेश में जिले की तालेडा तहसील शमिल है। विभिन्न सामाजिक आर्थिक चरों का सामूहिक सूचकांक का मान +0.08 परिकलित किया गया। इस प्रदेश में माध्यमिक विद्यालयों, कृषि में लगे व्यक्तियों व विद्युतीकरण का उच्च अनुपात तथा चिकित्सा, डाक–तार व्यवस्था, सडक–घनत्व का मध्यम अनुपात मिलता है। उन्नत बीजों, रासायनिक उर्वरक का उपयोग ,ट्रेक्टरों की संख्या, शिक्षण संस्थाओं, साक्षरता आदि में निम्न अनुपात मिलता हैं। अतः इस प्रदेश का सामाजिक स्तर भी साधारण है।

4. पिछडा हुआ सामाजिक–आर्थिक प्रदेश

इस प्रदेश के अन्तर्गत जिले की नैनवाँ व हिण्डोली तहसील शामिल की गई हैं। यहाँ विभिन्न सामाजिक–आर्थिक चरों के सामूहिक सूचकांक का मान −0.30 से कम परिकलित किया गया है। इस प्रदेश में डाक–तार घरों व विद्युत–पम्प का सर्वोच्चअनुपात और कृषि में लगे व्यक्तियों का उच्च अनुपात पाया जाता है जबकि उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, ट्रेक्टर, विद्युतीकरण, सडक–घनत्व आदि का निम्नअनुपात पाया जाता है। आर्थिक दृष्टि से पिछडा होने के कारण सामाजिक स्तर भी बहुत निम्न है। शिक्षण संस्थाओं, महिला–साक्षरता व पेयजल–सुविधाओं आदि की दृष्टि से यह प्रदेश सबसे निम्न स्तर का है।

निष्कर्ष

जिले में सामाजिक–आर्थिक स्तर पर प्रादेशिक असमानताएँ पायी गयी हैं। जिले के पूर्वी भाग बहुत विकसित हैं तो उत्तरी भाग बेहद पिछडे हुए भी हैं। जिले के संतुलित विकास हेतु निम्न उपायों को अपनाया जाना चाहिए–

- पिछडे क्षेत्रों में आर्थिक तन्त्र की मजबूती हेतु आवश्यक आधारभूत सुविधाओं यथा सिंचाई हेतु वर्शा–जल–संग्रहण, यातायात, संचार आदि के विकास पर जोर दिया जाना चाहिए।
- सामाजिक–विकास हेतु पिछडे क्षेत्रों में शिक्षा, चिकित्सा, पेयजल, पक्की सड़कों आदि का विकास अत्यावश्यक है।
- पिछडे क्षेत्रों में औद्योगिक व्यवस्था की मजबूती हेतु सार्वजनिक, सरकारी तथा निजी तीनोंक्षेत्रों की भागीदारी आवश्यक है।
- जिले की हिण्डोली व नैनवाँ तहसीलों में ग्रामीण कुटीर उद्योगों, पशुपालन एवं डेयरी उद्योग के विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिए। कृषि व पशु–आधारित कुटीर उद्योगों के लिए अनुदान एवं कम लागत पर सुविधा उपलब्ध करवाना अपेक्षित है।
- पिछड़े क्षेत्रों में विभिन्न आर्थिक क्रियाकलापों के विकास हेतु उचित दरों पर ऋण–व्यवस्था की जानी चाहिए तथा विभिन्न सरकारी प्रयासों द्वारा कृषकों कोइन योजनाओं से अवगत कराकर उन्हें अमल में लाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- जिले के समग्र विकास हेतु सुनियोजित, पारदर्शितापूर्ण एवं प्रभावी निरीक्षण द्वारा योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 *कौर, सुरेन्द्र (1986)ः ''ग्रीन रीवोल्यूशन एण्ड सोशियो इक्नोमिक ट्रान्सफॉरमेशन टू कन्ट्रीसाइड इन पंजाब'', अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध, पंजाब विश्वविद्यालय, पटियाला*

2 *कुण्डु,ए.(1972)ः ''कन्स्ट्रक्शन ऑफ कम्पोजिट इन्डीसेज फॉर रिजन्लाइजेशन – एन इन्क्वायरी इन टू दी मेथड्स ऑफ एनालेसिस'', ज्योग्राफिकल रिव्यू ऑफ इण्डिया, वो. 37 नवम्बर 1 मार्च 1975, पृष्ठ 19–29*

 ISSN 2277-5587

3 मिश्रा, आर. एन. व शर्मा, पी.के. (2004) : ''स्पेशियल वेरिएशन इन लेवल ऑफ डवलपमेन्ट इन राजस्थान, इण्डिया'', रीजनल सिमबायोसिस, वोल्यूम 12, 2004

4 नन्दकिशोर एवं कलवार (1991) : ''सामाजिक–आर्थिक भूगोल'' पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, पृष्ठ146–170

5 Some Facts About Rajasthan(2014) : Directorate of Economical and Statistics, Government of Rajasthan, Jaipur

नवमानववाद – व्यक्ति की स्वतंत्रता का दर्शन

ज्योति देवल
व्याख्याता, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय ,अजमेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत के आधुनिक चिंतकों में मानवेन्द्र नाथ रॉय का अनूठा स्थान रहा है। रॉय मानववाद के जनक माने जाते हैं। जहां एक ओर उन्होंने सर्वप्रथम साम्यवाद की भर्त्सना की वहीं दूसरी ओर समस्त विश्व को मानववाद का संदेश भी दिया। रॉय के राजनीतिक विचारों में व्यक्ति का कार्य केवल आज्ञापालन करना ही नहीं अपितु अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखना भी है। रॉय का नवमानववाद मानव को व्यवस्था का केन्द्रिय तत्व और अंतिम साध्य मानता है। रॉय के अनुसार विवेक, नैतिकता और स्वतंत्रता मानव स्वभाव के तीन शाश्वत तत्व हैं। रॉय आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन में एक विशिष्ट आयाम प्रस्तुत करते हैं। नवमानववाद एक ऐसी व्यवस्था की खोज के प्रति समर्पित आग्रह का परिणाम है जिसमें व्यक्ति की गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए, उसकी भौतिक, नैतिक और आर्थिक उन्नति को सुनिश्चित किया जाए।

संकेताक्षरः *मानवेन्द्र नाथ रॉय, नवमानववाद, विवेक, नैतिकता स्वतंत्रता, भारतीय राजनीतिक चिंतन, गरिमा, भौतिक, आर्थिक उन्नति, अक्षुण्ण।*

भारत के आधुनिक राजनीतिक चिंतकों में मानवेन्द्र नाथ राय का अग्रणी स्थान रहा है। वे न केवल भारत में समाजवाद के अग्रगण्य थे अपितु साम्यवाद के प्रचार एवं प्रसार के भी अग्रदूत रहे हैं। रॉय नवमानववाद के जनक माने जाते हैं। भारत में साम्यवाद का अध्याय उन्हीं के नाम से प्रारंभ होता है। किंतु जितनी प्रबलता से उन्होंने साम्यवाद का समर्थन किया। उतनी ही प्रबलता से उन्होंने जीवन के उतरार्द्ध में उसका विरोध भी किया। जहां एक ओर एशिया और भारत को साम्यवाद का संदेश दिया वहां दूसरी और उन्होंने साम्यवाद की भर्त्सना कर सारे विश्व को मानववाद का संदेश भी दिया। भारत को साम्यवाद का मार्ग दिखाकर जिस तरह मानवीय स्वतंत्रता का उद्घोष किया उसका दूसरा उदाहरण विश्व में देखने को नहीं मिलता। यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उनका नवमानववाद भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन की विश्व को अनुपम देन है।

रॉय एक अत्यंत उच्च कोटि के विद्धान विचारक और प्रभावशाली लेखक एवं वक्ता थे। उन्होंने हमारे सामने जो मौलिक मानववाद का सिद्धांत प्रस्तुत किया वह राजनीतिक विचारों के क्षेत्र में नवीन योगदान है। रॉय एक कर्मण्य मनुष्य के रूप में वे निष्ठावान एवं समर्पित क्रांतिकारी थे और एक चिंतक के रूप में वे एक गहन एवं मौलिक सामाजिक दार्शनिक के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

रॉय उन चिंतकों में से है जिन्होंने अर्न्तराष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन को प्रभावित किया पर जो साथ ही साथ साम्यवाद की सीमाओं को भी स्पष्टता से समझ सके। साम्यवाद की वैज्ञानिक बुनियादी कमजोरियों का अतिक्रमण करते हुए नवमानववाद के रूप में राजनीतिक दर्शन का प्रतिपादन किया। जो मानव की स्वतंत्रता को केन्द्र में रखकर एक मौलिक मूल्य के रूप में स्थापित करते हुए लोकतंत्र के सिद्धांत को दृढ़ आधार प्रदान करता है और लोकतांत्रिक समाज की रूपरेखा भी प्रस्तुत करता है। नवमानववाद के रूप में एक ऐसा विकल्प प्रदान किया जिस पर मानवपरक नैतिकता खड़ी हो सकती है।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत एक बड़े संकटकाल से गुजर रहा था। हमारी समस्याएं और कठिनाइयां बहुत बढ़ गयी थी और वे अधिक जटिल भी हो गयी थी। देश में साम्प्रदायिकता ने भंयकर रूप धारण कर लिया था और जो प्रमुख राजनीतिक दल जिस प्रकार केन्द्र और प्रदेशों में सरकारें चला रहे थे उससे तो यह प्रतीत होता था कि लोकतंत्र और स्वतंत्रता की उन्हें कोई परवाह नहीं है।

रॉय ने इन सारी परिस्थितियों का सही पूर्वानुमान किया और राजनीतिक सिद्धांत और व्यवहार के क्षेत्र में नवीन रास्तों की तलाश की प्रक्रिया प्रारंभ की। अपने इस प्रयास में साहस और साधन के संबंध में उन्होंने एक ऐसे राजनीतिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया जो परंपरागत राजनीति की असफलता से परेशान समाज को मार्गदर्शन और प्रेरणा देगा।

एम. एन. राय के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों के विकास की यात्रा पर दृष्टिपात करने से यह निष्कर्ष निकलता हैं कि वे एक ऐसे आदर्श समाज की व्यवस्था की खोज करना चाहते थे जिसमें मनुष्य की पूर्ण स्वतंत्रताएं सुरक्षित हैं। उसके ऊपर दमनकारी – अन्यायकारी प्रतिबंधों का पूर्ण अभाव उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति सहज रूप से संभव हो तथा सबसे ऊपर व्यक्तित्व के विकास की नैतिक, बौद्धिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां उपलब्ध हो। ऐसी व्यवस्था की खोज में वह रूढ़िवादी मार्क्सवाद, गांधीवाद संसदीय लोकतंत्र का अध्ययन करते हैं किंतु इन सभी विचारधाराओं में उन्हें अनेक कमियां मिलती हैं। अतः अंत में वह नवमानववाद के आदर्श की व्याख्या 1946 में करते हैं।

एम. एन. राय के राजनीतिक चिन्तन का सर्वश्रेष्ठ रूप उनकी नवमानववाद की अवधारणा में दिखाई देता है। यह उनके समस्त चिंतन का सार एवं निष्कर्ष है। रॉय का नवमानववाद का दर्शन उनकी वैचारिक यात्रा का अंतिम चरण है। अनेक विचारधाराओं, दर्शनों और व्यवहारिक अनुभवों से निकलते हुए, उनकी अपूर्णताओं का विशुद्ध लोकतंत्र की कसौटी पर मूल्यांकन करते हुए अन्ततः वे नवमानववाद की सामाजिक–राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था के आदर्श पर पहुंचते है जहां व्यक्ति की विवेकशीलता, स्वतंत्रता तथा नैतिकता की छाया में प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता सुरक्षित है तथा पूर्ण विकास भी संभव होगा।

एम. एन. राय के अनुसार सभी प्रचलित विचारधाराएं एवं व्यवस्थाएं मनुष्य की स्वतंत्रता के इस मुख्य उददेश्य को अपनी प्रक्रिया में भुला ही नहीं देती वरन् उसके विरोधी हो जाती है। इसीलिए रॉय एक ऐसे राजनीतिक तंत्र और अर्थव्यवस्था का प्रस्ताव करते हैं जिसमें सत्ता का केन्द्रीकरण न हो सके और व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का उपभोग वास्तविक रूप में कर सके।

मध्ययुग में मानववादी विचारधारा पृष्ठभूमि में चली गई थी इसका कारण यह था कि विकास के क्रम में मानव ने जिन संस्थाओं का निर्माण किया था वे उसकी ही स्वामी बन गई और मानव इस काल में एक अधीनस्थ बनकर रह गया।

मध्य युग की समाप्ति और आधुनिक युग के आरंभ में विशेषकर पुर्नजागरण के दौरान मानव को पुर्नस्थापित करने का प्रयास किया गया इनमें एक्वीनास, आगस्टाइन, मार्सिलियो ऑफ पेडुआ, मार्टिन लूथर, मैकियाविली आदि प्रमुख थे। हॉब्स, लॉक रूसो जैसे समझौतावादी विचारक, ग्रीन जैसे उदार आदर्शवादी, मिल जैसे व्यक्तिवादी और बेन्थम जैसे उपयोगितावादी ने अपने–अपने तरीके से मानव और उसकी स्वतंत्रता को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।

रॉय को एक ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जो मानव प्रकृति के अनुकूल हो, जो मानव विश्वास का संदेश देता है, जो समस्या को उसके मूल में समझता है और उसके निदान को प्रस्तुत करता हो, जो मानव का गौण नहीं वरन् मूल में क्रियाशील समझ कर उसे प्रतिष्ठित करता है। संक्षेप में एक ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जो मानव को समग्र रूप में समझे और उसकी समस्याओं के निदान को प्रस्तुत करें और नवमानववाद की इसकी पूर्ति करता है।

रॉय का मत है कि उनका नवमानववाद प्राचीन मानववाद से इस रूप में भिन्न है कि सबसे पहली बार मानववादी दर्शन में मानव को केन्द्रिय एवं मौलिक स्थान दिया है जो उसे पहले नहीं मिला था। रॉय ने मनुष्य पर किसी आध्यात्मिक या प्राकृतिक सत्ता जैसे किसी बाह्य बंधन को मान्यता नहीं दी है। उनके अनुसार मानव पूर्ण स्वतंत्र है। स्वयं अपना केन्द्र है और भाग्य का स्वयं ही निर्माता है।

रॉय के शब्दों में ''परंपरागत मानववाद यह बताने में असमर्थ रहा है कि क्यों और कैसे व्यक्ति पर इस बात के लिए निर्भर रहा जा सकता है कि वह विवेकशीलता और नैतिकता से व्यवहार करेगा।''

रॉय ने यह स्पष्ट किया कि परंपरागत मानववाद में प्रत्येक व्यवस्था में व्यक्ति को सम्प्रभुता से वंचित कर उसे किसी ना किसी रूप में उसकी संप्रभुता को विभिन्न नामधारी संस्थाओं को सौंप दी। परंपरागत मानववाद की इस कमी को दूर करना ही नवमानववाद का आशय रहा है।

नवमानववाद मनुष्य को केन्द्र में रखते हुए मनुष्य के स्वतंत्र सत्ता के विभिन्न पहलुओं से संबंधित समस्त दर्शन

है। उक्त मानववाद में उग्र होने का अर्थ है ''विषय को उसके मूल रूप में समझना और मानव मात्र का मूल निःसंदेह स्वयं मानव ही है।''

आधुनिक मानव की विश्व दृष्टि न तो पूर्णतः आध्यात्मिक है और न पूर्णतः भौतिकवादी है। वर्तमान में भारतीय समाज और विश्व दो विरोधी राजनीतिक चिंतन धाराओं में विभाजित है जिसमें एक प्रजातांत्रिक धारा है तथा दूसरी साम्यवादी चिंतन धारा है। आधुनिक भारतीय समाज न तो पूर्णतया पूंजीवादी है और न पूर्णतया समाजवादी है। मानवेन्द्र नाथ राय ने इन दोनों विचारधाराओं की सीमाओं को रेखांकित करते हुए एक नवीन दर्शन का प्रतिपादन किया जिसे वह नवमानववाद की संज्ञा देते हैं। इस दर्शन का केन्द्र एवं प्रारंभ बिन्दु मनुष्य है। नवमानवतावादी दर्शन की मुख्य आधारशिला स्वतंत्रता की अवधारणा है।

एम. एन. राय ने व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसकी गरिमा पर अत्यधिक बल दिया है। उनका मानना है कि बिना मनुष्य की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखे प्रजातांत्रिक या साम्यवादी दोनों प्रणाली एक निरर्थक दिवास्वप्न की भांति है। प्राचीनकाल से ही मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए संघर्षशील रहा है और अपनी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव ने प्रकृति पर विजय भी प्राप्त की है। इस तरह मनुष्य नए-नए प्रयोगों के माध्यम से नवीन ज्ञान को अर्जित करता है और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का द्वन्द वर्तमान तक चला आ रहा है। वर्तमान में मानव केवल आर्थिक स्वतंत्रता नहीं चाहता वरन् वह मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक रूप से भी स्वतंत्र होना चाहता है। स्वतंत्रता से तात्पर्य शारीरिक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा बौद्धिक स्तर पर स्वतंत्रता है। मानव स्वतंत्रता प्रिय प्राणी है। वह एक स्वचिंतन एवं आत्मचेतन प्राणी है। ''सभी वस्तुओं का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। वास्तविकता यह है कि जब भी हम सामाजिक एवं राजनीतिक प्रणाली में कोई निर्णय लेते हैं तो हम व्यक्ति को केन्द्र में रखते हैं। यदि कोई सामाजिक प्रणाली मानव की स्वतंत्रता को बाधित करती है तो वह उचित प्रणाली नहीं है।'' कोई भी दर्शन तब तक महत्वपूर्ण नहीं है जब तक वह मानव की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखने की बात नहीं करता। वह व्यवस्था निरर्थक है जिसने मानव की स्वतंत्रता को वंचित किया जाता है या मानव की स्वतंत्रता को कोरी कल्पना मानने की भूल की जाती है। ''मानव के सभी प्रयास चाहे व्यक्तिगत हो या सामाजिक हो, स्वतंत्रता प्राप्ति की चेष्टा है। स्वतंत्रता का तात्पर्य स्वतंत्रता है।''

रॉय मानते हैं कि नैतिकता अपने आप में स्वतंत्र नहीं है। वह व्यक्ति से जुड़ी है। क्योंकि व्यक्ति ही मूल्यों का पालन कर मूल्यों को महत्व प्रदान करता है। मूल्यों को अर्थ मानव ही प्रदान करता है। नवमानववाद इस बात पर बल देता है कि राजनीतिक दर्शन का केन्द्र व्यक्ति होता है व्यक्ति की स्वतंत्रता होती है। और यह मानकर चलता है कि व्यक्ति एक चेतनशील प्राणी है। जिसके पास स्वयं का मस्तिष्क है स्वयं की चेतना है। इसीलिए रॉय मार्क्सवाद का विरोध करते हैं क्योंकि इस व्यवस्था में राजनीतिक शक्ति का केन्द्रीकरण एक वर्ग विशेष के हाथों में हो जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था में यंत्रों के नियंत्रण में अनुरूप हो जाता है अतः रॉय इन दोनों व्यवस्थाओं के अवगुणों को त्यागकर एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जहां मनुष्य स्वतंत्र हो। व्यक्ति की स्वतंत्रता रॉय के दर्शन का केन्द्र बिन्दु है।

निष्कर्ष –उपर्युक्त विवेचना के पश्चात निष्कर्ष स्वरुप यह कहा जा सकता है कि रॉय ने नवमानववाद के माध्यम से एक नवीन सामाजिक दर्शन प्रस्तुत किया है। रॉय का दर्शन एक नवीन दर्शन है जो कि उन्होंने पुरानी मान्यताओं और मार्क्सवाद की चुनौती देकर मानववाद की स्थापना की। रॉय ने कतिपय प्राचीन तथा सर्वमान्य विचारों को अपने दर्शन का आधार बना उन्हें पुर्नजीवित किया है उनका यह कार्य पुराने सिद्धांतों में नवीनता का संचार करता है और नवमानववाद के द्वारा व्यक्ति को आत्मविश्वास एवं आत्मप्रेरणा का मार्ग दिखाया है। जहां भाग्यवादिता का कोई स्थान नहीं है। धर्म राज्य और समाज के अवांछित बंधनों से व्यक्ति को मुक्ति को दिलाना ही नवमानववाद का अंतिम लक्ष्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 *अवस्थी एवं अवस्थी : ''प्रतिनिधि भारतीय राजनीतिक चिन्तक'' रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर (2009)*

2 *अग्रवाल एवं पलसानिया : ''भारतीय राजनीतिक विचारक'' आस्था प्रकाशन, जयपुर (2010)*

3 *नागर पुरूषोत्तम : ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन'' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (1984)*

4 *सक्सेना लक्ष्मी : ''समकालीन भारतीय दर्शन'' उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (1983)*

5 *सिंह वीरकेश्वर प्रसाद : ''आधुनिक राजनीतिक विचारधारायें'' ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली (1978)*

6 *रॉय एम. एन. : ''नवमानववाद'' वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर (1988)*

7 *Grover Virendra : **"A Biography of his vision and Ideas"** Deep and Deep Publishers, New Delhi (1998)*

8 *Nigam R. L. :* "Radical Humanism of M. N. Roy'', *Indus Publications, Calcutta* (1995)

 ISSN 2277-5587

विदेशी यात्रियों द्वारा वर्णित मुगलकालीन सामाजिक स्थिति :एक विवेचन

ईश्वर सिंह
व्याख्याता, जी.एस.एस.एस., अदमपुर (हरियाणा)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

इस शोध–पत्र से विदेशी यात्रियों द्वारा वर्णित मध्यकालीन विशेष रूप से मुगलकालीन सामाजिक स्थिति एवं सामाजिक जीवन की झलक प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मुगलकालीन भारतीय समाज में प्रचलित अनेक सामाजिक कुप्रथाएँ जैसे बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा, वेश्यावृति, बहु विवाह–प्रथा, दास–प्रथा इत्यादि के बारे में विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में मुगलकालीन भारतीयों के रहन–सहन, खान–पान, उनके मकानों, उनकी वेशभूषा, आमोद–प्रमोद के साधन, उनकी धार्मिक मान्यताओं, सौन्दर्य प्रसाधन आदि के बारे में वर्णन किया गया है। इस शोध–पत्र से विदेशियों के विशेष रूप से यूरोपियनों के भारतीय समाज के प्रति दृष्टिकोण की जानकारी भी मिलती है। शोध–पत्र में मध्यकालीन सामाजिक संस्थाओं के प्राचीनकाल से निरन्तरता की भी सूचना मिलती है व साथ ही भारतीय इस्लामिक संस्कृति की एकीकरण की सूचना भी मिलती है।

संकेताक्षरः *राल्फ फिच, एडवर्ड टैरी, निकोलस विथिगंटन, पित्रा डेला–वेला, जीन बैप्टिस्ट ट्रेवरनियर, फ्रांसिस बर्नियर, बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा, वेश्यावृति, बहु विवाह–प्रथा, दास–प्रथा।*

भारतवर्ष प्राचीनकाल से ही विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु रहा हैं। प्राचीन काल में अनेक विदेशी यात्री फाह्यान, हयुनसांग, अलबेरुनी इत्यादि भारत की यात्रा पर आये जिन्होंने भारतीयों के रहन–सहन, खान–पान और रीति–रिवाजों के बारे में विस्तार से बताया। प्राचीन काल की भाँति मुगल काल में भी अनेक विदेशी यात्री अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु यहाँ भ्रमणकारी, राजनीतिक प्रतिनिधि और व्यापारिक प्रतिनिधि के रूप में आते रहे है। इन विदेशी यात्रियों ने अपने यात्रा वृतांतों एवं व्यापारिक प्रतिवेदनों में भारतवर्ष की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का जो विवरण दिया है वह भारतीय इतिहास की अमूल्य धरोहर है। ये सभी यात्री प्रत्यक्षदर्शी थे जिसके कारण इनके विवरणों का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि जहाँ समकालीन इतिहासकार बादशाह के भय या प्रलोभनों के कारण वास्तविक स्थिति का विवरण देने में हिचकिचाहट महसूस कर सकते थे। वहाँ ये यात्री बिना किसी प्रलोभन के वस्तुस्थिति का विवरण देने के लिए स्वतंत्र थे। प्रस्तुत शोध पत्र में विदेशी यात्रियों द्वारा वर्णित मुगलकालीन सामाजिक स्थिति के विवेचन का प्रयास किया गया है।

राल्फ फिच (1588–1591) एक अंग्रेज यात्री था जो अकबर के शासनकाल में भारत आया था। उसने भारत के अनेक प्रमुख नगरों की यात्रा की और वहाँ के सामाजिक जीवन का प्रमुखता से वर्णन किया है। उसके अनुसार भारत में बाल–विवाह की प्रथा प्रचलित थी। उसने स्वयं बुरहानपुर में एक बाल–विवाह होते हुए देखा था। वह बनारस में हुए एक विवाहोत्सव के बारे में भी विवरण देता है। वह भारतीयों की धार्मिक मान्यताओं और अन्धविश्वासों के बारे में विवरण देता है। उसके अनुसार गुजरात में यदि विधवा चाहती तो उसे अपने मृत पति के साथ सती होने दिया जाता था, किन्तु यदि वह ऐसा करने से इंकार करती तो उसे जबरदस्ती सती होने के लिए मजबूर नहीं किया जाता था। उस दशा में उसका सिर मूंड दिया जाता था।[1] यह प्रथा बनारस में भी थी।

एडवर्ड टैरी सर थामस रो के साथ 1617 ई0 में के साथ मांडू की यात्रा पर आया था। टैरी अमीर वर्ग के लोगों के भवनों के बारे में बताता है कि उनके भवनों में अच्छी प्रकार की लकड़ी और ईटों का प्रयोग किया जाता था। भवनों की सजावट के लिए अच्छी प्रकार के संगमरमर का प्रयोग किया जाता था। उनके मकानों की ऊँचाई दो मंजिल से ज्यादा नहीं होती थी। दुमंजिले मकानों की ऊपरी मंजिल पर प्रायः लम्बे–चौड़े कमरे होते थे, जिनमें दोनों और साफ हवा आने–जाने के लिए दो–दो दरवाजे होते थे।[2] उसके अनुसार गरीब वर्ग के लोग कच्चे मकानों में रहते थे। इन मकानों की दीवारें मिट्टी की होती थी, जिनमें भूसा मिला होता था। इन मकानों में शहतीरों के स्थान पर बल्लियों का प्रयोग किया जाता था, ताकि यदि घर में आग लग जाए तो उसे दुबारा से जल्दी बनाया जा सके।

टैरी मुगल महिलाओं की वेषभूषा के बारे में विवरण देता है। उसके अनुसार मुगल महिलाओं के शौक भी बादशाहों के समान होते थे। उनके कक्ष भी वैल फर्निश्ड होते थे। शाही हरम, अमीरों की औरतें जरी की कीमती पोशाक पहनती थी। मुस्लिम औरतें सलवार और कमीज पहनती थी। सिर को ढ़कने के लिए मुस्लिम महिलाएँ दुपट्टे का प्रयोग करती थी। घर से बाहर जाने के लिए मुस्लिम महिलाएँ बुर्के का प्रयोग करती थी। हिन्दु महिलाएँ साड़ी का प्रयोग करती थी। साड़ी के नीचे पेटीकोट का प्रयोग किया जाता था। जाड़ों में कढ़े हुए सुन्दर कश्मीरी शालों का प्रयोग किया जाता था।[3] उच्च वर्ग के लोग अपने भोजन में भिन्न–भिन्न प्रकार के व्यंजनों का प्रयोग करते थे। खाने के लिए विभिन्न प्रकार के फल तथा मेवे काबुल और कश्मीर से मंगवाये जाते थे। साधारण लोग भोजन में आटे से बनी रोटी, दाल और सब्जी का प्रयोग करते थे। गर्मियों में मुख्य रूप से गेहूँ और जाड़ों में मक्का और बाजरे का प्रयोग होता था। खिचड़ी भी एक प्रकार का सर्वसाधारण भोजन था जिसे घी मिलाकर खाया जाता था। हिन्दु आमतौर पर शाकाहारी भोजन करते थे, मुस्लिम मांसाहारी थे।[4]

निकोलस विथिगंटन ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक कर्मचारी था जो भारत में 1612 से 1616 इ. के मध्य रहा। उसके अनुसार बनियों में 30 उपजातियाँ थी। बनियों में बाल–विवाह का प्रचलन था, जो लगभग 3–4 वर्ष की आयु में ही हो जाता था।[5] वह राजपूतों में सती–प्रथा का वर्णन करता हुआ कहता है कि, ''जब किसी राजपूत की मृत्यु होती है, तब उसकी पत्नि उसके साथ जल जाती है, वह अपना श्रृंगार करती है, उसके बाद अपने संबंधियों से मिलती है। अपने आभूषण पहनकर वह चिता की परिक्रमा करती है। चिता में बैठकर वह अपने पति का सिर अपनी गोद में ले लेती है। पति के साथ चिता में भस्म हो जाती है।[6]

निकोलस विथिगंटन सूरत में सती होने वाली स्त्री का वर्णन करते हुए लिखता है कि, ''जिस स्त्री को सती होना था, उसकी उम्र 10 वर्ष होगी। उसका पति एक सैनिक था जो युद्ध क्षेत्र में मारा गया था। परन्तु उसके कपड़े और साफा उसके घर लाया गया और इन कपड़ों को लेकर ही उसकी पत्नि सती हो गई।''[7] उसके अनुसार बनियों में सती प्रथा नहीं थी। उनके विषय में वह लिखता है, ''जब किसी बनिये की मृत्यु होती है, उसकी पत्नि अपने सारे आभूषण उतार देती है और इस स्थिति में ही अपना सारा जीवन बिताती है।''[8]

पित्रा डेला–वेला एक इतालवी यात्री था जो 1622 ई. में भारत की यात्रा पर आया था। वह मुगल भारत के तीन स्थानों सूरत, अहमदाबाद एवं खंभात की ही यात्रा करता है। वह गुजरात के आवासित उच्च वर्ग के पुरुष व स्त्रियों के पहनावे के बारे में विवरण देता है। उसके अनुसार सभी वर्गों के व्यक्ति बारिक या मोटे सूती वस्त्र पहनते थे। मुस्लिम स्त्रियाँ या तो सफेद वस्त्र या सुनहरे बेलबुटेदार वस्त्र पहनती थी। कभी–कभी मुस्लिम औरते मर्दो की भाँति पगड़ीनुमा वस्त्र सर पर लपेटती थी। हिन्दु स्त्रियाँ मुख्यतः लाल वस्त्र धारण करती थी।

पित्रा डेला–वेला के अनुसार हिन्दु न केवल विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा करते है बल्कि वे अनेक वृक्षों और पशुओं की भी पूजा करते थे। डेला–वेला सूरत में एक विशाल वट वृक्ष का वर्णन करते हुए कहता है कि हिन्दु वृक्षों की पूजा करते थे, तने पर एक मूर्ति खोद दी जाती है और हिन्दु लोग इस पूर्ति की पूजा करते है।[9] उसके अनुसार उच्च जातियों में सती–प्रथा का प्रचलन था। सती होने वाली स्त्री को कोतवाल की आज्ञा लेना जरुरी होता था। डेला–वेला एक स्त्री के बारे में जो सती होने जा रही थी के बारे में लिखता है, ''वह स्त्री घोड़े पर सवार थी। उसका मुँह खुला हुआ था, उसके साथ नर–नारी गाते बजाते जा रहे थे। उसके चेहरें पर शांति थी और वह आँसू नहीं बहाँ रही थी। वह इस आशा में अपने पति के साथ सती होने जा रही थी कि दूसरी दुनियाँ में जाकर उससे मिलेगी।''[10]

जीन बैप्टिस्ट ट्रेवरनियर 17वीं शताब्दी में भारत आने वाले विदेशी यात्रियों में सर्वाधिक ख्याती प्राप्त यात्री था। वह पेशे से एक जौहरी था। उसने लगभग पाँच बार भारत की यात्रा की। ट्रेवरनियर के अनुसार मुगलकालीन भारतीय समाज में गायिकाओं और वेश्याओं का अलग वर्ग था। गायिकाओं और नर्तकियों के द्वारा अनेक अवसरों पर शाही दरबार और अमीरों का अपनी कला के द्वारा

मनोरंजन किया जाता था। शादी, जन्म-दिन और अनेक पर्वो पर धनी लोगों के द्वारा उन्हें आमंत्रित किया जाता था। मुगल बादशाह औरंगजेब ने वेश्यावृति पर प्रतिबंध लगा दिया था परन्तु यह कुप्रथा फिर भी नहीं रूक सकी। अकबर ने वेश्याओं के लिए नगर के बाहर एक अलग से मुहल्ला बना दिया था जिसे 'शैतान' कहा जाता था। गोलकुंडा नगर का वर्णन करता हुआ यात्री ट्रेवरनियर हमें सूचित करता है कि अकेले गोलकुण्डा नगर में 20,000 वेश्याएँ दरोगा के रजिस्टर में दर्ज थी।[11] अनेक वेश्याएँ बहुत धनी और अमीरों की भाँति ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत करती थी। मुगलकालीन समाज में अतिथियों का पान-बीड़ा से स्वागत किया जाता था। स्त्रियों को दिन भर पान चबाने की आदत थी।[12] मुगलकालीन समाज में मुसलमानों में बहु विवाह-प्रथा प्रचलित थी। हिन्दुओं में आमतौर पर एक ही पत्नी होती थी। मुसलमानों में हिन्दुओं की भाँति छुआछूत की भावना नहीं होती थी। मुसलमान अपने सामर्थ्य के अनुसार कितनी भी पत्नियाँ रख सकते थे।

फ्रांसिस बर्नियर फ्राँस का एक प्रख्यात डाक्टर था। 1658 ई. के प्रारंभ में जब वह सूरत पहुँचा तो उस समय बादशाह शाहजहाँ के पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार के लिए संघर्ष चल रहा था। बर्नियर भी सती-प्रथा के बारे में विवरण देता है। उसके अनुसार हिन्दुओं के उच्च वर्ग में विधवा स्त्री को अपने पति के साथ जलना पड़ता था। यदि वह ऐसा नहीं करती तो यह बात उसके परिवार के लोगों के लिए बुरी समझी जाती थी और उसके बाल काट लिए जाते थे। वह अपमानित सा जीवन व्यतीत करती थी।[13]

बर्नियर के अनुसार मुगलकालीन भारतीय समाज में दास-प्रथा भी प्रचलित थी। उसके अनुसार इथोपिया के सम्राट ने एक दूत-मण्डल औरगंजेब के दरबार में भेजा जो अपने साथ अनेक उपहार लाया। इन उपहारों में 25 दास भी थे।[14] इसी मिशन के साथ अन्य 32 नवयुवक दास थे जिन्हें मोरवा में बेचा जाना था। जब यह दूत-मण्डल मोरवा पहुँचा तो इसने पाया कि मोरवा का बाजार दासों से भरा पड़ा है। अतः दासों को कम मूल्य पर बेचना पड़ा।[15] बर्नियर के अनुसार हिन्दु तथा मुस्लिम समाज में पर्दा-प्रथा भी विद्यमान थी। हिन्दु औरतों को अपनी इज्जत-आबरू की रक्षा के लिए पर्दे की प्रथा को अपनाना पड़ा। मुसलमान स्त्रियों में कठोरता के साथ पर्दे की प्रथा का पालन किया जाता था। मजबूरी में जब मुस्लिम औरतों को बाहर निकलना होता था तो पर्दा ओढ़ना अनिवार्य था। जिस पालकी में वे जाती थी, उसके चारों और परदा पड़ा होता था और पर्दा प्रथा के कारण बीमार औरतों के इलाज के लिए भी पुरुष चिकित्सक को सम्राट या अमीर के जनानखाने में प्रवेश नहीं मिल पाता था।[16]

बर्नियर मुगल बादशाहों, प्रमुख सामन्तों और निर्धन लोगों के मकानों के बारे में विवरण देता है। उसके अनुसार दिल्ली में प्रमुख सामंतों के भवन नदी के किनारे बने हुए थे।[17] सम्राट के महल (आगरा और फतेहपुर सीकरी में अकबर का महल और दिल्ली में शाहजहाँ द्वारा निर्मित लाल किला) विशेष आकर्षण का केन्द्र थे। निर्धन लोगों के मकान मिट्टी और फूस के बने होते थे और छत के लिए छप्पर पड़ा होता था। बर्नियर ने दिल्ली में गरीबों के मकानों को मिट्टी और फूस का बना पाया। दीवार पर गोबर का लेप कर दिया जाता था और फिर उसे सफेद चूने से पोत दिया जाता था।[18] बर्नियर सूचित करता है कि दिल्ली में आग लग जाने से 1 वर्ष में इस प्रकार की 60 हजार झोपड़ियाँ जल गयीं।[19] स्त्रियाँ काजल लगाकर, बिन्दी लगाकर, माँग भरकर और रत्नों से वेणी सजाकर शृंगार करती थीं। स्त्रियाँ आँखों में सुरमे का भी प्रयोग करती थी। स्त्रियों और पुरुषों दोनों को ही आभूषण धारण करने का शौक था। नारी के शरीर के विभिन्न अंगों के लिए अलग-अलग आभूषण होते थे। स्त्रियाँ अपने शरीर को सिर से लेकर पैर तक आभूषणों से अलंकृत करना चाहती थी।[20] सामान्य जन नृत्य, संगीत, नाटक इत्यादि के माध्यम से अपना मनोरंजन किया करते थे। धनी एवं निर्धन दोनों ही वर्गों के लोगों में ताश खेलने का शौक था। ताश की तरह शतरंज और चौपड़ घरेलू खेल के रूप में लोकप्रिय थे। कुछ लोग शिकार खेलकर और मुर्गों की लड़ाई द्वारा अपना मनोरंजन करते थे। कबूतर की उड़ान भी मनोरंजन का एक साधन था। पतंग उड़ाने की प्रथा सर्वसाधारण में प्रचलित थी। छोटे बच्चे आँख-मिचौनी, फिरकी, चकई और लट्टू द्वारा अपना मनोरंजन करते थे।[21]

उपर्युक्त विदेशी यात्रियों के विवरणों से हमें मुगलकालीन सामाजिक स्थिति के बारे में पता चलता है। विदेशी यात्रियों ने मुगलकालीन समाज में व्याप्त अनेक प्रथाएँ दास-प्रथा, सती-प्रथा, पर्दा प्रथा और भारतीयों के आवासों, खान-पान और मनोरंज के साधनों के बारे में विस्तार से बताया है। परन्तु इन विवरणों का अध्ययन और इतिहास लेखन में इनका उपयोग करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि इन्होंने अपने विवरणों में भारतीय लोगों से सुनी-सुनाई बातों को भी शामिल किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. जैन, हुक्मचन्द, शर्मा, श्याम सुन्दर, मुगलकालीन भारत (1526-1740 ई.), पृ. सं. 27, जयपुर, 2010*
2. *वही, पृ. सं. 32*

3. डॉ. सिंह, ओमप्रकाश, मध्यकालीन भारत का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास (750ई. से 1761 ई. तक), पृ. सं. 369, इलाहाबाद, 2001
4. वही, पृ. सं. 368
5. डॉ. जैन, हुक्मचन्द, शर्मा, श्याम सुन्दर, मुगलकालीन भारत (1526–1740 ई.), पृ. सं. 29, जयपुर, 2010
6. डॉ. सिंह, ओमप्रकाश, मध्यकालीन भारत का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास (750ई. से 1761 ई. तक), पृ. सं. 360, इलाहाबाद, 2001
7. वही, पृ. सं. 360
8. वही, पृ. सं. 360
9. वही, पृ. सं. 360
10. वही, पृ. सं. 360
11. ट्रेवरनियर, ट्रैवल इन इंडिया, पृ. सं. 127
12. वही, पृ. सं. 294
13. डॉ. सिंह, ओमप्रकाश, मध्यकालीन भारत का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास (750ई0 से 1761 ई0 तक), पृ. सं. 360, इलाहाबाद, 2001
14. बर्नियर, ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर, पृ. सं. 134–35
15. वही, पृ. सं. 134–35
16. वही, पृ. सं. 267
17. वही, पृ. सं. 247
18. वही, पृ. सं. 246
19. वही, पृ. सं. 246
20. डॉ. सिंह, ओमप्रकाश, मध्यकालीन भारत का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास (750ई. से 1761 ई. तक), पृ. सं. 370, इलाहाबाद, 2001
21. वही, पृ. सं. 370

समकालीन कविता में आदिवासी जीवन

हरिकेश मीना
व्याख्याता, राजकीय कन्या महाविद्यालय, करौली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

स्वतन्त्रता के पश्चातऔद्योगिकीकरण और नगरीकरण के कारण न केवल प्राकृतिक मूल्यों का ह्रास हुआ बल्कि प्रकृति से मानव की पार्थक्य की स्थिति भी आई। औद्योगिक विकास के कारण जहॉ एक और प्राकृतिक संसाधनो को दोहने की परम्परा आरम्भ हुई वहीं दूसरी ओर धरतीपुत्र आदिवासियों की समस्याऐं विकराल रूप लेने लगी। इसका परिणाम ये निकला की जल जमीन और जंगल के मालिक आदिवासियों को मूलभूत सुविधाओं से मरहूम कर दिया ,जमींदार ठेकेदारों ने अपने स्वार्थवश अदिवासीयों का उनके हक, अधिकारों से किस प्रकार वंचित कर दिया ,इसका मार्मिक चित्रण आदिवासी कवियों ने प्रमुखता से किया है।

संकेताक्षरः *आधुनिकता, यथार्थ, मातृ सत्तात्मक, विस्थापन, सामाजिक न्याय, अलगाववाद।*

समकालीन कविता नयी कविता के बाद की कविता है। 1960 ई. के बाद की कविता कोसमकालीन कविता कहा जाता है। इसको मुख्यतः दो धाराओं में विभाजित किया जाता है। प्रथम साठोत्तरी या अकविता। दूसरी को 1980 ई. के दौर की कविता कहा जा सकता है। समकालीन कविता में प्रयुक्त ''समकालीन'' शब्द किसी विशेष काल खण्ड़ का द्योतक न होकर एक विस्तृत फलक पर अपनी अर्थवत्ता को चित्रित करता है। यह किसी विशेष समय सीमा का परिचायक ही नहीं बल्कि एक विचार के रूप में चित्रित करता है। डॉ. सुखवीर सिंह ''समकालीलनता का अर्थ समसामयिकता है। वस्तुतः समकालीनता एक व्यापक एवं बहुआयामी शब्द है। वह आधुनिकता लिए हुए है। किन्तु जो आधुनिक चेतना से संकलित दृष्टि है, वह निश्चित रूप से समकालीन होती है। इसलिए समकालीनता के अर्थ को व्यापक करके ही ग्रहण करना होगा''।[1]

1951–1960 ई. तक की नयी कविता आधुनिक भाव बोध की कविता थी। 1960 से 1970 के दशक में जगह–जगह जन आन्दोलन हुए, देश के कुछ हिस्सों में नक्सलवादी आन्दोलन भी हुए, इससे समकालीन कविता को नया प्रेरणा संसार मिला। समकालीन कवि पराजयबोध, निराशा, कुंण्ठा से निकलकर आशा और परिवर्तन की कविताऐं लिखने लगे अब आस्था और संघर्ष ही समकालीन कविता का मुख्य स्वर है। समकालीन कविता में आदिवासी जीवन को प्रमुखता से चित्रण करने वाले हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, रामदयाल मुंण्डा, निर्मला पुतुल, रणेद्र, रमणिका गुप्ता, कुमारेद्र पारस नाथ सिंह, एकान्त श्रीवास्वत, विनोदकुमार शुक्ल, ज्ञानेद्रपति, चंद्रकान्त देवताले, विनोददास, ऋतुराज, अनुज लुगुन एवं ग्रेस कूजर, सुदीप बैनर्जी प्रमुख थे।

आदिवासी जीवन का चित्रण करने वाले कवियों ने सामाजिक न्याय की पक्षधरता लेते हुए अर्थ–व्यवस्था के विकास के ढॉचे में परिवर्तन की मॉग, लोक बृद्धि को समझने का प्रयास सभी पहलुओं को कविता में स्वर दिया। इन कवियों ने भारतीय संदर्भ में सुलगते प्रश्नों की ओर पाठको, राजनीति तथा प्रशासन का ध्यान आकर्षित किया। आदिवासी अपने ही घर में परदेशी बन गये हैं। एक दयनीय व भयावह स्थिति बन गयी है। अलगाववाद का प्रमुख कारण औद्यौगिकीकरण में आदिवासियों की जमीन व जंगल का छिन जाना, जो उनका मूल आधार है।

आदिवासी जीवन का चित्रण करने वाले कवियों नें उन नायकों को महत्व देकर नवीन इतिहास सृजन के बिन्दु तलाशें हैं जो आदिवासी नायक इतिहास से बेदखल हैं। बिरसा इनके आदर्श का प्रतीक है, लेकिन आज इनके मूल आदर्श धूमिल हो गये

हैं। वर्तमान समय में आदिवासियों का मुख्य संघर्ष जमीन, जंगल, लोगों के अधिकार स्वशासन एवं स्वतन्त्रता से है। अब लोक जमीन की बात नहीं करते। जबकि जमीन संस्कृति का आधारभूत स्तम्भ है। वर्तमान समय में यदि आदिवासी जिंदा है तो इसका बहुत बडा श्रेय इस बात को जाता है कि उनका समुदाय जमीन पर आधारित समुदाय है। इनकी समस्याऐं जटिल होती जा रही हैं। जिसके चलते उनका उग्र हिंसात्मक रूप भी दृष्टिगोचर हो रहा है। बाँसुरी अब मशाल का काम कर रही है। देश के सभी हिस्सों में परिवर्तन का दौर चल रहा है। दूसरी तरफ युवा कवि अनुज लुगुन उनकी मॉग को जायज ढहराते हुए कहते हैं–

''लड़ रहें है आदिवासी, अघोषित उलगुलान में,
कट रहें है वृक्ष, माफियाओं की कुल्हाडी से और
बढ़ रहे हैं कंक्रीटों के जंगल, दाण्डू जाये तो कहॉ जाये
कटते जंगल में, या बढ़ते जंगल में।''[2]

प्रमुख आदिवासी कवि पारसनाथ सिंह 'कुमारेद' ने विस्थापन की त्रासदी झेल रहे आदिवासी के जीवन को आधार बनाकर ''बोला मोहन गॉजू'' नामक काव्य संग्रह में झारखण्ड के आदिवासी जीवन का मार्मिक चित्रण किया है।

''बन्धू दास को तुम जानते हो मोहन गॉजू,
तुम्हारे अपने जंगल से बेदखल किये जाने का गहरा
रिश्ता है।
उसके उन छेदों को, दतुयन बेचना छोडकर तुम भी,
फाबडा और बेलचा क्यों नहीं उठ़ा लेते हो।''[5]

आदिवासी जीवन का चित्रण करने में विकास के मानक सरकार या व्यवस्था ने तय किए उनका प्रतिरोध स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। क्योंकि ये मानक विकास में सहायक सिद्ध न होकर उनके जीवन में हस्तक्षेप, उनकी स्वतंन्त्रता में दखल देने के लिए अपनाये गये हैं। उनकी दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए ज्ञानेद्रपति कहते हैं–

''इस आदिवासी गॉव के ऑगन सेगुजरती हुई सडक,
अत्याचारियों के गुजरने का रास्ता है
वह इनके पैरों से नहीं बना, यह इनके पैरों के लिए बना
बडे–बडे शेड रोलर आये थे, लुटेरे वाहनों के आने से
पहले
धरती कॅपाते धीरे धीरे चलते हुए, विशालयकाय रोड
रोलर[4]

आदिवासियों की समस्याओं को मीडिया भी सही तरीके से नहीं उठाता, उनके प्रति असंवेदनशील बना रहता है और सत्तातंत्र का समर्थक होकर तथाकथित व्यवस्था की ऑख बना रहता है। समकालीन आदिवासी कवि मनुष्य को उपभोक्ता संस्कृति की क्रूर हरकतों के प्रति संचेत करते हैं। यह संस्कृति मनुष्य की समद्ध संस्कृति को निगलकर बिकाऊ एकरूपता में तब्दील कर देती है। आदिवासी मनुष्य की कीमत इनकी नजरों में जानवरों से बदत्तर है। शंकर लाल मीणा की कविता परदेशी सौदागर चार–

''सौदागर का ख्याल है। सौदागर हर बीमारी की
दवाई बेचता है, इस दवाई से जो भी बीमारी होती है।
उसकी भी दवाई बेचता है, इसके बाद भी कुछ हो
तो उसके लिए शोध जारी है प्रयोगशालाओं में,
उन भेड और बन्दरों पर, जो भिजवाये गये है हमारे यहॉ से
जो इनको माफिक आयेगा, वह हमको भी आयेगा।''[5]

आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल की कविताऐं उन निगाहों को पहचानती हैं जो आदिवासी स्त्रीयों को वस्तु में बदलने को आतुर हैं। वे निगाहें आदिवासी समाज को सस्ता मजदूर बनाकर, उनकी संस्कृति भाषा, जल, जंगल और जमीन को हथियार कर उन्हें पलायन के लिए मजबूर और विवश करती है। निर्मला पुतुल अपने समाज की विकृतियों का विरोध कर उनसे टकराती है जब वे 'सजोनी किस्कू' की व्यथा का चित्रण करती हैं 'चुड़का सोरेन' के पिता को हंडिया पीकर बेखवर होने के खतरे से आगाह करती है–

''देखो तुम्हारे ही ऑगन में बैठे,
तुम्हारे हाथों ही बनी हंडिया
तुम्हें पिलाकर कोई कर रहा
तुम्हारी बहनों से ठिठोली ये वे लोग हैं
जो हमारे ही नाम पर लेकर गटक जाते हैं
हमारे ही हिस्से का समुद्र।''[6]

इन आदिवासी कवियों की कविताऐं आदिवासी के पहचान के आन्दोलन और अपनी संस्कृति भाषा, जल, जंगल जमीन और लाठा–जलावन को बचाने में सहायक सिद्ध होती है। वे अपने समाज की विकृतियों, विडम्वनाओं को दूर कर आज के समाज के समकक्ष सशक्त होकर खड़े होना चाहते हैं।

समकालीन कविता की प्रमुख आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल अपने समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, जड़ परम्पराओं पर तीव्र चोट करती है, वे कहती है–

''बस रहने दो, कुछ मत कहो सजोनी किस्कू
ज्ब तुमने चलाया था हल, तब डोल रहा था बस्ती के
मॉझी थान में,
बैठे देवता का सिंहासन, गिर गयी थी पुस्तैनी थानी
कुर्सी परन बैठे, मृगजहीन मॉझी हाड़ाम की पगड़ी
तब बैल बनाकर हल में जोता था
जालियों ने तुम्हें, खूँटे से बॉधकर खिलाया था भूसाा।''

वे चुडका सोरेन को सावधान करती हुई कहती हैं –

''तुम्हारे पिता ने कितनी शराब पी
ये तो मै नहीं जानती
पर शराब उसे पी गई।

वे आदिवासी लड़कियों को फुसलाकर भगा ले जाते है मैदानी लोगों के बारे में चुडका को सावधान करती है।

''वह कौनसा जंगली जानवर था चुडका सोरेन
जे जंगल में लकडी बीनने गयी,
तुम्हारी बहिन को उठाकर ले भागा।''[7]

आदिवासी समाज हमेशा से मातृसत्तात्मक रहा है। महिलाओं को वह स्वतंन्त्रता सदियों पूर्व इस समाज में प्राप्त हो चुकी थी लेकिन बाहरी घुसपैठ अपनी अंधविश्वासी रूढ़िवादिता के कारण यह समाज अब पिछडने लगा है। इसका मुख्य कारण भी बाहरी समाज है।

बाहरू सोनवणें आदिवासी औरत की संवेदना को कुछ इन्ही शब्दों में उकेरते हैं–

''जवानी में वैश्या, बुढापे में डायन,
ऐसा ही कहते है लोग
जहॉ मिले थाम लो जब भी चाहे अंग लंगा लो
पूरी हुई हबस तो, त्याग दो चीख न पुकार।''[8]

बाहरू सोनवणे ने आदिवासी महिलाओं की दयनीय दशा का बडा ही कारूणिक व मार्मिक चित्रण किया है। आदिवासी स्त्री की उन्मुक्त जीवन शैली की मनगढंत कथा–उपकथा आज भी सभ्य लोगों के बीच आज भी विद्यमान है। रामशरण जोशी जैसे प्रतिष्ठित ने जब हंस पत्रिका में आदिवासी स्त्री के दैहिक भोग को चटकारे लेकर विस्तृत वर्णन करते हुए स्वयं को गौरवान्वित महशूस करते हैं तो आम आदमी की नीयत गरीब एवं असहाय स्त्रियों के प्रति क्या होगी, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है।

स्त्री सशक्तीकरण के इस युग में आदिवासी स्त्री की श्रमशील सुघड जिंदगी की ओर पुरूषों की रूचि तो बिल्कुल नहीं है। सच तो यह है कि किसी भी समाज की स्त्री चाहे वह आदिवासी समाज की ही क्यों न हों पुरूषों के बनाये ढॉचे का विरोध करती है तो उसको लॉछित या कुलटा घोषित कर दिया जाता है या व्यवस्था द्वारा पागल सिद्ध कर दी जाती हैं।

निर्मला पुतुल, ग्रेस कूजर, सरिता सिंह आदि की अधिकॉश कविताऐं आज की चमक दमक से दूर साधारण आदिवासी स्त्री के दुःख दर्द का विरोध करती हुई नजर आती हैं–

''क्या तुम जानते हो
एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण
बता सकते हो तुम
एक स्त्री को स्त्री दृष्टि से देखते
डसके स्त्रीत्व की परिभाषा?
अगर नहीं
तो फिर क्या जानते हो तुम
रसोई और बिस्तर की गणित से परे
एक स्त्री के बारे में?[9]

आदिवासी जीवन को लेकर जब कविता की बात करते हैं तो मौखिक परम्पराही धरोहर के रूप में सामने आती है जो प्रमुख रूप से गेय परम्परा रही है। समकालीन कविता की दृष्टि से ऑचलिक भाषाओं में अवश्य कविता के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति होती है लेकिन आदिवासी कविता अभी शुरूआती दौर में चल रही है। आदिवासी इलाकों में बाहरी तत्वों की घुसपैठ सबसे प्रमुख समस्या रही है, यहीं से आदिवासी जीवन की पवित्रता में प्रदूषण शुरू होता है और इसकी परिणति होती है। आदिवासी अस्तित्व का संकट। ग्रेस कूजर अपनी कविता में कहती है–

''हे संगी क्यों घूमते हो
झुलाते हुए खाली गुलेल
क्या तुम्हें अपनी धरती की
सेंध मारी सुनाई नहीं दे रही?[10]

प्रकृति व आदिवासी का सम्बन्ध चिर–परिचित है। प्रकृति से छेड़छाड आदिवासी के अत्यन्त पीडा का विषय है। प्रकृति से छेड़छाड न केवल आदिवासी वल्कि मानवता व मानव प्राणी के लिए खतरा बना हुआ है। इसी समस्या को आदिवासी कवयित्री इस प्रकार चित्रित करते हैं–

''इसलिए फिर कहती हूँ,
न छेडो प्रकृति को
अन्यथा यह प्रकृति करेगी भयंकर बगावत
और तब न तो तुम होगें न हम होगे।''

समकालीन कविता में आदिवासी कवियों ने आदिवासी विषयक कविताओं में उनकी यथार्थ स्थिति, उनकी समस्याओं, परेशानियों का काफी हद तक मार्मिक चित्रण किया है। समकालीन कविता अपने रचना फलक को व्यापकता प्रदान करते हुए आदिवासियों के दुःख दर्द एवं आनन्द को समेटने का प्रयास कर रही है। लेकिन यह कोशिश अभी भी परिधि पर ही बनी हुई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. समकालीन साहित्य चिन्तनः सं. महीप सिंह, संस्करण 1996 प्रकाशन दिल्ली, पृ. 74
2. प्रगतिशील वसुधा-85 अप्रेल जून 2010, पृ. 184
3. बोलो मोहन गॉजूः कुमारेद्र पारसनाथ सिंह, पृ. 44
4. संशयात्माः ज्ञानेद्रपति, पृ. 20
5. संवेदः सं. किशन कालजयी अंक-48 जनवरी 2012, पृ. 31-32
6. आदिवासी साहित्य विमर्शः डॉ. गंगा सहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014I, पृ. 40
7. आदिवासी साहित्य यात्राः सं. रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, पहली आवृत्ति 2012, पृ. 09
8. आदिवासी साहित्य विमर्शः डॉ. गंगासहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, पृ 180
9. संवेदः सं. किशन कालजयी, अंक 48, जनवरी 2012, पृ. 33
10. आदिवासी दुनियाः हरिराम मीना, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, प्रथम सम्पादक 2013, पृ. 200

ISSN 2277-5587

राजस्थान वस्त्र परम्परा पर मुगल प्रभाव

इन्दिरा
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास बहुरंगी धाराओं से जुड़ा रहा है। यहां की धरा पर पाषाणकाल से लेकर मध्यकाल व आधुनिक काल तक जो कलावशेष मिलते हैं, वो राजस्थान के सांस्कृतिक कला वैभव के इतिहास से हमें परिचित कराते हैं। वस्त्र छापांकन व चित्रांकन राजस्थान के विधि भू–भाग में प्रचलित लोक व पारम्परिक कलाओं में कपड़े पर रूपांकित व चित्रांकित की जाने वाली कलाओं की विशेष पहचान रही है। वस्त्र छापांकन के लिए जहाँ जैसलमेर, बालोतरा, सांगानेर, बगरू, व पिण्डवाडा आदि प्रमुख रहे हैं तो बंधेज कला के लिए जयपुर, जोधपुर (पीपाड़) व बूंदी के साथ–साथ नाथद्वारा की बंधेज कला प्रसिद्ध रही हैं। मुगलों के परिधान, वस्त्र या वेशभूषा उनकी कला और स्थापत्य की भांति किसी एक किसी एक शैली से प्रभावित नहीं थी। इसका प्रभाव राजस्थान वस्त्र परम्परा पर भी पड़ा।

संकेताक्षरः *वस्त्र, परिधान, परम्परा, रंग, इतिहास, शासक।*

परिधान या वेशभूषा किसी भी संस्कृति का आईना होती है। संस्कृति के विभिन्न चरणों को, (जनजातिय, सामन्ती या औद्योगिक) को वहां के परिधानों से देखा और समझा जा सकता है। अनेकों सभ्यताओं और संस्कृतियों न मुगलों को प्रभावित किया था जैसे कि मुस्लिम अथवा हिन्दू, पर्शियन या तुर्क आदि। किन्तु वस्त्र सौन्दर्य में सबसे बड़ी परकाष्ठा तो मुगल शैली की अपनी विशिष्टता थी।[1] राजस्थान में मुगल संस्कृति का प्रभाव सीमित और आंशिक रूप स शासक वर्ग के शाही परिवारों और उच्च घरानों पर पड़ा। राजस्थान के शासकों और यहां के आमजन ने धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में अपने परम्परागत विश्वासों और रिवाजों का अनुसरण किया। लेकिन दैनिक जीवन में कुछ कम हद तकमुगल औपचारिकताओं और आदतों का प्रभाव पड़े बिना नही रह सका। मुगल संस्कृति का प्रभाव एकाएक नहीं आयाअपितु इसने धीरे–धीरे यहां के जनमानस में प्रवेश किया।[2]मध्यकाल के प्रारम्भ में स्थापत्य एवं साहित्य में परिधानों संबंधी जानकारी प्राप्त होती है। विशिष्ट और सामान्यजन की पोशाकों की गरिमा को विविधता के आधार पर चिह्नित नहीं किया जा सकता था, चाहे वह पुरूष हो या स्त्री। मुख्य वस्त्र दोनों (स्त्री–पुरूष) के द्वारा पहना जाता था जो कि कमर व कंधों को समान रूप से ढकता था। यह साधारण रूप से बना होता था। अधोवस्त्र के रूप में धोती होती थी जो कमर के चारों ओर लपेटकर बांधी जाती थी। इसमें कई सलवटें सामने और पीछे की ओर होती थीं। शरीर के उपरी हिस्से को एक कपड़े से ढका जाता था।[3]

मुगल बादशाह सुसंस्कृत थे और इसके साथ अपनी बादशाहत को वैधता और लोकप्रियता दिलाने के साथ साथ अपना संदेश लोगों तक पहुँचाने के लिए कला का प्रयोग किया गया। तथापि राजस्थान के शासक वर्ग मुगल सम्पर्क में आकर राजनीतिक एवं सामाजिक सहयोग (अपनी बहनों एवं बेटियों की शादियां मुगल शासको से करवाकर) की नीति में प्रवेश करने लगे। राजस्थान के शासक वर्ग मुगल दरबार में उपस्थित होने लगे, उनमें उपहारों का आदान–प्रदान होने लगा और धीरे–धीरे यहां के शासकों ने मुगल वेशभूषा को अपना लिया। इसके साथ ही आने वाली शासक पीढ़ियों ने भी यह क्रम जारी रखा और मुगल वेशभूषा को अपनाने लगे। यहां हम कुछ घटनाओं का वर्णन करेंगे जिससे स्पष्ट होता है कि राजस्थान के

शासक वर्ग ने मुगल परिधानों को अपनाया और यहां के वस्त्र–परिधान पर मुगल प्रभाव पड़ा। राजस्थान के राजपरिवारों की ओर से ताजीम, कुरब आदि देने की परम्परा रही है। यद्यपि यह परम्परा मूल रूप से मुगल बादशाहों से प्राप्त हुई है। जिसका निर्वाह मारवाड़ के सवाई राजा सूरसिंह जी से प्रारंभ हुआ। किसी व्यक्ति विशेष की सेवा, स्वाभिमानी, वीरता या साहित्य सेवा के लिए यह सम्मान दिया जाता था। इसी तरह यह सम्मान किसी व्यक्ति को किसी परगने की हाकमी इनायत होने पर भी दी जाती थी जिसका बही में इस प्रकार उल्लेख है –

'1 भण्डारी पीताबरदास ने परबतसर री हाकमी ईनायत हुसी तरे लाल लीकदार सीरपाव (वस्त्र)'[4]

दस्तूर कौमवार से हमें जानकारी प्राप्त होती है कि अनेक प्रकार के वस्त्र जैसे कि नूर–ए–बादला, आलमगैरी–फरूर्खशाही, चोली फरूर्खशाही, इजा–बाफ्ता, फेंटा, जामा, कुर्ता एवं चिन्त–मुहम्मदी जयपुर दरबार में शासक वर्ग के लोग पहनते थे।[5] जब मेवाड़ के राजकुमार करणसिंह ईस्वी सन् 1615 में मुगल दरबार में उपस्थित हुए तो उन्हें नूरजहां की ओर से सम्मान में एक कीमती पोशाक प्रदान की गई। जब वे दरबार से विदा हुए तो उन्हें अनेक किस्म के वस्त्र, कालीन–गलीचे, गद्दियाँ आदि प्रदान किए गए।

अनेक मध्कालीन स्रोतों से पता चलता है कि जोधपुर के महाराजा गजसिंह को शाहजहां की ओर से फरूर्खशाही पगड़ी, कनपेचा, फेंटा, गोसपेच आदि अनेक विभिन्न अवसरों पर प्रदान किए गए थे। जोधपुर के महाराजा विजयसिंह और जयपुर के सवाई जयसिंह के चित्रों में उन्हें पायजामा, पटका, चकदार–जामा और कलगी वाली पगड़ी जिसमें चपटी तहें होती हैं, पहने चित्रित किया गया है। इनके बाद भी राजस्थान के अनेक शासकों ने इन मुगल पोशाकों को धारण किया है और यह मुगल वस्त्रों का प्रभाव धीरे–धीरे राजस्थान के जनजीवन में प्रवेश करता गया।[6] यह परिधान न तो पूरी तरह से राजस्थानी होते थे और न ही मुगलिया। 17वीं–18वीं शताब्दी में इनका निर्माण अनेक प्रकार के सम्मिश्रण द्वारा विकसित किया गया था।

बाबर द्वारा भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली गई और इस मुगल वंश की संस्कृति एवं सभ्यता का भारत में सूत्रपात हुआ। परन्तु बाबर अपने साम्राज्य को स्थान करने की व्यस्तता के कारण कला की और अधिक ध्यान नहीं दे पाया। बाबर के काल में जो वस्त्र कला पल्लवित हुई उसे उसकी आत्मकथा – तुजुक–ए–बाबरी में देखा जा सकता है।[7] विजयपुर के कुशलसिंह को विभिन्न प्रकार के वस्त्र–परिधानों के नाम परिरक्षण और पहने जाने के लिए अमरसिंह द्वितीय मारवाड़ नामक परवाना पुरस्कार रूप दिया गया। इन वस्त्रों के नाम इस प्रकार थे – दागली,[8] दोढी,[9] डोवडा[10] और कानो[11]।

साहित्यिक और ऐतिहासिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि जामा, वागा, झागा और गूदड़ी जैसी पोशाकें उत्सवों के अवसरों पर व्यक्तियों द्वारा पहनी जाती थी। यह पोशाकें डिजायन व चीरे सहित छोटी व बड़ी होती थी, मुगलिया ढीला कोट और अन्य पोशाकें इस प्रकार हैं –

टकोचिया : यह हिन्दुस्तानी तर्ज का जामा होता था। इसका सामने का भाग (दामन) खुला हुआ और कसें बायीं ओर होती थी। मुगल प्रभाव के कारण यह शनैः शनैः गोल दामन का हो गया और कसें दायीं ओर लग गये। इसमें रेशम के प्रयोग के साथ–साथ बेलबूटे भी छापे जाते थे।

पेशवाज : पेशवाज टकोचिया की तरह ही एक वस्त्र होता था। यह सामने से बन्द किया जाता था। मुगल प्रभाव के कारण यह बिना कसों का भी बनाया जाता था।

दुतही : यह 6 गज 4 जिरह का 3 पल्ला था जिसमें 6 गज का अस्तर 4 गिरह का बन्द और 6 गिरह की सजाफ लगती है। इसमें रेशम भी लगाया जाता था।

काबा : यह रूईदार अंगरखा होता था जिसमें रेशम का प्रयोग किया जाता था।

शाह अजीदा : इसके प्रत्येक गिरह में साठ नगदें भी बनाई जाती थी इसलिये इसको शस्त–खत भी कहते थे। यह दो अस्तर का होता था। इसमें रूई का प्रयोग भी होता था।

गदर : यह कबा से भी बड़ा व लम्बा होता है। इसमें रूई का प्रयोग ज्यादा होता था। इन लंबे कोट के लिए कपड़े के दो थान 8 अंगुल मंगजी सहित चाहिये होता था।

सोजनी : यह बखियादार सिली हुई होती है, जिसमें रूई एवं रेशम का प्रयोग किया जाता था।

फर्गुल : यह बरसाती कोट की तरह होता था जो अधिक सुखदायक और शोभायमान माना जाता था। इसे छोटे–बड़े सभी लोग बड़ी शान से पहनते थे। अबुल फजल ने अपने ग्रन्थ आइने अकबरी में इसे यूरोप की पोशाक माना है।

चकमन : यह बनात, ऊनी कपड़े अथवा मोमजाने का सिलाया जाता था। मुगलों ने इसे दाराई मोमजाने का बनवाया था। यह बहुत हल्का और सुहावना होता था। इससे वर्षा का पानी नहीं छनता था।

फर्जी : यह बेतनी की तरह सामने की ओर से खुला रहता था। इसमें घुंडी भी लगाते थे तथा जामे की तरह इसमें रूई व रेशम का भी प्रयोग होता था।

अन्य प्रचलित परिधानों में, सफेद रंग की दोढी और चिकन वर्क का कानो ग्रीष्म ऋतु में पहना जाता था, सफेद रंग की अस्तर वाली वानातीढोढी और अस्तर वाला जामा शरद ऋतु में पहना जाता था। चार या दो तहों वाली खेस, शॉल और पण्डी सर्दियों में पहने जाते थे।[12] मुगलों ने वस्त्र–परिधानों के अन्य नाम भी रखे। उन्होंने जामा का नाम सर्वगती अर्थात् सम्पूर्ण शरीर में पहना जाने वाला रखा था। उन्होंने सुथना का एक अन्य नाम पीर–पीरांहन यानी अंगरखे का साथी या जोड़ा, नीम तना का नाम तनर्जब यानी शरीर की शोभा, फौता का नाम पतगत, बुर्का का नाम चित्रगुप्ति, कुलाह टोपी का नाम सीसशोभा, मुएबाफ अर्थात् ऊनी फीता या पट्टी का नाम केसगहन, पादुका का नाम करिजेब अर्थात् कटि (कमर) की शोभा, शाल का नाम परमनर्म, परमगर्भ का नाम कपूर घेर रखा जो तिब्बत में बुना जाता था। कपूरनूर का अन्य नाम चरनधर्रन रखा गया था। इसी प्रकार मुगल सम्राटों ने अनेक वस्त्रों के नाम श्रेष्ठ नामों के रूप में दिये।[13]

वस्त्र उद्योग में पारम्परिक छापांकन की विषय वस्तु में मुगल कला के भाव दिखाई देते है। वस्त्र रंगाई कला में भी मुगल का का प्रभाव दिखाई देने लगा। इस प्रभाव से वस्त्र सज्जा के संयोजन व रंगाकन में नवीनता का समावेश होने लगा। पारम्परिक वस्त्रों के रूप–आकार तथा रंग योजना के अनुरूप चद्दर, पर्दे, साड़ी व सलवार–सूट आदि के लिए वस्त्र छापांकन में कलागत व मुगल कला के प्रभाव का रूप बदलाव दिखाई देने लगा। इन छापांकन कलाओं में पारम्परिक रंगों की जगह अनेक चटक व गहरे रंगों का प्रयोग हाने लगा है। मुगल काल में वस्त्र उद्योग काफी उन्नति पर था। विभिन्न किस्मों के वस्त्रों की उपलब्धता ने नए रंगरेजों के लिए अभ्यास को आसान बनाया जिससे उनकी कला में निखार आया। इसके साथ ही इस दौर में वस्त्रों का निर्माण और रंगाई–छपाई की कला भी उन्नति कर रही थी। वस्त्रों की पृष्ठभूमि पर भी चित्र बनाए गये।

जहाँगीर का काल (1605–1627) मुगल कला के उत्कर्ष का सबसे महत्त्वपूर्ण काल था। जहांगीर कला का एक महान आश्रयदाता था। उसके दरबार में बड़ी संख्या में चित्रकार, रंगरेज, नीलगर, स्थापत्यकार आदि थे। अपनी आत्मकथा में वह अपनी कला मर्मज्ञता पर गर्व से लिखता है कि वह एक चित्रकार से दूसरे चित्रकार के चित्र में भेद कर सकता है तथा किसी भी चित्रकार की चित्रण शैली द्वारा उसका चित्र अलग कर सकता था। बादशाह स्वयं एक चित्रकार था एवं सुन्दर रानियों की शबीहें चित्रित करवाने में आनन्दित होता था। उसके काल में पशु एवं फूल–पत्ती चित्रण अधिक होने लगा था। इसी चित्रण ने वस्त्र उद्योग पर भी प्रभाव डाला। वस्त्रों पर पशु–पक्षी, फूल–पत्तियों की छपाई होने लगी थी। मुगल सम्पर्क के कारण पगड़ी या पाग का विभिन्न रूपों में विस्तार हुआ। राजस्थान की मेवाड़ी चित्रकारी में अकबर के शासनकाल में प्रचलित 'अटपटी' पगड़ी का चित्रण देखने को मिलता है। ढीली व कसी हुई पगड़िया जिन पर चौड़े गज होते थे, जहांगीर और शाहजहां के समय की थी। जिसका उदाहरण हमें उदयपुर की अमरशाही, डूंगरपुर की उदयशाही, कोटा व बूंदी की बूंदी शाही, जोधपुर की विजयशाही और जयपुर की मानशाही पगड़ियों में देखने को मिलता है।

उत्सवों और शुभ अवसरों पर पगड़ी का रंग उजला और विशेष प्रकार का होना राजस्थान की विशेषता थी। वर्षा ऋतु में उजली हरी रंग की पगड़ी पहनी जाती थी। सर्दियों में उजली लाल (कसुम्बी) और गर्मियों में केसरिया रंग की पगड़ियाँ सामान्यतः पहनी जाती थी। तीज त्योहार पर, लहराना अथवा बहुरंगी पगड़ियाँ पहनने का प्रचलन था। दशहरे पर मण्डील या फूलों की डिजायन वाली स्वर्ण धागों से युक्त पगड़िया पहनी जाती थी। होली के अवसर पर सफेद या पीले रंग की पगड़ियां पहनी जाती थी।[14]

पगड़ियां विभिन्न वस्तुओं से सजाई जाती थी जैसे तुर्रा,[15] सिरपेचा,[16] बाला–बन्दी,[17] डुगडुगी,[18] गोसपेच,[19] लटकन और फतेह–पेच,[20] जो कि सोने या चांदी के बने होते थे और जिन पर विभिन्न रंगों के कीमती पत्थर जड़े होते थे। उदाहरण के लिए – जहांगीर ने बीकानेर के सूरसिंह को अनेक मौकों और उत्सवों पर बाला–बन्दी, गोसपेच और कनपेचा[21] आदि प्रदान किए थे। ईस्वी सन् 1772 में हसन कुली बेग ने जोधपुर के विजयसिंह को बाला–बन्दी, सिरपेच और कलंगी भेंट की थी। इस प्रकार ये विभिन्न प्रकार की सजिजत पगड़ियां व्यापक रूप से शाही व्यक्तियों द्वारा मुगल शैली के आगमन के बाद प्रयुक्त की जाने लगी।[22] कमरबंद कमर के चारों ओर बांधी जाती थी और पटका भी कमर पर बांधा जाता था। फेंटिया और पांजो छोटी धोती थी। उच्च वर्गो के लोगों द्वारा रूमाल और गुलबंद का प्रयोग किया जाता था। मफलर जो कि गले में पहना जाता था। अन्य वस्त्रों फेंटा सिर पर बांधा जाता था और दुपट्टा कंधों पर रखा जाता था।

उत्तर मध्यकालीन राजस्थान के समाज में मुगल सम्पर्क के प्रभाव से परिधान–वस्त्रों में, सलवार, पायजामा, इजार, इजारबंद, जांघिया आदि का प्रयोग सामान्यतया होने लगा। अनेक रिकार्ड में इजारबंद (पायजामे, सलवार के लिए कपड़े की पट्टी) का वर्णन मिलता है कि यह सितारों से चित्रित और चांदी के छल्ले इसके अन्त में होते थे। जांघिया पर फूलों की कच्ची डिजायन बनाई जाती थी।

शरीर के नीचले हिस्से को ढकने के लिए कमर से टखनों तक की एक स्कर्ट पहनी जाती थी जिसे घाघरा कहा जाता था। इसका उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर आये हैं। मुगल सम्पर्क के कारण इस स्त्रियों के इस घाघरे नामक परिधान में कई प्रभाव पड़े और परिवर्तन आये। फिर भी इसका मूल रूप अधिक प्रभावित नहीं हुआ। चोली या कुरती की नयी डिजायनों के साथ ही घेरदार घाघरे भी प्रचलन में आये। मुगल प्रभाव यह पड़ा कि इसकी लंबाई कम कर दी गयी और यह लहंगा कहलाया। हिन्दू स्त्रियों में मुगल प्रभाव के कारण तंग व ढीले पायजमे, घाघरा और लंबी ओढ़नी का प्रचलन अधिक हो गया था।

मुगलकाल में सरकारी कारखानों में बनने वाली वस्तुओं में खिलअत विशेष उल्लेखनीय है। खिलअत सम्मान की पोशाक होती थी जिसे विशेष अवसरों पर पादशाह विशिष्ट व्यक्तियों को प्रदान करता था। ये अवसर होते थे राज्यारोहण की वर्षगाँठ, दोनों ईदें, उत्सव का कोई भी अवसर इत्यादि। इस शाही परिधान को खिलअत-ए-पादशाही कहते थे। जिसमें कुलाह (एक लम्बी तारतर टोपी) एवं पिरहन (ढीला ढाला कुर्ता) आते थे। कारखानेशाही वस्त्रागार के लिए पोशाके भी तैयार करते थे। साथ ही आभूषण, श्रेष्ठ नक्काशीदार वस्तुएँ जिनमें अत्यन्त कुशल कारीगरी होती थी। तात्पर्य यह कि शाही परिवार के प्रयोग की अधिकांश वस्तुएँ विभिन्न सरकारी कारखानों में ही बनाई जाती थीं। जिसका प्रभाव आमजन पर भी पड़ा। उनके रंगों, डिजायनों, छपाई आदि को स्थानीय रंगरेजों, कलाकारों आदि ने अपनाया और आमजन में मुगलिया पोशाकों का प्रभाव झलकने लगा।

16वीं से 18वीं शताब्दी तक भारतीय वेशभूषा पर मुस्लिम प्रभाव काफी तेजी से पड़ा जिसका मुख्य कारण अकबर व उसके बाद के मुगल सम्राटों की नीति और लोकप्रियता रही है। अबुलफजल ने अपने ग्रन्थ 'आईना-ए-अकबरी' ग्रंथ की रचना की थी, जो सम्राट अकबर के समकालीन था। इस ग्रंथ में 'वस्त्रागार', फरासखाना', 'शाल' एवं रंगों की उत्पत्ति का विवरण प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में उल्लेख है कि अकबर ने लाहौर, आगरा, फतेहपुर, अहमदाबाद में 17वीं-18वीं शताब्दी के रिकार्ड्स वस्त्र-परिधानों की प्रकृति और उनमें प्रयुक्त किये जाने वाले सामग्री की महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। इनमें को एटलस, जामदानी, किमखाब, तासर, छिंट, परचो, मसरू, चिक, इलायचो, थिरमा आदि के नाम से जाने जाते थे। अबुल फजल ने आइने अकबरी में इस तरह के नाम दिये हैं। परिधानों के नाम इस प्रकार थे - अहमुदी, चिक, मीर-ए-बदला, नोरंगशाही, बहादुर-शाही, फरूर्खशाही, छींट, आमगिर-फेंटो, बाफ्ता और मोमजामा छींट। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त परिधान मुगल प्रभाव के कारण राजस्थान में प्रचलन में आये। अबुल फजल ने आईने अकबरी में सोने का काम किये हुए वस्त्रों का भी उल्लेख किया है जिनमें से कुछ वस्त्रों के नाम इस प्रकार है - जरब्फ्त, मखमल, मुतब्बक, मीलक, तास, दाराई, बाफ, मुकेश (चांदी के तारों से बने वस्त्र), शिरवानी, मुशज्जर, देवा, खारा, अतलस, नवार, खताई, खज्ज, कुर्तावार, मिदिली, चीरा आदि।[23] ये सभी नाम उर्दू-फारसी के शब्द हैं।

मुगल वेशभूषा का दर्शन हमें अनेक भित्तिचित्रों में भी होता है जिनमें पुरुषों को प्रायः जामा, चुस्त पायजामा, कमर में पटका, पगड़ी पहने चित्रित किया गया है। पैरों में नोकदार जूतियां है। यौद्धाओं, बादशाहों एवं सामान्य व्यक्तियों की पोशाक एवं जूते भी अलग-अलग हैं। पगड़ियों में कीमती मोतियों की कलगियाँ चित्रित है। युवा राजकुमारों के कानों में कुण्डल व गले में कई लड़ों की मोतियों की मालाएं पहने चित्रित किया गया है। स्त्रियों में पहनावें में कुर्ता या आस्तीनदार चोली, झीना आँचल, पायजामा या लहंगा है। वस्त्रों में बूटियों का चित्रण अधिक है। जिससे स्पष्ट होता है कि उस समय वस्त्रों में बेल-बूटों का चलन अधिक था।

मुगलकाल में वेशभूषा व परिधान एक से नहीं थे। शाही, उच्च, मध्य एवं निम्न वर्गों के लोगों के पहनावे में काफी अन्तर होता था। पुरूषों के अतिरिक्त स्त्रियों का पहनावा भी अलग तरह का होता था। यह मुगलिया प्रभाव आधुनिक काल तक रहा है। 7वीं से 15वीं शताब्दी तक मुगल शासक सिर पर कुलाह (एक लम्बी तारतर टोपी) पहनते थे और शरीर के लिए काबा (कुर्ता, जो ऊन व मसलिन का बना होता था), जो कि कसा हुआ होता था, प्रचलन में था। समय के साथ-साथ पेशवाज व अंगरखे का चलन हुआ, जो कि एक प्रकार का चुस्त कुर्ता होता था। शरद ऋतु में कुर्ते के ऊपर एक लम्बा गाऊन पहना जाता था जिसमें सूती व अन्य किसी कपड़े का अस्तर लगाया जाता था इस गाऊन को दगला कहा जाता था। उच्च वर्ग एक विशेष परिधान जिसे जामाए रखाव कहते थे, पहनते थे। यह जामाए रखाव रात्रि में सोने के समय पहना जाता था। पिरहन जो कि ढीला ढाला कुर्ता होता था और यह घुटनों तक लटकता रहता था। पिरहन उच्च वर्गों द्वारा ही

पहना जाता था। उच्च वर्ग में अधिकांशतया मलमल एवं रेशम के वस्त्र ही पहने जाते थे। सूती वस्त्र पहनने का रिवाज कम प्रचलित था। मुगल वस्त्रों को हाशिये द्वारा सजाया जाता था।[24] हाशियों को सुन्दर अलंकृत डिजायनों, बेल–बूंटों एवं आखेट संबंधी डिजायन छापे जाते थे।

17वीं से 18वीं शताब्दी में राजस्थान के शासकों ने मुगलों के अनेक वस्त्र–परिधानों का अनुसरण किया। इन वस्त्रों के निर्माण के लिए जिन कपड़ों की किस्म का उपयोग किया जाता था वह भी मुगल प्रभाव के कारण परिवर्तित हुआ है जैसे कि पायजमा बनाने के लिए 'गुलबदन' नाम कपड़े का इस्तेमाल किया जाता था और धोती के लिए मलमल। इन सभी वस्त्रों के निर्माण प्रक्रिया में काम आने वाले कपड़ों में 'खीमखाप' (khimkhap) नामक कपड़ा सबसे अधिक महंगा था। इसके अतिरिक्त, जरी का थान, सादा थान, गिरदि का थान, चिनुट का थान, सेला का कसूमल थान, मलमल, कसूमल, दरियाई थान, बालाबन्दी आदि कपड़े भी परिधान निर्माण में काम लिये जाते थे। बुरहानपुर की छींट और मुल्तानी छींट में किनारी पर लगने वाला सोने का गोटा अन्य छींटों में लगने वाले गोटे के मुकाबले महंगा था। रेशम का कपड़ा भी काम में लिया जाता था। इस काल में अन्य कपड़ों में पूर्वी, गुजराती कन्नात धोती रेशी, फूलमाला, रामरखड़ी, गुलाल, दरिया और छींट जोधपुरी मुख्य थे।[25] अबुल फजल ने आइने अकबरी में उल्लेख किया है कि 'तूस' पहाड़ी बकरी की जटा से बनाई जाती है जो कश्मीर, अफगानिस्तान एवं एशिया के दक्षिणी भाग के पहाड़ों के ऊपरी भाग में पायी जाती है। इनके बारीक रेशों से पारदर्शी कपड़ा बनाया जाता था। बड़े रेशे से कंबल आदि भी बनाये जाते थे। तुरा बकरी के रेशे मुख्यतः सफेद एवं काले होते थे। उसे रेशों से शान, पगड़ी एवं साड़ियां आदि भी बनाई जाती थी जो हल्की व मुलायम होती थी। उस पर कई प्रकार की रंगाई भी की जाती थी।

उच्च वर्ग के लिए अनेक प्रकार की पोशाकें प्रचलित रहीं थी जिसका उल्लेख हसन निजामी (ताज–उल–मासीर) ने किया है –

दीन–ए–हफ्तरंग = सतरंगी जरी वस्त्र, विसात–ए–जुमर्दी = लाल रंग का वस्त्र, जामा–ए– उन्नावी =गुलाबी रंग के वस्त्र, जामा–ए–जरफत् = जरी निर्मित वस्त्र, लिबास–ए–बहमान = उत्तम किस्म का कढ़ा हुआ कपड़ा जिस पर फूल बने हुए होत थे, जामा–ए–सन्जाव = घट का लिबास, सफतान–ए–कबा = साधारण कुर्ता, कदाए–ए–फिस्तूकी = कुर्ता – यह मुगल समय के प्रचलित वस्त्र थे। मौजे और जूते भी अमीर वर्गों में पहने जाते थे।[26]

मुगल–राजपूत सम्बन्धों के परिणामस्वरूप वस्त्र उद्योग में मुगल शैली का राजपूताना (राजस्थान) में भी प्रवेश हुआ। राजस्थान में मुख्य रूप से ढूँढाड़ क्षेत्र पर इसका प्रभाव सर्वाधिक रहा। प्राचीन समय में जयपुर और इसके आस–पास का क्षेत्र ढूँढाड कहलाता था जिसके अन्तर्गत जयपुर, अलवर, शेखावाटी आदि क्षेत्र आते थे।[27]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अंसारी, एम.ए., सोशियल लाइफ ऑफ दी मुगल एम्परर, पृ. 14*
2. *शर्मा, जी.एन., सोशल लाइफ इन मिडाइवेल राजस्थान (1500–1800), पृ. 36*
3. *वही*
4. *नवा कपड़ो रा कोठार तालके जमा–खरचे रो खातो, मारवाड़*
5. *दस्तूर कौमवार, 1615 ई.*
6. *शर्मा, जी.एन., सोशल लाइफ इन मिडाइवेल राजस्थान (1500–1800), पृ. 13*
7. *ओकाडा, अमीना, इण्डियन मिनियेचर्स ऑफ दी मुगल कोर्ट, पृ. 11–14*
8. *यह कोट के उपर का आवरण था जो रूई से भरा होता था और इसमें अस्तर होता था।*
9. *आस्तीन और कमर पर छोटी तहो वाला वस्त्र। बाहं और कमर लंबी पट्टी की पंक्ति वाला वस्त्र।*
10. *दो तहों वाला उपरी शरीर को ढकने वाले वस्त्र की किस्म।*
11. *लम्बी आस्तीन वाला कोट।*
12. *शर्मा, जी.एन., राजस्थान स्टडीज, पृ. 90*
13. *भाटी, सुखसिंह, राजस्थान के परम्परागत वस्त्र–परिधान, पृ. 22*
14. *शर्मा, जी.एन., राजस्थान स्टडीज, पृ. 90*
15. *यह स्वर्णयुक्त वस्तु थी जो पगड़ी पर बांधी जाती थी।*
16. *स्वर्णयुक्त वस्तु थी जिसका आवारण पगड़ी पर बांधा जाता था।*
17. *यह रंगयुक्त टुकड़ा था जो पगड़ी के चारों ओर बांधा जाता था।*

18. सज्जायुक्त बारीक कीमती पत्थर

19. स्वर्णयुक्त लटकने वाली वस्तु

20. वस्त्र का टुकड़ा जिससे वस्तुएं बांधी जाती थी।

21. पगड़ी के उपर कानों को ढकते हुए बांधा जाता था।

22. शर्मा, जी.एन., सोशल लाइफ इन मिडाइवेल राजस्थान (1500–1800), पृ. 41

23. आईने अकबरी

24. शर्मा, कल्पना, राजस्थान में परिधानों की संस्कृति, पृ. 44

25. राठौड़, विक्रमसिंह, मारवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.

26. श्रीवास्तव, आशीर्वादलाल, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 250

27. भार्गव, वी.एस., दी राइज ऑफ दी कछवाहज इन ढूँढाड़, पृ. 1–3

भारत–आसियान सम्बन्ध : भारतीय विदेश नीति में बदलाव का प्रतीक

डॉ. प्रेमलता परसोया
व्याख्याता , राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

एक प्रमुख क्षेत्रीय संगठन के रूप में 1967 में आसियान नामक दस सदस्यों का संगठन एशिया में स्थापित हुआ। भारत सदस्य नहीं था परन्तु 1991 में वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप व सामूहिक सुरक्षा की दृष्टि से आसियान देशों से सम्बन्ध स्थापित करने हेतु भारत ने 'लुक ईस्ट पॉलिसी' की शुरूआत की। परिणामस्वरूप 1992 में भारत, आसियान का आंशिक साझेदार तथा 1995 में पूर्ण वार्ता साझेदार बन गया। भारत–आसियान के सुदृढ़ आर्थिक, राजनीतिक सम्बन्धों के कारण ही 2014 में प्रधान मन्त्री नरेन्द्र मोदी ने लुक ईस्ट को 'एक्ट ईस्ट' नीति में तब्दील कर दिया है। आज भारत–आसियान सम्मेलन 1–2 वर्ष में आयोजित हो रहे है तथा आर्थिक सम्बन्धों से शुरू होकर आज सांस्कृतिक, शैक्षणिक, विज्ञान व तकनीकी, पर्यावरण, पर्यटन तक इन सम्बन्धों का विस्तार हो चुका है।

संकेताक्षरः *सार्क, वैश्वीकरण, सामूहिक हित, सामूहिक सुरक्षा, लुक ईस्ट पॉलिसी, एफटीए, एक्ट ईस्ट पॉलिसी, उदारीकरण, एआरएफ।*

1990 के दशक में आये अनेकानेक वैश्विक परिवर्तनों ने राष्ट्रों की विदेश नीतियों, द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय सम्बंधों में परिवर्तन हेतु वातावरण निर्मित किया। विश्व की भौगोलिक दूरियों का महत्व लगभग खत्म सा होता जा रहा था और विचारधारा के स्थान पर यथार्थ आधारित राष्ट्र हितों की पूर्ति पर बल दिया जाने लगा। विश्व व्यवस्था एक ध्रुवीय है या बहु ध्रुवीय, यह बहस प्रमुख रूप से महत्वपूर्ण शब्दों को सोचने के लिए मजबूर कर रही थी। भारत भी वैश्विक परिवर्तनों से अछूता नहीं रह सका क्योंकि एक तो भारत की आन्तरिक स्थितियों में भी बदलाव आ रहे थे तथा दूसरी और भारत का प्रमुख मित्र राष्ट्र, सोवियत संघ विघटित हो गया और उसका प्रतिनिधित्व ग्रहण करने वाले रूस के स्वयं के सामने अनेकानेक समस्याएँ मुँह बाये खड़ी थी इसलिए वह पहले की तरह भारत की सहायता करने की स्थिति में नहीं था।

भारत का राजकोषीय घाटा बढ़ता जा रहा था और अर्थव्यवस्था संकट की स्थिति में पहुँच रही थी। अब भारत को अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकास की आवश्यकता महसूस हो रही थी। इस हेतु भारत को आसियान राष्ट्र काफी महत्वपूर्ण प्रतीत हुए अतः उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करने को भारत उत्सुक हुआ। यद्यपि आसियान का गठन 1967 में हुआ था और इसके सदस्य भारत को आसियान का सदस्य बनाना भी चाहते थे परन्तु उस समय भारतीय सरकार द्वारा यह सोचा गया कि ऐसा लगेगा जैसे भारत, खुद को सदस्य देशों पर थोपने की कोशिश कर रहा है क्योंकि वह दक्षिण पूर्व एशिया का हिस्सा नहीं था, परन्तु वास्तविकता यह थी कि भारत ने आसियान देशों का महत्व समझा ही नहीं था क्योंकि भारत की अधिकांश जरूरतें सोवियत संघ द्वारा ही पूरी हो जाती थी।

भारत–आसियान सम्बन्धों की शुरूआत

वैश्विक स्तर पर उस समय सामूहिक सुरक्षा और आर्थिक विकास की प्रवृत्ति उभर रही थी, तब भारत ने महसूस किया कि छोटे–छोटे राष्ट्र साझेदारी की भावना के आधार पर संयुक्त होते जा रहे थे जबकि वह अपने आपको अलग–थलग पा रहा था, इसलिए अब भारत ने आसियान के साथ द्विपक्षीय/बहुपक्षीय सम्बन्धों के विकास पर ध्यान दिया तथा आसियान में किसी

भी तरह की सदस्यता व साझेदारी प्राप्त करने का प्रयास किया। दूसरी और आसियान राष्ट्र भी चीन के एशिया में बढ़ते प्रभुत्व के प्रति आशंकित होते जा रहे थे वो चीन की शक्ति को सन्तुलित करने हेतु सहयोगी राष्ट्र की तलाश में थे और इसके लिए उन्हें भारत और जापान दो राष्ट्र प्रासंगिक प्रतीत हो रहे थे, यद्यपि जापान के सैन्य आधुनिकीकरण को लेकर भी आसियान राष्ट्र आशंकित थे अतः भारत उन्हें आर्थिक तथा सामरिक सहयोग हेतु महत्वपूर्ण राष्ट्र महसूस हुआ।

1991 में भारतीय प्रधानमन्त्री नरसिम्हा राव ने 'लुक ईस्ट पोलिसी' की शुरूआत की। अपनी अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध करने के लिऐ आर्थिक सुधारों को पेश किया। भारत की नई आर्थिक नीति से आसियान राष्ट्र और ज्यादा प्रभावित हुए। भारत द्वारा अपनाई गई आर्थिक उदारीकरण की नीति ही वह चुम्बक थी जिससे स्वतः ही आसियान राष्ट्र भारत की ओर आकर्शित होने लगे दूसरी ओर आसियान राष्ट्रों के साथ भारत का जमीन को लेकर कोई सीमा विवाद नहीं है और नही किसी प्रकार का रणनीतिक हित को लेकर टकराव हैं।

इस तरह भारत का आसियान की तरफ रास्ता 1992 में उसके क्षेत्रीय वार्ता के साझेदार और फिर दिसम्बर, 1995 में मुकम्मल वार्ता का साझीदार बनकर बनता गया। जुलाई, 1996 में भारत आसियान क्षेत्रीय फोरम (ARF) का सदस्य बन गया और आसियान के साथ 2002 में इसका शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसके बाद से ही भारत, आसियान देशों के साथ सहयोग बढ़ाने की शपथ लेकर ए.आर.एफ. के सम्मेलन में हिस्सा ले रहा है। भारत 2005 में बने पूर्वी एशिया सम्मेलन का एक संस्थापक सदस्य है।[1] किन्हीं दो राष्ट्रों या अनेक राष्ट्रों के सम्बन्धों को आगे बढ़ाने में शिखर सम्मेलन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, इसी तरह भारत और आसियान के बीच रिश्तों में प्रगति का कार्य ये सम्मेलन ही कर रहे थे।

आसियान की स्थापना 1967 में हो गई थी परन्तु इसका चार्टर दिसम्बर, 2008 में स्वीकृत किया गया। आसियान में कुल दस सदस्य राष्ट्र है और यह 4.46 मिलियन कि. मी. क्षैत्र पर स्थित है जो कि पूरी पृथ्वी का लगभग 3 प्रतिशत है तथा इसकी जनसंख्या लगभग 600 मिलियन है जा कि विश्व जनसंख्या की 8.8 प्रतिशत है। इसका समुद्री क्षेत्र, इसके भूमि क्षेत्र से तीन गुना अधिक है। आसियान विश्व में 18 वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता है। लगभग 7 मिलियन भारतीय, दक्षिण पूर्वी एशिया में निवास करते हैं।

यद्यपि भारत और आसियान में सम्बन्धों की वर्तमान शुरूआत 1992 से मानी जाती है परन्तु इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि हमारे सम्बन्ध ईसा पूर्व के दौर से ही रहे हैं। भारत और दक्षिण पूर्वी एशिया के राष्ट्रों के बीच सम्बन्ध नई बात नहीं थी अपितु इनमें अतिप्राचीन काल से घनिष्ट सम्बन्ध थे और न केवल राजनीतिक अपितु सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध भी थे। भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के बीच के राजनीतिक – आर्थिक और सामाजिक – सांस्कृतिक सम्बन्ध ईसा पूर्व दौर के है। वाणिज्य सम्पर्को के प्रभुत्व वाला वह युग हिन्दू एवं बौद्ध धर्मो को इस क्षेत्र में ले आया। आज के दक्षिण पूर्व एशिया में भी भारतीय प्रभाव पर्याप्त रूप में दृष्टिगोचर होता है विशेष तौर पर उसकी भाषा, रीति–रिवाजों वं राजवंशियों के कर्मकाण्ड के मामले में। राजाधिकार की हिन्दू अवधारणाएँ हिन्दू प्रशासनिक संस्थाएँ और समारोह, दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों की राजशाही संस्कृति में इतने गहरे तक अन्तः स्थापित थे कि कुछ देशों के इस्लामीकरण के बावजूद ये प्रथाएँ आज तक कायम है।[2]

लुक ईस्ट पॉलिसी को 1992 में प्रधानमन्त्री नरसिंह राव ने शुरू किया था जिन्होनें आर्थिक सुधार की प्रक्रिया को भी शुरू किया था। यह शब्द पहली बार विदेश मन्त्रालय द्वारा 1995–96 में इस्तेमाल किया गया। राव सरकार के शासन में अर्थव्यवस्था को फिर से पटरी पर लाने का एक बड़ा कार्यभार था साथ ही राजनीतिक स्थिरता को भी सुनिश्चित करना था नये अवसरों का लाभ उठाना और नई विश्व व्यवस्था और वैश्वीकरण द्वारा पेश की गई नई चुनौतियों का सामना करना था।[3]

भारत – आसियान देशों को आपस में जोड़ने में आर्थिक सहयोग का सबसे महत्वपूर्ण योगदान था क्योंकि अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक हितों को सर्वोच्च मानने की प्रवृत्ति विकसित हो रही थी। द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय सम्बन्धों में यह भावना विकसित हो रही थी। भारत के प्रधानमन्त्री श्री राव ने अपनी विदेश नीति के बारे में कहा भी था कि 'अर्थव्यवस्था सबसे पहले, बाकी सब बाद में'। वैसे भी एशियाई महाद्वीप के देशों के प्रति भारत का स्वाभाविक रूझान था क्योंकि वह स्वयं एशिया के प्रमुख राष्ट्रों में शुमार रखता था और आजादी प्राप्ति से पूर्व ही उसने एशियाई एकीकरण के प्रयास शुरू कर दिये थे और उन्हीं का परिणाम था एशियाई सम्मेलन और बाण्डुंग सम्मेलन। हाँ ये सत्य है कि 1990 तक भारत ने अपनी आन्तरिक परेशानियों के कारण इस क्षेत्र के सम्बन्धों पर अधिक ध्यान नहीं दिया था। इसके बाद से भारत के आसियान के साथ सम्बन्ध निरन्तर प्रगतिशील रहे है और भारत की 1991 की 'लुक ईस्ट पॉलिसी' अब 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' में तब्दील हो चुकी है।

भारत – आसियान आर्थिक सम्बन्ध

भारत और आसियान के बीच सम्बन्धों के सभी तरह के आधार, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामरिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक महत्वपूर्ण है परन्तु दोनों के बीच निकटता का सबसे प्रमुख आधार आर्थिक सहयोग ही है। यही वजह थी कि भारत द्वारा आर्थिक उदारीकरण की नीति अपनाने के बाद ही आसियान से सम्बन्ध बन पाये। पहले आसियान के देशों के केवल चीन के साथ ही आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्ध थे और ये देश काफी मात्रा में चीन पर ही निर्भर थे परन्तु 20 वीं सदी के अन्तिम दशक में चीन की अर्थव्यवस्था उतार–चढ़ावों के भंवर में झूल रही थी तो आसियान देशों को चिन्ता होने लगी और अपने आदान–प्रदान हेतु अन्य बाजार की तलाश हुई और भारतीय बाजार स्वाभाविक रूप में ही अन्हें आकर्षित कर रहा था दूसरी ओर भारत ने भी अभी आर्थिक उदारीकरण की नीतियों को अपनाया था और वैश्विक अर्थव्यवस्था से अपनी अर्थव्यवस्था का एकीकरण करने हेतु उसे नवीन बाजारों की तलाश थी जो आसियान देशों से सम्बन्ध सुदृढ़ करके पूर्ण की जा सकती थी।

इस प्रकार भारत – आसियान सम्बन्धों का जो धारा–प्रवाह 1991–92 में प्रारम्भ हुआ, वह अविरल रूप से बह रहा है। 1992 में भारत, आसियान का क्षेत्रीय संवाद साझीदार, (जिसमें व्यापार, निवेश, पर्यटन, विज्ञान और तकनीकी शामिल था) और दिसम्बर,1995 में पाँचवे आसियान सम्मेलन में वह पूर्ण रूप से संवाद साझीदार बन गया। फिर एक दशक बाद नवम्बर, 2002 में अन्ततः पहला भारत – आसियान सम्मेलन, कम्बोडिया के नोमपेन्ह में आयोजित किया गया। अक्टूबर, 2003 में बाली में दूसरे आसियान – भारत सम्मेलन के दौरान होने वाली बातचीत के कारण ही एफ.टी.ए. के लिए फ्रेमवर्क एग्रीमेंट पर दस्तखत हो सका।[4]

भारत – आसियान द्विपक्षीय व्यापार 1993 से 2003 तक 11.2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की दर से बढ़ा। 1993 में जो 2.9 बिलियन अमेरिकी डॉलर था, वो 2003 में 12.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया। भारत – आसियान की व्यापारिक प्रगति को निम्न तालिका से समझा जा सकता है :– दो दशकों में भरत – आसियान व्यापार

वर्ष	अमेरिकी डॉलर में
1993–95	2.5 बिलियन
2007–08	लगभग 38 बिलियन
2008–09	45 बिलियन
2010–11	56 बिलियन
2012–13	75 बिलियन
2013–14	80 बिलियन

स्त्रोत : विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं से संग्रहित किया गया है।

भारत और आसियान के बीच वस्तुओं और सेवाओं को लेकर विदेशी व्यापार समझोते पर भी हस्ताक्षर किये गए, जिसने 2009 में एक मुक्त व्यापार क्षेत्र को स्थापित कर दिया। यह मुक्त व्यापार समझौता वर्श 2010 में लागू हो गया। इसलिए आसियान की स्थापना के शुरूआती समयान्तराल के निकल जाने के बावजूद पिछले दो दशकों में इस साझेदारी ने कई सकारात्मक लाभ उपलब्ध करवाये।[5]

भारत और आसियान सम्बन्धों में आर्थिक व व्यापारिक प्रगति के लिए किया गया मुक्त व्यापार समझौता (FTA) एक मील का पत्थर कहा जा सकता है। इसके तहत् दोनों तरफ से उत्पादों/वस्तुओं पर लगे शुल्क को घटाना तथा कम करना था जिससे कि वस्तुओं का आदान–प्रदान बढ़ सकें। परन्तु ऐसे समझौतों में राष्ट्रीय हितों से जुड़ी अनेक अड़चने भी आती है क्योंकि दोनों ही पक्ष सर्वाधिक लाभ प्राप्ति की अपेक्षा रखते है। FTA पर भी काफी विचार–विमर्श होने के बाद 2003 में दोनों तरफ से हस्ताक्षर हो सके थे भारत ने अपनी नकारात्मक सूची को 854 से घटाकर 560 लगभग कर दिया था तथा आसियान ने भी नकारात्मक उत्पादों की सूची लगभग 600 कर दी थी। धीरे–धीरे दोनों पक्षों में सहमतियाँ बनती गई और आर्थिक और व्यापारिक विकास के मुकाम हांसिल करती गई। विभिन्न वार्ताओं के दौर तथा गतिरोधों को पार करने के पश्चात् यह मुक्त व्यापार क्षेत्र अगस्त, 2011 को लागू हुआ था।

भारत और संयुक्त आसियान के अतिरिक्त भारत का आसियान देशों के साथ व्यक्तिगत तौर पर भी व्यापारिक

सम्बन्धों का विकास हो रहा था। जैसे अक्टूबर, 2003 में थाईलैण्ड के साथ मुक्त व्यापार क्षेत्र (FTA) के लिए रूपरेखा समझौते पर हस्ताक्षर किये गए। यह पहला समझौता था जो आसियान के किसी व्यक्तिगत देश के साथ द्विपक्षीय स्तर पर हुआ था। इस समझौते में 2010 तक सामानों के लिए एफ.टी.ए. और फिर सेवाओं और निवेशों के लिए 2006 से अलग एफ.टी.ए. दिया गया। इसमें उत्पादों की एक ही सूची थी जिन्हें मार्च, 2004 से बेहद तेजी के आधार पर टैरिफ मुक्त प्रवेश हासिल होना था।[6]

इसी तरह भारत ने सिंगापुर और मलेशिया के साथ भी व्यक्तिगत स्तर पर आर्थिक सहयोग समझौते किये जो कि इसके समग्र आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्धों के विकास में महत्वपूर्ण भमिका निभायेगा। हाल ही के वर्षो में आसियान, भारत के सबसे बड़े व्यापारिक भागीदार के रूप में उभरा है। वास्तविकता यह है कि भारत, आसियान देशों के साथ केवल व्यापार का विस्तार मात्र ही नहीं चाहता अपितु वह अनय राष्ट्रों को निवेश के लिए भी यहाँ आमन्त्रित करना चाहता है क्योंकि एफ.डी.आई. के बिना आर्थिक विकास हो ही नहीं सकता है। भारत भी इन देशों में निवेश कर रहा है क्योंकि निवेश की प्रकिया द्वितरफा चलने पर ही सफल रहती है और व्यापारिक विकास की सफलता का सूत्र भी होती है। भारत और आसियान के सम्बन्धों को अनेक संस्थाओं द्वारा संचालित किया जाता है, जैसेः– आसियान – भारत व्यापार सम्मेलन, आसियान – भारत व्यापार परिषद, आसियान – भारत मन्त्रियों (आर्थिक) की बैठके, आसियान – भारत वार्ता समिति, आसियान – भारत कार्य समूह व्यापार और निवेश पर।

भारत और आसियान के बीच किये गये FTA समझौते के बाद सहयोग की अपार संभावनाएँ नजर आ रही हैं। आर्थिक क्षेत्र में दोनों तरफ से इस तरह की प्रक्रियाओं को अन्जाम दिया जा रहा है कि आपसी प्रतिस्पर्द्धा बढ़े और व्यापार तथा निवेश की रफ्तार भी तेज हो। इसके लिए इनका प्रयास होता है कि सभी अर्थव्यवस्थाओं में प्रतिस्पर्द्धात्मक दबाव को बढ़ाया जाए, कम सक्षम अथव्यवस्थाओं को सक्षम व सुदृढ़ बनाया जाए, साथ ही पूँजी, प्रौद्योगिकी तथा भौतिकी के क्षेत्रों में निवेश को उन्नत किया जाए। भारत भी अपनी तरफ से पूर्ण कोशिश करता है कि भारत – आसियान की आर्थिक सुदृढ़ता बनी रहे तथा व्यक्तिगत विकास के साथ क्षैत्रीय अर्थात् महाद्वीपीय स्तर पर भी आर्थिक सक्षमता बढ़ सके।

भारत ने अपने सीमित साधनों के होते हुए भी आसियान राष्ट्रों को निम्न छूट देने की घोषणा की :–

(I) दक्षिण–पूर्व एशियाई राष्ट्र लम्बी अवधि हेतु भारत से इन्जीनियरिंग सामान, मशीनरी, मोटर वाहन एवं लोहा आयात करने हेतु छूट प्राप्त कर सकते हैं।

(ii) इनको आयात हेतु अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा के स्थान पर वस्तु विनिमय के आधार पर व्यापार की छूट होगी।

(iii) भारत इनहें आयात–निर्यात बैंक हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करेगा।

(iv) इनके मानव संसाधन विकास हेतु सहयोग प्रदान करने का आश्वासन।[7]

भारत द्वारा आसियान देशों से सम्बन्ध बढ़ाने को उत्सुक होना निराधार नहीं अपितु इसके पीछे अनेक आकर्षण है, जैसे मलेशिया व इण्डोनेशिया के पास अत्यधिक मात्रा में द्रवित प्राकृतिक गैस है तथा विश्व के अन्य देशों को ये निर्यात करते है साथ ही इण्डोनेशिया कोयले का भी बड़ा निर्यातक है। इसी तरह म्यांमार के पास अपार प्राकृतिक गैस के भण्डार है तथा विश्व में दूसरे नम्बर पर है। यह सर्वविदित है कि शीघ्र ही वियतनाम कच्चे तेल के प्रमुख निर्यातक के रूप में उभर सकता है। यदि भारत के इन राष्ट्रों से अच्छे सम्बन्ध होंगे तो उसे बिना झन्झटों के उपरोक्त संसाधन मिल सकेंगे। भारत को इन उपरोक्त स्त्रोतों की आर्थिक विकास में महत्ती आव यकता है।

भारत – आसियान के अन्तर्गत दिल्ली डायलॉग भागीदारी तथा समृद्धि के लिए परिकल्पना का आयोजन 19–20 फरवरी, 2013 को नई दिल्ली में किया गया। इसका उद्घाटन भारत के तत्कालीन विदेश मन्त्री श्री सलमान खुर्शीद ने किया। आसियान के तत्कालीन महासचिव माननीय एच.ई. श्री लुओंग मिन्ह, मलेशिया के उप विदेश मन्त्री एच.ई. सीनेटर, ए. कोहिलान पिल्लई, म्यांमार के उप विदेश मन्त्री एच.ई.यू. जिन या, वियतनाम के उप विदेश मन्त्री फाम क्वांग विन्ह तथा आसियान के सभी सदस्य देशों ने इसमें भाग लिया।[8]

भारत, आसियान क्षेत्रीय फोरम का सदस्य भी है जो कि एशिया पेसिफिक क्षेत्र में एक औपचारिक, ऑफिसियल बहुपक्षीय संवाद का मंच है तथा इसका उदेश्य आपसी संवाद तथा सम्पर्क प्रक्रिया को तेज करके विश्वास निर्माण करना है।

यद्यपि प्रारम्भ में भरतीय विदेश नीति आदर्शवाद पर अधिक आधारित थी और आदर्शों के लिए कई बार हमने राष्ट्रीय हितों का भी त्याग किया है परन्तु इन्दिरा गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व काल से और खासकर शीत युद्धोत्तर युग में

भारतीय विदेश नीति ने यथार्थवाद पर अपनी विदेश नीति को स्थापित कर लिया है हालांकि हमारे आदर्श अभी भी महत्वपूर्ण है परन्तु सबसे ऊपर राष्ट्र के हित है जिनके साथ किसी भी स्थिति में समझौता नहीं किया जा सकता। भारत की विदेश नीति के आधारभूत महत्वपूर्ण तत्व वही है जो हमने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद निर्धारित किये थे परन्तु समय एवं राष्ट्रीय हितों की आवश्यकतानुसार यथोचित परिवर्तन हमने अपना लिए है। आज विदेश नीति की व्यापक दृष्टिकोण से व्याख्या कर ली गई है ताकि किन्ही राष्ट्रों की कीमत पर किन्हीं राष्ट्रों से रिश्ते नहीं रखें जाए।

भारत आज अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति व अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता के प्रति प्रतिबद्ध है और इसके लिए जहाँ से भी सहायता व सहयोग मिल सकता हो भारत प्राप्त करने में आदर्शो की बाधा को नहीं स्वीकारेगा। आज आसियान देश प्रति व्यक्ति आय के हिसाब से जी.डी.पी. व पी.पी.पी. के आधार पर जी.डी.पी. में काफी आगे है जिसे इस तालिका द्वारा समझा जा सकता है :–

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के 2017 के अनुसार आँकडें

क्र. सं.	देश	जी.डी.पी. (पी.पी.पी.) अमेरिकन डॉलर मिलियन	जी.डी.पी. (पी.पी.पी.) प्रति व्यक्ति आय अमेरिकन डॉलर मिलियन
1.	इण्डोनेशिया	3,257,123	12,432
2.	थाइलैण्ड	1,226,407	17,749
3.	फिलिपाइन्स	878,980	8,270
4.	मलेशिया	922,057	28,636
5.	सिंगापुर	514,837	90,724
6.	वियतनाम	648,243	16,925
7.	म्यानमार	334,856	6,360
8.	कम्बोडिया	64,405	4,022
9.	लओस	44,639	6,115
10.	ब्रुनेई	32,838	76,567

स्त्रोत : विकी पीडिया

भारतीय सरकार की कमान जब से मोदी जी ने संभाली है तब से उन्होने विश्व स्तर पर अपने द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय रिश्तों में सुधार का प्रयास किया है। इस हेतु उन्होनें बहुत सारे देशों की राजकीय यात्राएँ भी की है, क्योंकि वो जानते है कि अर्थव्यवस्था के विकास हेतु एफ. डी.आई. के लिए भारत को दूसरे राष्ट्रों को प्रेरित करना पड़ेगा। इसी तर्ज पर उन्होनें आसियान राष्ट्रों को भी ये समझाने में सफलता हांसिल की है कि उनकी सरकार इस क्षेत्र के साथ व्यवसाय करने के लिए रूचि ले रही है और औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास के एक नये युग की शुरूआत भी इसे मान सकते है।

भारत – आसियान अन्य सहयोग के क्षेत्र

भले ही भारत – आसियान के बीच आर्थिक कारणों से सम्बन्धों के शुरूआत हुई हो परन्तु इनमें सहयोग के अन्य अनेक आधार भी मौजूद है। आसियान के कई देश म्यामांर, थाइलैण्ड, मलेशिया तथा इण्डोनेशिया के तट हिन्द महासागर से निर्धारित होते है और भारत की सामरिक सुरक्षा की दृष्टि से हिन्द महासागर का अत्यधिक महत्व है। म्यामांर के आसियान का सदस्य बनने के बाद भारत के आसियान से सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता और बढ़ गई है क्यों कि म्यामांर लगभग 1600 कि.मी. की सीमा से भारत को आसियान देशों से जोड़ता है। भारत और आसियान राष्ट्रों की राजनीतिक व मूल्य व्यवस्थाएँ भी काफी समानताएँ रखती है और आसियान के कई राष्ट्र भारत के साथ गुट निरपेक्ष आन्दोलन के सदस्य भी है। आसियान का प्रमुख राष्ट्र इण्डोनेशिया का सुमात्रा द्वीप भारत के अण्डमान निकोबार द्वीप के काफी निकट है। दूसरी तरफ आसियान देश भारत की सुरक्षा चिन्ताओं से सहमत है क्योंकि भौगोलिक स्थिति इस तरह की भावनाओं का महत्वपूर्ण आधार है। भारत – आसियान के सहयोग के प्रयासों की कड़ी में भारत – आसियान सम्मेलनों पर दृष्टि डालना भी समीचीन होगा।

क्र.सं.	समय	स्थान
1.	नवम्बर, 2002	नोमपेन्ह (कम्बोडिया)
2.	अक्टूबर, 2003	बाली (इण्डोनेशिया)
3.	नवम्बर, 2004	विएंटिएन (लाओस)
4.	दिसम्बर, 2005	क्वालालम्पुर (मलेशिया)
5.	जनवरी, 2007	सेबू (फिलिपीन्स)
6.	नवम्बर, 2007	सिंगापुर
7.	अक्टूबर, 2009	हआुआ हिन (थाइलैण्ड)
8.	अक्टूबर, 2010	हनोई वियतनाम
9.	नवम्बर, 2011	बाली (इण्डोनेशिया)
10.	नवम्बर, 2012	नोमपेन्ह
11.	अक्टूबर, 2013	बंदेर सेरी बागवान (ब्रुनेई)
12.	नवम्बर, 2014	नयपयीतव (म्यांमार)
13.	नवम्बर, 2015	क्वालालम्पुर (मलेशिया)
14.	सितम्बर, 2016	लाओ पी.डी.आर. (विएंटिएन)

2002 से शुरू हुए भारत – आसियान सम्मेलन निरन्तर आयोजित हो रहे ये इनके सम्बन्धों की प्रगति का ही प्रतीक हैं। इन सम्मेलनों ने सम्पूर्ण एशिया की प्रगति शान्ति, विकास तथा एकता के प्रयत्नों को बढ़ावा देने का कार्य किया है।

आज सामरिक दृष्टिकोण भी भारत – आसियान राष्ट्रों की नजदीकी की मांग करता है। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी की एक्ट ईस्ट पॉलिसी एशिया – प्रशान्त क्षेत्र में भारत के लिए अधिक से अधिक सामरिक भूमिका का निर्माण करने का मौका देती है। पूर्वी एशिया में समुद्री सीमा विवाद में हिन्द महासागर में चीन की मौजूदगी और मुखरता भारत और उसके एशिया प्रशान्त भागीदारों के लिए पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में एक बढ़ी भारतीय भूमिका की प्रासंगिकता को मजबूत बनाया है।[9] 1992 में भारत – आसियान के क्षेत्रीय वार्ता भागीदार बनने के 20 सालों में दोनों के सम्बन्ध सामरिक क्षेत्र में उन्नति तक पहुँच गये। चीन की दक्षिण चीन सागर तथा हिन्द महासागर में मजबूत स्थिति, भारत तथा आसियान राष्ट्रों के लिए खतरनाक चुनौति है, इसलिए आसियान राष्ट्र भारत के साथ मिलकर चीन की चुनौति से निपटना चाहते हैं। भारत भी आज सबसे ज्यादा ध्यान अपनी राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा पर दे रहा हैं क्योंकि भारत के दो निकटतम पडौसी राष्ट्रो से हमे निरन्तर चुनौती मिलती रही है तथा इनके साथ संबंधों का इतिहास भी हमें सतर्क रहने को कहता है। इसलिए भारत कई क्षेत्रीय संगठनों का सदस्य अपने सामरिक व रणनीतिक हितों की सुरक्षार्थ बन गया है।

भारत एक साथ बहु–क्षैत्रीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग (बिम्सटेक), मेकांग–गंगा सहयोग और आसियान क्षेत्रीय फोरम के रूप में बंगाल की खाड़ी पहल का एक हिस्सा है। आसियान के साथ इसका सैन्य सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है, साथ में मिलान अभ्यास, बंगाल की खाड़ी में द्विवार्षिक रूप में किये जाते है। ऐसे अभ्यास भारत और आसियान की सशस्त्र बलों के बीच अन्तर संचालन को बेहतर बनाने में सहायता करते है।[10]

यद्यपि भारत की विदेश नीति में दक्षिण एशिया के पड़ोसी राष्ट्रों को प्रमुखता से रखा गया है और इसका प्रमाण भी प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने शपथ ग्रहण समारोह में दक्षिण एशियाई राष्ट्रों को आमन्त्रित करके दिया था। इसके बाद भारत की प्राथमिकता दक्षिण पूर्व एशिया ही है क्योंकि नरेन्द्र मोदी ने दक्षिण एशिया के बाहर एक देश के रूप में अपनी पहली यात्रा जापान की, आज भारत और जापान के अच्छे सामरिक–रणनीतिक संबंध है। इसके बाद भारत के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने वियतनाम की यात्रा की। जापान और वियतनाम आसियान के प्रमुख राष्ट्र है। दक्षिण पूर्व एशिया की सामरिक महत्ता समझते हुए नरेन्द्र मोदी ने भारत की 1991 की ''पूर्व की ओर देखो'' नीति को 'एक्ट ईस्ट नीति' में तब्दील कर दिया है। भारत की विदेश मन्त्री सुषमा स्वराज ने भारत की 'लुक ईस्ट

पॉलिसी' को 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' में परिवर्तित करने की शपथ ली थी। नरेन्द्र मोदी जी ने भी 2014 में कहा था कि उनकी सरकार पूर्वी एशिया के साथ रिश्तों को प्राथमिकता देगी। इस 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' द्वारा भारत ने मेक इन इण्डिया, डिजिटल इण्डिया, इण्डिया एज नॉलेज केपिटल, इण्डिया एज विश्व गुरू जैसे महान लक्ष्यों को पूरा करने का निर्धारण किया गया है। 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' द्वारा पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के साथ भारत के रिश्तों को अधिक सक्रिय और ऊर्जावान बनाना था और इसके द्वारा भारतीय अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना महत्वपूर्ण लक्ष्य था।

भारत का लक्ष्य इस पॉलिसी द्वारा हिन्द महासागर और पैसिफिक देशों के साथ रिश्तों का विस्तार कर आर्थिक और सामरिक हितों को पूर्ण करना था। सामरिक दृष्टिकोण से पूर्वी एशियाई राष्ट्रों की मंशा भी दक्षिण चीन सागर में चीन की दावेदारी तथा वर्चस्व को सन्तुलित करने के लिए भारत की भूमिका को स्वकार करने की थी। 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' के तहत भारत पूर्वी एशियाई रष्ट्रों के साथ सम्बन्धों पर छाई उदासीनता को खत्म करके आर्थिक, सांस्थानिक और रक्षा सम्पर्को को सुदृढ़ की अभिलाषा रखता है। इसके उद्देश्यों को जानना भी यहां उचित होगा।

एक्ट ईस्ट नीति के सामरिक – राजनीतिक सामरिक उद्देश्य

- पूर्व में सहयोग, उपस्थिति और सहयोग बढाने के दक्षिण एशिया और हिन्द महासागर क्षेत्र में चीन के प्रभाव को रोकने के लिए।
- प्रमुख विवादों में चीन की बढती मुखता के सन्दर्भ में पूर्व में भारत के राजनीतिक और सामरिक हितों की रक्षा दक्षिण चीन सागर में विशेष रूप से करना।
- इस क्षेत्र में अन्य भागीदारों के साथ संबंध का उन्नयन[11]

आसियान में भारत को 3 (चीन, जापान, दक्षिण कोरिया) के समान महत्व दिया है। आर्थिक सम्बन्धों से शुरू हुआ यह सफर अब सांस्कृतिक, शैक्षणिक, कृशि, विज्ञान व तकनीकी, पर्यावरण तथा पर्यटन.... आदि क्षेत्रों में भी दोनों तरफ से सहयोग बढाने की तत्परता जारी है। पर्यटन, आज विश्व स्तर पर सामान्य सहयोग का तत्व बन चुका है। इसलिए भारत – आसियान के बीच भी पर्यटन सहयोग हेतु एक एम ओ यू पर हस्ताक्षर किये गये है तथा इससे संबंधित एक वेबसाइट भी प्रारम्भ की गई है। यद्यपि शुरूआत में इसमें सात सदस्य देशों कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, म्यामांर लाओस, सिंगापुर, फिलीपीन्स, वियतनाम को ही वीजा देने का निश्चय किया गया, बाद में विस्तार की बात शामिल थी। भारत ने आसियान राष्ट्रों के साथ समुद्री परिवहन सहयोग का प्रस्ताव रखा जो आसियान राष्ट्रों को रूचिकर लगा। इससे दोनों तरफ से लोगों की आपस में आवाजाही बढ़ेगी और यही तत्व द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय संबंधों में सुदृढता लाने वाला होता है, क्योंकि कोई भी देश या क्षेत्र मात्र, भूमि या संसाधनों से नहीं बन सकता है अपितु उसमें निवास करने वाली जनता से बनता है और जनता के मन का सौहार्द्र ही राष्ट्रों में समरसता बढाता है।

कृषि क्षेत्र आपने आप में बहुत बढा है जिसमें भारत आसियान के बीच सहयोग की अपार सम्भावनाएं है जिस पर भी दोनों तरफ से क्रियान्वयन प्रारम्भ किया जा चुका है। उच्चतर कृषि शिक्षा व अनुसन्धान की गुणवत्ता को बढाने और साथ ही साथ कृषि विश्वविद्यालयों के बीच सहयोग के जरिये विस्तार के लिए पहले के हिस्से के रूप में आसियान और भारत के कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों के प्रमुखों का सम्मेलन नई दिल्ली में 18–21 फरवरी 2013 को आयोजित किया गया।[12]

भारत में कृषि का बहुत बडी जनसंख्या के जीवन निर्वाह में महत्वपूर्ण योगदान है और कृषि के क्षेत्र में आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करके रोजगार क्षेत्र का विकास किया जा सकता है। भारत, आसियान राष्ट्रों से कई तरह की कृषि पद्धतियाँ तथा जानकारियाँ हासिल कर सकता है तथा कृषि क्षेत्र के विकास द्वारा बहुत बडी जनसंख्या के लिए रोजगार सृजन किया जा सकता है। कृषि पर ही अनेकानेक उद्योग आधारित है इसलिए भारत–आसियान राष्ट्र जीवन के सभी पहलुओं में सहयोग व सुदृढता स्थापित कर सकते है।

इसी प्रकार आतंकवाद को खत्म करना, नशीले पदार्थो की चोरी रोकना, रोहिंग्यास शरणार्थियों की समस्या का समाधान करना, बुहत सारे मुद्दे है, जिन पर भारत, आसियान के राष्ट्रों के साथ मिलकर समाधान ढूंढ सकता है। रोहिंग्यास शरणार्थी भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के लिए समान रूप से चिन्ता का विषय है क्योंकि ये राज्य विहीन लोग माने जाते है और म्यामांर से थाइलेण्ड, इण्डोनेशिया और भारत के अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह में शरणार्थी बनकर रहते है। ऐसे में भारत और आसियान मिलकर उक्त समस्या का स्थायी समाधान निकाल सकते है।

अन्ततः यही कहा जा सकता है कि भारत और आसियान के बीच 1992 में प्रारम्भ हुआ संबंधों का सफर 'लुक ईस्ट पॉलिसी' से 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' तक पहुंच गया है और आज दोनों तरफ से राजनीतिक, आर्थिक, सुरक्षा, पर्यटन, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में सहयोग निरन्तर बढता जा रहा है। जब भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था में सुधार की नीति को अपनाया अर्थात उदारीकरण की नीति अपनाने के बाद भारत और आसियान राष्ट्रों के बीच व्यापार की प्रगति के रास्ते खुलते गये। आसियान के राष्ट्रों के साथ भारत के द्विपक्षीय संबंध भी आज बहुत अच्छे है। दानों ही पक्षों की न केवल आर्थिक अपितु सांस्कृतिक व राजनैतिक आवश्यकताऐं भी अच्छे संबंधों की मांग कर रही है।

आज बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, मानव तस्करी, सीमा पार आतंकवाद, अवैध आप्रवासन, भ्रष्टाचार आदि अनेक समस्याओं का समाधान दानों मिलकर आसानी से कर सकते है। दोनों ही पक्षों की ओर से जनता से जनता के आपसी सम्पर्क को बढ़ाया जाना चाहिए। ये स्थिति, किन्हीं भी द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत और आसियान मिलकर क्षेत्र में चीन की चुनौती से भी आसानी से निपट सकते है। भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत अच्छी छवि है और वो संबंध बनाने में बहुत कुशल है। अतः भारत और आसियान के संबंधों का भविष्य बहुत प्रकाशवान ही कहा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1 *भारत – आसियान रिश्ते : शिखर सम्मेलन का भागीदारी परिप्रेक्ष्य : डॉ. भावना पोखरणा का लेख वर्ल्ड फोकस, जुलाई 2014 पृष्ठ 46*

2 *लुक ईस्ट पॉलिसी : भारतीय डायसपोरा अमित सिंह, वर्ल्ड फोकस जनवरी 2012, पृष्ठ 38*

3 *लुक ईस्ट से एक्ट ईस्ट पॉलिसी तक : भारत जापान का रिश्ता : डॉ. विनोद एफ. खोबरागडे वर्ल्ड फोकस, जून 2016 पृष्ठ 63*

4 *आसियान व्यापार : एकीकरण पर भारत का दृष्टिकोण देबाशीश चक्रवर्ती वर्ल्ड फोकस जनवरी, 2002, पृष्ठ 50*

5 *मोदी की विदेश नीति में भारत आसियान : लुक ईस्ट नीति में वर्तमान एवं भवष्यि – मिस विपाशा रोजी लाकरा वर्ल्ड फोकस जून 2016 पृष्ठ 104*

6 *भारत का आसियान पडाव : आर्थिक बहुपक्षवाद की यात्रा, डॉ. मोहर चक्रवर्ती वर्ल्ड फोकस, जुलाई 2014, पृष्ठ 27*

7 *प्रो. आर. एस. यादव : भारत की विदेश नीति एक विश्लेषण किताब महल प्रकाशन, नर्द दिल्ली पृष्ठ 468*

8 *मिस विपाशा रोजी लाकरा का लेख : पूर्व उद्धृत पृष्ठ 105*

9 *भारत और एक्ट ईस्ट पॉलिसी : डॉ. संघमित्रा पटनायक वर्ल्ड फोकस, जून 2016, पृष्ठ 77*

10 *प्रशान्ता कुमार साहू : सहयोग के लिए प्रतिस्पर्धा : दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय क्षेत्रीय प्रयासों तथा क्षेत्र में अमेरिकी और चीनी रूचियों के बीच संर्घष वर्ल्ड फोकस, जून 2017 पृष्ठ 118*

11 *डॉ. वो. जुआन विन्ह : भारत की एक्ट ईस्ट पॉलिसी – वियतनाम से एक परिपेक्ष्य, वर्ल्ड फोकस, जनवरी 2017, पृष्ठ 45*

12 *अनिल कम्बोज : भारत आसियान भागीदारी वर्ल्ड फोकस, जुलाई 2014, पृष्ठ 6*

आधुनिक समाज में टूटते परिवार का संत्रास

संदीपा विश्वकर्मा
शोधार्थी, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध शारांश

परिवार समाज की प्रथम इकाई होती है जो मनुष्य की सभी आवश्यकताओं को पूरा करती है तथा उसे सुरक्षा प्रदान करती है। स्वतंत्र परिवार हो या संयुक्त परिवार, परिवार के उत्तरदायित्व को पूर्ण करने में परिवार के सभी सदस्य सहयोग देते है। परिवार की सुख शांति पारिवारिक सदस्यों तथा उनके बीच उचित संचार प्रक्रिया पर निर्भर करती है। लेकिन हम परिवारों में परम्परागत सहयोग, प्रेम तथा सौहार्द का अभाव देख रहे है। परिवार नामक संस्था विखंडित हो रही है। आधुनिक परिवार केवल परिवर्तन की प्रक्रिया के मध्य में है, संक्रान्ति की स्थिति में है परन्तु एक सर्वमान्य तथ्य यह भी है कि आज तक मानव ने किसी भी ऐसी समिति या संस्था का आविष्कार नही किया है जो परिवार का स्थान ले सकें और उतनी ही दक्षता के साथ परिवार के मौलिक कार्यो को कर सके। प्रस्तुत शोध पत्र में पाविारिक विघटन को एक समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षरः *संक्रान्ति, मेरुदण्ड, दत्तकग्रहण, भग्न परिवार, अवैधानिक यौन क्रियायें, सुखद साहचर्य, संत्रस्त, विमेन्स लिब, नव धनाड्यों के कारनामें।*

परिवार समाज का मेरूदण्ड है। जिसके सहारे समाज का ढांचा खड़ा होता है। प्राणिशास्त्रीय, प्राणी के रूप में परिवर्तन करने में जिन एकाधिक कारकों का हाथ रहता है, परिवार उनमें सर्वाधिक भूमिका अदा करता है। समाज के विकास के लिए जिस सहयोग, प्रेम, सामंजस्य, सौहार्द की आवश्यकता होती है उसकी प्रथम पाठशाला परिवार है जो अपने सदस्यों में असीमित उत्तरदायित्व एवं कार्यविधि जैसे मानवीय गुणों का विकास निर्वाह करता है। किंग्सले डेविस ने कहा है कि ''परिवार के सभी कार्य इतने स्वतंत्र प्रकृति के होते हैं कि उन सभी कार्यों को अन्य संस्थानों के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है, लेकिन परिवार के अतिरिक्त ऐसी कोई संस्था नहीं है जिसके इन कार्यों को असीमित उत्तरदायित्व की भावना के साथ किया जाता है।''

परिवार संस्था ने मनुष्य के जीवन का आदिकाल से ऐसा मार्गदर्शन किया है जैसा अन्य किसी संस्था ने नहीं किया होगा। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य रहा है, या है। परिवार के अभाव में मानव समाज के संचालन की कल्पना भी करना कठिन प्रतीत होता है। यद्यपि आधुनिक समय में परिवार के समक्ष कुछ ऐसी समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं, जिसके कारण परिवार के अस्तित्व पर एक प्रश्नचिह्न लग गया है। परिवार रूपी संस्था का विघटन होता जा रहा है। आधुनिक परिवारों के सदस्यों के बीच तनाव, ईर्ष्या, अश्रद्धा, घृणा, इत्यादि देखने को मिलते हैं। वर्तमान समय में परिवार में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया है जिसके कारण परम्परागत मूल परिवार का भविष्य खतरे में है।

परिवार की अवधारणा

समाजशास्त्रियों ने परिवार की व्याख्या अपने–अपने ढंग से की है। परिवार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ''परिवार'' शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Family' का हिन्दी रूपान्तर है। 'Family' शब्द लैटिन भाषा के 'Famulù' से बना है, जिसका अर्थ एक समूह होता है जिसमें माता–पिता, बच्चों, नौकर तथा दास हो। परिवार को परिभाषित करते हुए मैकाइवर एवं पेज ने कहा है, ''परिवार एक ऐसा समूह है जो स्त्री–पुरुष के यौन सम्बन्धों पर आधारित है और यह समूह इतना सुनिश्चित तथा टिकाऊ

होता है कि इसके माध्यम से प्रजनन क्रिया तथा बच्चों के पालन–पोषण की समुचित व्यवस्था होती है।'' समाजशास्त्रियों के बीच मैकाइवर एवं पेज की उपर्युक्त परिभाषा बहुत दिनों तक प्रचलित रही, परन्तु परिवार के सभी पहलुओं को अधिक स्पष्ट करते हुए कांकलिन ने बहुत ही सरल और संक्षिप्त ढंग से कहा है कि ''परिवार कम से कम दो व्यक्तियों के बीच सामाजिक रूप परिभाषित सम्बन्ध है, जो जन्म, विवाह या दत्तक ग्रहण की प्रक्रिया से जुड़ा होता है।''

परिवार के प्रकार

विश्व स्तर पर परिवार के भिन्न रूप पाये जाते हैं और इसका स्वरूप समय और परिस्थितियों के अनुसार मानव की सभ्यता और संस्कृति के विकास के क्रम में बदलता रहा है। अतः परिवार को आकार के आधार पर दो भागों में बाँटा गया है–

(1) मूल या एकाकी परिवार – मूल या एकाकी परिवार की अवधारणा की ओर सबसे पहले हमारा ध्यान मरडॉक ने 1949 में आकर्षित किया था। एकाकी परिवार पति–पत्नी एवं उन पर आश्रित बच्चों के योग से निर्मित होता है। पश्चिमी देशों में परिवार का यही स्वरूप व्यापक रूप से प्रचलित है। आजकल भारतीय समाज में विशेषकर महानगरों एवं नगरों में इस तरह के परिवार का प्रचलन बढ़ रहा है।

(2) संयुक्त परिवार– संयुक्त परिवार उस परिवार को कहते हैं जिसमें कई पीढ़ियों के सदस्यों का एक सामान्य निवास के साथ एक रसोई हो, जिनकी एक आर्थिक प्रणाली हो और जो परस्पर रक्त सम्बन्धों में बंधे हो। डॉ. एस.सी. दुबे ने संयुक्त परिवार को परिभाषित करते हुए कहा है कि, ''यदि कई मूल परिवार एक साथ रहते हो और उनमें निकट का नाता हो, एक ही स्थान पर भोजन करते हो, तो उनके सम्मिलित रूप को संयुक्त परिवार कहा जा सकता है।''

परिवार का महत्व

समाज में परिवार ही अत्यधिक महत्वपूर्ण समूह है। मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहे उन्हें उन्नत कहा जाये या निम्न किसी न किसी प्रकार की पारिवारिक संगठन अनिवार्यतः पाया जाता है। परिवार ही नवजात शिशुओं एवं गर्भवती माताओं की देखभाल करता है, यौन सम्बन्धों एवं सन्तानोत्पत्ति का नियमन कर उन्हें सामाजिक मान्यता प्रदान करता है। यह भावात्मक घनिष्ठता का वातावरण प्रदान कर बच्चे के समुचित लालन–पालन, समाजीकरण और शिक्षण में योग देता है। यही नहीं बल्कि परिवार अपने सदस्यों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी योग देता है।

ऑगबर्न ''परिवार को इसलिए महत्वपूर्ण मानता है क्योंकि वह परिवारजनों के मध्य स्नेह करना तथा पारस्परिक प्रेम सिखाता है।'' परिवार के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बर्गेस एण्ड लॉक ने लिखा है कि ''परस्पर स्नेह और विवाह परिवार का आवश्यक आधार बनता जा रहा है।'' परिवार में व्यक्ति को स्नेह, वात्सल्य, प्रेम, सहानुभूति तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षा मिलती है। परिवार में स्त्री, पुरुष का सम्बन्ध केवल शारीरिक नहीं बल्कि परिवार में साथ–साथ काम करने से एक दूसरे के सुख–दुख में हाथ बँटाने से पति पत्नी में अत्यन्त प्रगाढ़ दाम्पत्य प्रीति उत्पन्न होती है।

परिवारिक विघटन एक समस्या

पारिवारिक विघटन परिवार की एक ऐसी स्थिति है जिसमें सामंजस्यपूर्ण व मधुर सम्बन्ध टूट गये हो, सदस्यों के बीच सहयोग कम हुआ हो, सामाजिक नियंत्रण कमजोर हो गया है, या अनुशासन व एकता में कमी आ गयी हो। परिवार में विघटन की स्थिति तब भी होती है जब सदस्यों में भूमिकाओं में संघर्ष प्रारम्भ हो जाये, जैसे पति पत्नी में, माता–पिता व बच्चों में, सास–बहू में या भाई–भाई में। जब ऐसा प्रतीत होने लगे कि परिवार ''वांछनीय रूप में काम नहीं कर रहा है, अर्थात् जब सदस्यों की कार्यरत भूमिकायें उनसे समाज द्वारा अपेक्षित भूमिकाओं के अनुकूल न हों, तब विघटन की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।''

विलियम ऑगबर्न ने पारिवारिक विघटन की विवेचना करते हुए कहा है कि यह स्थिति परिवार के प्रकार्यों के कम होने या समाप्त होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। उनके अनुसार विघटित परिवार (अर्थात् वह परिवार जो अपेक्षित कार्य नहीं निभाता) एक लक्षण यह है कि भग्न परिवारों की संख्या में तेजी से वृद्धि होने लगती है जो कि स्त्री पुरुषों की अप्रसन्नता का प्रतीक होता है। इसके कारण स्नेहपूर्ण वैवाहिक जीवन की आकांक्षायें सुसंगठित परिवार में कुण्ठाओं में बदल जाती है। विवाह विच्छेद न केवल माता–पिता के लिये बल्कि उन बच्चों के लिए भी समस्यायें पैदा करता है जो संवेगात्मक संघर्ष से, माता या पिता की मृत्यु से और आर्थिक अभाव से पीड़ित हो। विघटित परिवार के कुछ अन्य लक्षण हैं– अवैधानिक यौन क्रियायें, परिवार का त्याग, बहुधा होने वाले झगड़े, बच्चोंके बहुल अपराधी व्यवहार आदि।

परिवारिक विघटन के रूप में परिवार के सदस्यों में जब स्वार्थ की भावना प्रबल हो जाती है, तब वे अन्य सदस्यों के हितों की चिन्ता नहीं करते। इस प्रकार सदस्यों में सहयोग की भावना धीरे–धीरे समाप्त होने लगती है। परिवार में पिता, जिन सामाजिक मूल्यों के अनुसार अपने बच्चों को ढालने का प्रयास करते हैं, बच्चे उन्हें आसानी से अपनाना नहीं चाहते है। इस प्रकार दो पीढ़ियों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जिसका सीधा प्रभाव परिवार की संरचना पर पड़ता है। औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रिया से स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता की भावना को बढ़ावा मिला है जिसके कारण स्त्रियाँ शहरों में विभिन्न व्यवसायों को अपना रही है। स्त्रियों की प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति उदासीनता के कारण परिवार के अन्दर अनेक समस्यायें उत्पन्न हो चुकी है, जिसके कारण परिवार विघटन की ओर उन्मुख हो रहा है।

आधुनिक समाज में परिवार में सामंजस्य, स्त्री–पुरुष के बीच सुखद साहचर्य की कमी बहुत बड़ी समस्या के रूप में दृष्टिगत होती है। नारी स्वतंत्रता एवं समानता जैसे आन्दोलन एवं विचारों के कारण महिलाओं की स्थिति एवं कार्यों में अनेक परिवर्तन हुए है जिनका पुरुष वर्ग आसानी से समर्थन नहीं करता है। परिणामस्वरूप पति–पत्नी के बीच अहं की टकराहट, महत्वाकांक्षाओं का बोझ, महानगरीय जीवन में अकेलापन– कृत्रिम जीवन का ढोंग, असुरक्षा आदि परिवारों के टूटने का कारण बनकर जीवन को संत्रस्त कर देता है। महानगरीय जीवन में परिवार में रहकर भी निरन्तर सम्बन्धों की जड़ता, एकरसता, तनावग्रस्त लोग न तो परिवार टूटने से बचा पाते है और न स्वयं परिवारिक सुख, मानसिक शान्ति, आर्थिक सुरक्षा भोग पाते हैं। इसी संत्रास के अकेलेपन व रिक्तता के अभाव में भटकाव नियति बन जाती है।

बदलती परिवारिक व्यवस्था की चुनौतियाँ

पिछले कुछ वर्षो में परिलक्षित होने वाले परिवर्तनों विशेषतः आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं भूमण्डलीकरण की प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप उद्घाटित होने वाले परिवर्तनों पर विचार करें तो पाते हैं कि इन प्रक्रियाओं ने परिवार रूपी संस्था के परम्परागत ढांचे को सर्वाधिक प्रभावित किया है। हमारी संयुक्त परिवार प्रणाली में व्यक्तिगत और सामाजिक सभी समस्याओं का समाधान था। बीमारी, अपंगों, वद्धों, बच्चों, बेरोजगारों के लिए किन्हीं अलग संस्थाओं की आवश्यकता न थी, उस टूटन की भरपाई आज 'पीड़ित महिला परामर्श केन्द्र', 'वृद्धाश्रम', 'होम', 'क्रेश' और 'ऑफ्टर केयर होम' आदि कितनी ही संस्थायें मिलकर भी कर पा रही है क्या ? अपनी उज्ज्वल परम्पराओं पर आधारित उपयोगी संस्थाओं में समय के साथ कुछ विकृतियाँ आ गयी हैं, तो बदले समय के अनुरूप बनाने के लिए उनकी पुनर्निर्माण व परिमार्जन किया जाना चाहिए, न कि उनकी उपयोगिता को नकार कर समाज को उनके लाभ से वंचित करना चाहिए। परिवार के विकल्प के रूप में उभर कर सामने आ रही संस्थायें भारतीय मानसिकता के अनुकूल नहीं है। विवशता की स्थिति में वे स्वीकार्य होने पर भी वद्धाश्रम ओर पालना घर को जोड़ देने जैसे समाधान खोजे जाने चाहिए ताकि वृद्धों को बच्चों का साथ मिल सके और बच्चों को वृद्धों की छत्रछाया में भावनात्मक सुरक्षा प्राप्त हो सके।

वर्तमान परिदृश्य में बहुत कुछ बिखर जाने के बाद भी भारत में परिवार अभी भी बचा है। गाँवों से शहरों की ओर पलायन के बाद भी लोग मानसिक रूप से गाँव में अपने घर परिवार से जुड़े रहते हैं और खुशी गम के अवसरों पर सम्मिलित होकर, शहर में कमाये पैसे घर गाँव भेजकर भौतिक रूप से भी जुड़े रहते हैं। परम्परागत रीति रिवाज भी प्रायः उन्हें जोड़े रखते हैं। यह अलग बात है कि रुढ़ियाँ व अंधविश्वास उनकी प्रगति में बाधक है, पर परम्परा और रूढ़ि में अंतर समझने वाले लोग पिछड़ते नहीं, बल्कि समाज में संतुलन कायम रखते हैं। जरूरत है, निरक्षर ग्रामवासियों की परम्परा और रूढ़ि में अन्तर समझाने की।

नारी परिवार की धुरी है। अतः नारी आन्दोलन की दिशा–भटकाव भी परिवार संस्था को बिखेरने में अपनी भूमिका निभाता है। पश्चिमी समाजों में यही हुआ, उसके बाद भारत में भी। पश्चिमी 'वीमेन्स लिब' (Women's Lib) की तर्ज पर नारी मुक्ति आन्दोलन चलाकर हमने देख लिया परिणाम नारी शोषण और बढ़ा, परिवार और विखण्डित हुए। महिलाओं में वर्तमान समय में 'कैरियर' और 'फैमिली' के बीच संतुलन ही अब अहम् मुद्दा हो गया है।

औद्योगिक समाज के उपभोक्तावाद और बाजारवाद ने तो भारतीय परिवार को आघात पहुँचाया ही है उस पर मीडिया के आकाशी हमले ने रही सही कसर पूरी कर दी है। घर–घर पहुँचे दूरदर्शन ने ग्रामीण संयुक्त परिवार को भी नहीं बख्शा। समाज में अवैध सम्बन्धों की जैसे बाढ़ आयी हुई है। लगता है परिवार अभी और टूटेंगे तथा परिवारों की टूटन समाज को और विखण्डित करेगी। आये दिन की हिंसा, बलात्कार की खबरें, नवधनाढ्यों के कारनामे, गलाकाट प्रतिद्वन्द्विता, भ्रष्टाचार और घोटाले इन सबसे राजनीतिक अस्थिरता की ही नहीं, सामाजिक अराजकता की स्थितियाँ भी बन गयी हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। मानव ने अनेक आविष्कार किये हैं, किन्तु वह कोई भी ऐसी व्यवस्था का आविष्कार नहीं कर पाया है जो परिवार का स्थान ले सके। इस संदर्भ में हक्सले लिखते हैं कि ''जब तक माँ का स्थान बोतले न लें तब तक परिवार का अस्तित्व बना रहेगा।'' एण्डरसन ने भी लिखा है कि, ''यह सत्य है कि पिछले कुछ दशकों में परिवार में होने वाले तीव्र परिवर्तनों के फलस्वरूप इसमें कुछ अस्थायित्व है, लेकिन यह स्थिति परिवार के विघटन से सम्बद्ध न होकर परिवार को ऐसा दृढ़ आधार प्रदान करती है जिससे सदस्यों के सम्बन्ध पहले की अपेक्षा कहीं अधिक मधुर और स्थायी हो सकेंगे। वर्तमान परिवारों में स्नेह के द्वारा विवाह का आरम्भ, अधिक दबाव में कमी और और ऐच्छिक रूप से बच्चों का पालन–पोषण वे दशायें हैं जिन्हें भविष्य में परिवार की स्थिरता का अमिट स्रोत कहा जा सकता है।''

परिवार एक पवित्र तथा उपयोगी संस्था है इसमें मानव की सर्वांगीण उन्नति का आधार सहयोग, सहायता तथा पारस्परिकता का भाव रहता है। परिवार की प्रतिष्ठा हमारी प्रतिष्ठा एवं परिवार की उन्नति हमारी उन्नति है। हम ऐसा कोई काम न करें, जिससे परिवार की प्रतिष्ठा पर आंच आये। किसी सदस्य पर कोई अवांछनीय प्रभाव पड़े अथवा उसकी समृद्धि एवं वृद्धि में प्रतिकूलता आये, ऐसा सतर्क भाव ही तो पारिवारिकता कहा जायेगा। इस प्रकार व्यक्तिगत आचण, घरेलू वातावरण तथा विवाद विकृति दूर कर परिवार का निर्माण किया जाय, जिससे सच्ची परिवारिकता, सहयोग, प्रेम तथा पारस्परिकता की भावना बढ़ेगी, जिससे परिवार के साथ समाज तथा देश का कल्याण होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Anderson, W.A. & Parker, F.B., "Society, Its Organization and Operation", Van Nostrand, 1964. p. 162, 176-177.*
2. *Burgess, E.W. & Locke, H.J., "The Family", American Book Co., New York, 1945, p.9.*
3. *Conclin, J.E., "Sociology" Macmillan Publishing Co., New York, 1984. p.243.*
4. *Davis, K., "Human Society", Macmillan and Co., New York, 1959, p.305*
5. *MacIver R.M. & Page, C.H., "Society : An Introductory Analysis", Holt, Rinehart and Winston, 1962, p. 238.*
6. *Murdock, J.P., "Social Structure", Macmillan, New York, 1949.*
7. *Ogburn, W.F. & Nimkoff, M.F., "A Handbook of Sociology", Routledge & Kegan Paul, London, 1953. p.208.*
8. *डॉ.एस.सी. दुबे, ''मानव और संस्कृति'' राजकमल प्रंकाशन, दिल्ली, 1969, पृ. 99, 113.*
9. *जे.पी. सिंह, ''समाजशास्त्र एवं अवधारणायें'', पी.एच. आई., लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, 2013, पृ0 260, 261*
10. *राम आहूजा, ''भारतीय सामाजिक व्यवस्था'' रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1995*

शिक्षा के उद्देश्य : जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

सुषमा शर्मा
व्याख्याता, राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्री गंगानगर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सांस्कृतिक परम्पराओं को समझने के लिए इनसे जुड़ी शिक्षा व्यवस्थाओं का अनुशीलन जरूरी है। शिक्षा व दर्शन एक दूसरे पर अन्योनाश्रित रहते है। दर्शन द्वारा ही जीवन के मूल्य निर्धारित होते है और उसी के अनुरूप जीवन को दिशा प्राप्त होती है और इसी आधार पर शिक्षा के लक्ष्य बनते है। जैसे – जैसे दर्शन में परिवर्तन या बदलाव आता है उसी अनुरूप ही जीवन के मूल्यों में भी परिवर्तन आएगा तो शिक्षा के लक्ष्यों में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है हमारी भारतीय दार्शनिक विचारधारा के अनुसार शिक्षा को आध्यात्मिक मूल्यों से ओत–प्रोत बनाया और दर्शन एवं मूल्यों के आधार पर ही शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किए गए है जिनमें से एक है – जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्य।

संकेताक्षरः *आध्यात्मिक मूल्य, विमुक्ति, शिक्षा – दर्शन, आत्मिक ज्ञान, चारित्रिक विकास, आत्मानुभूति, वैराज्य, शीलवान, सामयिक व्रत, प्रोषधोपवास व्रत, उपभोग– परिभोग– परिमाण व्रत, अतिथि संविभाग व्रत, संलेखना व्रत, विचिकित्सा।*

सांस्कृतिक परम्पराओं को समझने के लिए इनसे जुड़ी शिक्षा व्यवस्थाओं का अनुशीलन आवश्यक है। सामाजीकरण और संस्कृतिकरण की प्रक्रियाओं में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। संस्कृति–सम्मत शिक्षा प्रणाली परम्परा को स्थायित्व देती है और उसके समाकलन में उल्लेखनीय भूमिका निभाती है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा परम्परा के मूल्यांकन और परिवर्धन का साधन बनती है। शिक्षा व दर्शन एक दूसरे पर अन्योनाश्रित रहते हैं दर्शन द्वारा ही जीवन के मूल्य निर्धारित होते हैं और उसी के अनुरूप जीवन को दिशा प्राप्त होती है और इसी आधार पर शिक्षा के लक्ष्य बनते हैं। जैसे–जैसे दर्शन में परिवर्तन या बदलाव आता है उसी अनुरूप ही जीवन के मूल्यों में भी परिवर्तन आयेगा और जब मूल्यों में परिवर्तन आयेगा तो शिक्षा के लक्ष्यों में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। हमारी भारतीय दार्शनिक विचारधारा के अनुसार शिक्षा को आध्यात्मिक मूल्यों से ओत–प्रोत बनाया और दर्शन एवं मूल्यों के आधार पर ही शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये गये। भारतीय मत में शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य विमुक्ति अर्थात् मोक्ष अर्थात् बन्धनों से मुक्ति माना गया है। (सा विद्याया विमुक्तये) इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दर्शन के आधार पर चाहे जिस प्रकार की संस्कृति या विचारधारा हो, उससे जीवन के मूल्य निर्धारित होते हैं और जीवन को भी सही दिशा शिक्षा द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। अतः शिक्षा के लक्ष्य मूल्यों के अनुरूप बनते हैं और शिक्षा के लक्ष्यों के निर्धारण के पश्चात् उनकी पूर्ति के लिये ही उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है। किसी भी विषय का अध्ययन बिना उद्देश्य निर्धारित किये सम्भव नहीं है।

शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा समाज एवं व्यक्ति दोनों के आदर्शों, मान्यताओं और लक्ष्यों को मूर्त रूप दिया जाता है और शिक्षा ही भावी जीवन के सफलतापूर्वक निर्वहन के लिये व्यक्ति को तैयार करती है लक्ष्य के अभाव में चलने वाली सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया निष्प्राण हो जायेगी। शिक्षा के लक्ष्यों के मुख्य स्त्रोत समाज एवं मानव दोनों ही होते हैं और शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य जीवन मूल्यों को प्राप्त करना होता है।

शिक्षा के लक्ष्य निर्धारण के समय अपने समाज की परम्पराओं, मूल्यों, सांस्कृतिक विचारधाराओं आदि पर चिन्तन अवश्य किया जाता है क्योंकि प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी संस्कृति होती है, परम्परा एवं विचारधाराएँ होती हैं। समाज अपनी संस्कृति व दर्शन के अनुरूप जीवन के लक्ष्य निर्धारित करता है और तद्नुरूप ही शिक्षा के लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। शिक्षा के लक्ष्य निर्धारण में न केवल समाज की अपनी संस्कृति, दर्शन अपितु जीवन दर्शन, धार्मिक विचार, राजनैतिक परिस्थितियाँ, आर्थिक-सामाजिक स्थिति और समाज की समस्याएँ व आवश्यकताएँ भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हिन्दू समाज में अपने ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में अनेक मोड़ लिये हैं, प्रत्येक के साथ शैक्षिक दर्शन और नीति में परिवर्तन हुआ है। प्रस्तुत आलेख में शिक्षा के उद्देश्यों को जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है।

ई.पू. छठी शताब्दी में उत्तर वैदिक कालीन की सामाजिक परिस्थितियों जैसे - जातिप्रथा की कठोरता हिंसामय यज्ञों की बाढ़, बहुदेव वाद जन्य पारम्परिक वैमनस्य, कर्मकाण्डों की बहुलता, विविध धार्मिक आडम्बर आदि से युक्त सामाजिक परिस्थितियों में जैन दर्शन व धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने अपने सिद्धांतों के माध्यम से जैन धर्म व दर्शन को पल्लवित व पुष्पित किया।

जैन दर्शन यथार्थवादी व बहुलतावादी दर्शन माना जाता है। जैन दर्शन वस्तुतः जैन धर्म के सिद्धांत ही हैं। ''जैन'' शब्द की उत्पत्ति 'जिन्' धातु से मानी गई है जिसका अर्थ होता है, 'जीतना' (विजय प्राप्त करना) अर्थात् विजेता। दूसरे शब्दों में जो अपने मन व इच्छाओं पर विजय पा ले और मोह-माया से परे रहकर जीवन के आवागमन से मुक्ति पा ले। जिनों के द्वारा अपने शिष्यों (अनुयायियों) को दिए जाने वाले उपदेश व शिक्षाएँ और जैन धर्म के सिद्धांत ही ''जैन दर्शन'' कहलाता है।

जैन दर्शन के अनुसार वही ''शिक्षा'' श्रेष्ठ है जो व्यक्ति को अपने जीवन के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सद्मार्ग (सद्जीवन) के लिए प्रेरित करें। व्यक्ति को सच्चरित्रता प्रदान करने वाला प्रत्येक ज्ञान उपयोगी है। जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा जीवन-पर्यन्त चलने वाली एक निरन्तर प्रक्रिया है जो व्यक्ति का ज्ञानात्मक, भावात्मक और आत्मिक विकास करती हुई कर्म बन्धनों से मुक्ति दिलाती है। जीवन के अन्तिम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने के लिये प्रेरित करती है।

भगवान महावीर तथा जैन धर्म के सभी तीर्थंकरों ने शिक्षा के इसी व्यापक अर्थ को स्वीकार किया है। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने शिक्षा-दर्शन के सम्बन्ध में अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दो पुत्रियों से कहा ''वत्से! यदि तुम दोनों को अवस्था, सौन्दर्य और शील के अनुरूप विद्या से विभूषित किया जाये तो तुम दोनों का जीवन समाप्त हो सकता है। इस लोक में विद्वान पण्डित व्यक्ति ही सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती नारी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होती है। विद्या ही मनुष्य को यश देने वाली है, विद्या ही पुरूषों का कल्याण करने वाली है, अच्छी तरह से अभ्यास की गई विद्या ही समस्त मनुष्यों को पूर्ण करती है।''

विद्या मनुष्य को पूर्ण करने वाली कामधेनु है, विद्या ही चिंतामणी रत्न है, विद्या ही धर्म, अर्थ तथा कामरूप फल से सहित सम्पदाओं की परम्परा उत्पन्न करती है। विद्या ही मनुष्य का बन्धु है, विद्या ही मित्र है, विद्या ही कल्याण करने वाली है, साथ ले जाने वाला धन है और विद्या ही सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है। अतः हे पुत्रियों! तुम दोनों ही विद्या ग्रहण करने का यत्न करो।''[1]

शिक्षा शब्द को ज्ञान, बोध, सीख, विद्या आदि अर्थों से भी अभिहित किया गया है। भगवान महावीर के अनुसार ऐसा निर्मल ज्ञान जिसमें रागादि भावों की कुटिल कालिमा का लेशमात्र भी न हो, वही ज्ञान शिक्षा है। ऐसे पवित्र एवं निर्मल ज्ञान को दर्पण के समान बताते हुए आचार्य अमृतचन्द्र ने अपने 'पुरूषार्थसिद्धियुपाय' नामक ग्रन्थ में कहा है-

तज्जयति पदमं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पण तलेव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।।[2]

आचार्य अमृतचन्द्र ने उक्त निर्मल ज्ञान को अपने ग्रन्थ में मंगलाचरण में ही नमस्कार किया है और कहा है कि वह ज्ञान इतना निर्मल है कि उसमें दर्पण के समान प्रतिबिम्बिता उत्पन्न हो चुकी है और उसमें सम्पूर्ण जगत् के पदार्थ एवं उनके भूत, भावी एवं वर्तमान सम्बन्धी समस्त पर्यायें भी युगपत् प्रतिबिम्बित होती हैं। यहाँ शिक्षा के आत्मिक ज्ञान (केवल्य ज्ञान) की ओर संकेत है।

किसी ने शंका करते हुए कहा कि ज्ञान तो दुःख का कारण है। उदाहरणार्थ - जैसे मुझे यह ज्ञान हुआ कि मेरे परिवार में कोई दुर्घटना हो गई है। वैसे ही मुझे दुःख की उत्पत्ति हुई। इस शंका का समाधान करते हुए आचार्य श्री कुन्दकुन्द 'समयसार' में कहते हैं- ज्ञान दुःख का कारण नहीं है अपितु पारिवारिक मोह दुःख का कारण है। यदि ज्ञान दुःख का कारण हो तो जिस-जिसको यह ज्ञान हुआ है, उस-उसको दुःख होना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं होता। अतएव यहाँ निर्मल, पवित्र सुख स्वरूप ज्ञान का ग्रहण 'शिक्षा' शब्द से होता है।

जैन शिक्षण पद्धति के प्रमुख आदर्श एवं उद्देश्य इस प्रकार दर्शा सकते हैं –

शिक्षा के उद्देश्य

ज्ञान प्राप्ति जीविकोपार्जन चारित्रिक विकास आत्मानुभूति (आत्माभिव्यक्ति)

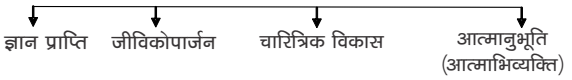

सम्यक ज्ञान की प्राप्ति

जैन शिक्षण पद्धति में सम्यक ज्ञान की प्राप्ति पर विशेष बल दिया गया है। जैन दर्शन में 'मोक्ष' प्राप्ति ही अन्तिम लक्ष्य माना गया है और उसके लिए आत्म ज्ञान होना आवश्यक है और आत्म ज्ञान की प्राप्ति सम्यक ज्ञान द्वारा ही सम्भव है। जैन परम्परानुसार बिना विद्याध्ययन के मनुष्य में विवेक जाग्रत नहीं होता और बिना विवेक जागृति के उसे सदसद् का ज्ञान नहीं होता। इसलिये जैन दर्शन में ज्ञान को सर्वोच्च स्थान दिया गया है।

पढमं नाणं तओदया एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही छेयपावगं।।
सोच्चा जाणइ कल्लाणं सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयमपि जाणइ सोच्चा जं सेयं तं समाचारे।।[3]

अर्थात सुसंयत भिक्षु भावना की अपेक्षा ज्ञान को गुरूतर मानता है। वह उचित ही है क्योंकि अज्ञानी में विवेक नहीं जागता। ज्ञानार्जन के द्वारा ही उसमें विवेक जागता है। उत्तराध्ययन में इच्छाओं को अग्नि की और ज्ञान, चरित्र तथा तप को पानी की उपमा दी गई। साधक स्वयं पर ज्ञान रूपी जल का सिंचन करके स्वयं को कामना रूपी अग्नि जनित दाह से बचाता है।[4]

जिस ज्ञान से सदसद् विवेक जागृत न हो उसे 'अज्ञान' (अन्नाणं) की संज्ञा दी गई है, यथा–जादुई विद्या। इस प्रकार के ज्ञान से मनुष्य जन्म–मरण के चक्र से कभी मुक्त नहीं हो सकता–

सदसद्विसेनाओ भवहेउजइच्छिओव लंभाओ।
णाणफलाभावो मिच्छादिट्ठिस्स अन्नाणं।।[5]

ऐसे ज्ञान की गणना अज्ञान, शंका आदि आठ प्रकार के प्रमादों में की गई है।[6]

जैन दर्शन में ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया गया है– प्रत्यक्ष और परोक्ष। जो ज्ञान अन्तः प्रज्ञा के द्वारा होता है उसे प्रत्यक्ष और इन्द्रिय जन्य ज्ञान को परोक्ष कहा गया है।

जैन धर्म व दर्शन में ज्ञान और क्रिया के तालमेल को विशेष महत्व दिया गया है। जिस प्रकार बिना क्रिया के ज्ञान व्यर्थ है उसी प्रकार बिना ज्ञान के क्रिया व्यर्थ है।

जीवन में समुचित समायोजन के लिये ज्ञान, क्रिया और इच्छा इन तीनों में सामजस्य होना आवश्यक है। इसके बिना इष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती।

प्रायः सभी मोक्षवादी दर्शनों में उस ज्ञान को विशेष महत्व दिया गया है जिसकी प्राप्ति होने पर मनुष्य संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ऐसे ही ज्ञान को जैन दर्शन में 'केवल' ज्ञान कहा गया है और ज्ञानी की उस अवस्था को 'कैवल्य'। केवल ज्ञान वास्तव में भौतिक जगत का ज्ञान नहीं अपितु आत्मा का ज्ञान है। आत्म ज्ञान होने पर जगत के जानने की आवश्यकता नहीं होती। अतः उसके ज्ञाता को सर्वज्ञ भी कहते हैं। इसीलिये आचाराङ्ग सूत्र में कहा गया है – ''जो आत्मा को जानता है वह सबको जानता है या जो सबको जानता है वह आत्मा को जानता है।''[7] 'केवल ज्ञान' जिसे प्राप्त हो गया हो उसे 'केवली' कहा गया है।

पवित्रता का संचार

एक निष्ठावान भिक्षु के लिये आचरण की पवित्रता अनिवार्य थी। जैन शिक्षा प्रणाली में पात्र–अपात्रता पर भी विचार किया जाता था प्रवेश के समय ही मानसिक तथा शारीरिक शुचिता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। सादा जीवन उच्च विचार उनका लक्ष्य होता था इसलिये विद्यार्थियों का जीवन बहुत सात्विक होता था। सात्विकता, विनम्रता, परोपकारिता, कर्तव्यपरायणता से ओतप्रोत उनका जीवन अनुकरणीय होता था। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह व ब्रह्मचर्य इन पाँच व्रतों का पालन उनके चरित्र का अभिन्न अंग होता था। आहार की शुद्धता व पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता था। ''आहार शद्धौ सत्व शुद्धिः, सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा मतिः''। अर्थात् आहार शुद्धि पर सत्व शुद्धि निर्भर है, सत्व शुद्धि से ही मति दृढ़ होती है।

शिष्यों के असंयत व्यवहार के लिये आचार्य द्वारा दण्ड की भी व्यवस्था होती थी।

शिक्षार्थी को जीविकोपार्जन व सामाजिक दृष्टि से उपयोगी बनाना

इस दृष्टिकोण से सन्यासी और साधारण व्यक्ति की शिक्षा में अन्तर था क्योंकि सन्यासी पारिवारिक बन्धनों से मुक्त होते थे जबकि साधारण व्यक्तियों पर पारिवारिक तथा सामाजिक जिम्मेदारियों के निर्वहन के लिये जीविकोपार्जन के साधनों का ज्ञान जरूरी था जिससे वे अपने दायित्वों को सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकें परन्तु जीविकोपार्जन नैतिकता आधारित होती थी।

व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

छात्रों की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करके उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। राष्ट्र में वैराज्य[8] की स्थिति तभी हो सकती है जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण रूप से शीलवान हो।

चरित्र निर्माण

जैन शिक्षण पद्धति का प्रमुख लक्ष्य अच्छे चरित्र का निर्माण रहा है इसलिये इनकी शिक्षा प्रणालियों में चरित्र–निर्माण पर विशेष बल दिया गया। जैन वाङ्मय में इसी कारण अनेक प्रकार के विधि–निषेधों का विधान किया गया है। जैन आचार संहिता में पंच महाव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों को मिलाकर बारह व्रतों का विधान है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह – इन पांच व्रतों का सर्वाङ्गपूर्ण पालन पाँच महाव्रतों के अन्तर्गत आता है। यही पाँच महाव्रत जब अपनी मर्यादा में गृहस्थ द्वारा पाले जाते हैं, तब ये अणुव्रत कहलाते हैं। तीन गुणव्रत इस प्रकार हैं– चारों दिशाओं में आने–जाने की सीमा निर्धारित करना दिग्व्रत, व्यवहार या व्यापार के लिये देश या राज्य की सीमा निर्धारित करना देशव्रत और अकारण ही हँसी–मजाक में दूसरों को कष्ट देने वाले दुष्कर्म न करने का व्रत लेना अनर्थदण्ड व्रत है। चार शिक्षा व्रतों के अन्तर्गत – सामयिक व्रत, प्रोषधोपवास व्रत, उपभोग–परिभोग–परिमाण व्रत और अतिथि संविभाग व्रत का विधान किया गया है। जैन धर्म में मृत्यु समय संसार में अनासक्ति रखकर शांतिपूर्वक मरण स्वीकार करने हेतु संलेखना व्रत के पालन का भी उपदेश दिया गया है।

पाँच अतिचारों का निषेध

जैन धर्म के पाँच अतिचार निम्न है जिनसे बचकर जीवन निर्वाह का उपदेश दिया है–

1. शंका – सद्धर्म पर शंका और अंधविश्वास पर विश्वास न करें।
2. कांक्षा – इन्द्रिय सुख की आकांक्षा न करें।
3. विचिकित्सा – कुरूप और रोगी को देखकर उससे घृणा न करें।
4. अन्य दृष्टि प्रशंसा – दूसरों के भ्रमपूर्ण विश्वासों की प्रशंसा न करें।
5. अन्य दृष्टि – गलत दृष्टिकोण की स्तुति न करें।

इन अतिचारों से बचकर चलने से जीव को सम्यक् दृष्टि की प्राप्ति में सहायता मिलती है और वह अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा असत्य से सत्य की ओर प्रवृत्त होता है। जैन धर्म में व्रतों का पालन करते समय उनके दोषों से सावधान रहने का भी उपदेश दिया गया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जैन दर्शन के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य (उद्देश्य) व्यक्ति के व्यक्तित्व का समन्वित, सन्तुलित एवं सर्वांगीण विकास है व इसके लिये विकास के तीनों भावात्मक, ज्ञानात्मक एवं चारित्रिक पक्षों के विकास पर बल दिया गया है। और तब वह यथार्थ का ज्ञान प्राप्त करके ही अपने जीवन को सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र की पूर्णता का अन्तिम लक्ष्य की ओर अग्रसर कर लेता है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। दूसरे शब्दों में जैन दर्शन यह मानकर चलता है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य तीनों पक्षों का विकास और अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *महापुराण आचार्य जिनसेन, सं. व अनु. पं. पन्नालाल जैन भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1971. द्वितीय भाग 38/43*
2. *पुरुषार्थ सिद्धि उपाय आचार्य अमृतचन्द्र, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, श्लोक सं. 1 (मंगलाचरण)*
3. *दश वैकालिक सूत्र, पृ. 300–301।*
4. *कसाया अग्गिणों कुन्ता। सूय सील तवो जलं*
   सुयधाराभिहयासंता भिन्नादुन डहंति में
   उत्तराध्ययन – 23–53।
5. *ठाणाङ्ग, पृ. 87।*
6. *वही, पृ. 129।*
7. *जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ। आचाराङ्ग सूत्र 34.122।*
8. *आचारांगसुत्तम (जैकोबी संस्करण) पृ. 83।*

नेहरू का लोकतंत्र : संकट के दौर में

कैलाश चन्द सामोता
सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सामान्यतःलोकतंत्र एक ऐसी अवधारणा हैं जो तंत्र की अपेक्षा लोगों को महत्वपूर्ण एवं निर्णायक इकाई मानती है। बलीऑन से लेकर अब्राहिम लिंकन तक सबने इसे लोगो के शासन के रूप अभिवयक्त किया है। आधुनिक विश्व में भारत को 'दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र' के रूप में देखा जाता है।इसके पीछे भारतीय लोकतंत्र के वास्तुकार पं. नेहरू का अविस्मरणीय योगदान रहा है। जिन्होंने स्वतंत्र भारत मे ऐसे लोकतांत्रिक मूल्यों, आदर्शो, मानको, और विश्वासों को स्थापित किया जिनकी बदौलत ही दक्षिणी एशिया मे भारत लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुरक्षित रख पाया है। अतः राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक समानता और वैकल्पिक सरकार की संभावना के अवसर राज्य को वास्तविक रूप में लोकतांत्रिक बनाते है। लोकतंत्र की सबसे महत्त्वपूर्ण या आधारभूत विशेषता है–समानता, स्वतंत्रता और न्याय की प्रतिबद्धता। इस शोध पत्र का मुख्य ध्येय नेहरू की लोकतंत्र की अवधारणा के निहितार्थ स्वरूप को समझना और वर्तमान भारत मे उसकी स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण करना है। इसी के साथ भारतीय लोकतंत्र के सामने की चुनौतियों के समाधान की खोज करना है।

संकेताक्षरः *लोकतंत्र, निर्वाचन, समानता, स्वतंत्रता, न्याय, राजनीतिक मूल्य, मानवीय गरिमा।*

भारत में लोकतंत्र एक नया स्वरूप नहीं है। वरन् इसके प्राचीन सूत्र वैदिक काल की 'सभा' व 'समिति' के रूप में विद्यमान रहे है। ठीक उसी तरह से जैसे कि प्राचीन गणतंत्र युनान के नगर राज्य रहे है। शासन के प्रमुख प्रकारों में राजतंत्र, कुलीनतंत्र और लोकतंत्र को शामिल किया गया है। यद्यपि समय के अनुसार इनके अर्थ, स्वरूप एवं वर्गीकरण के आधार में भी परिवर्तन आता रहा है। प्लेटो से लेकर मोण्टेस्क्यू तक और वैदिक काल से गांधी व नेहरू तक यह परम्परा आगे बढ़रही है। प्राचीन युनानी विचारक पेरीक्लीज ने लोकतंत्र को 'जनता को शक्तिशाली बनाने वाले शासन' के रूप में तो बलीऑन ने इसे 'लोगों का, लोगों के द्वारा व लोगों के लिए शासन' माना है। आगे चलकर विश्व इतिहास के जनक हेरोडोटस ने भी इसी कथन का समर्थन किया है। अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन ने इसे 'गैटिसबर्ग भाषण' 1863 में पुनः दोहराया जो आज भी चर्चित है। यह शब्द यूनानी भाषा के 'डेमोस (Demos)+ क्रेशिया' (Kratos or kretia) से मिलकर बना है जिसका अर्थ लोगों के शासन या सत्ता से होता है। अर्थात ऐसा लोकतांत्रिक राज्य जो जनमत प्रस्तुत करने के लिए 'संस्थाऐं' उपलब्ध कराता है और जो कि लोक नीति व 'सामाजिक दिशा' के आधारभूत प्रश्नों पर जन इच्छा को सर्वोच्चता प्रदान करता है।

लोकतंत्र का अर्थ नेहरू के चिंतन मे :– जब नेहरू 'लोकतंत्र' शब्द का प्रयोग करते है तो निश्चित रूप से उसका अर्थ क्या है ? यह उसके जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में विषयवस्तु के साथ अर्थ प्रस्तुत करता है। स्वाधीनता के लिए संघर्ष के आरंभिक दिनों में यह स्वशासन के नजदीक अर्थ रखता है। लोकतंत्र का मतलब विदेशी शासन से आजादी और वास्तविक प्रतिनिधि सरकार से था। नेहरू के स्वंय के शब्दों मे, ''लोकतंत्र का कुछ भी मतलब होता है तो यह है ''समानता, लेकिन केवल मतदान की समानता नहीं वरन् आर्थिक एवं सामाजिक समानता.... लोकतंत्र का मतलब है सहिष्णुता, लेकिन न केवल उनकी सहिष्णुता जो हमारे साथ सहमत है वरन् उनकी सहनशीलता जो हमारे साथ असहमत हो''।

नेहरू के लोकतांत्रिक विचारों में जॉन लॉक (जन सहमति से शासन) रूसो (व्यक्ति स्वतंत्र जन्म लेता है परन्तु सर्वत्र बन्धनों में जकड़ा रहता है) मॉण्टेस्क्यू (शक्ति पृथककरण व नियंत्रण व संतुलन सिद्धान्त के माध्यम से शासन निरंकुशता का अवरोध) जेरेमी बेन्थम (एक व्यक्ति, एक वोट) जे.एस. मिल (प्रतिनिधि शासन, स्वतंत्रता की धारणा, राजनीतिक समानता, महिला-पुरूष समानता) और कार्ल मार्क्स के विचारों का सामंजस्य विद्यमान है। स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र बहुआयामी अर्थ दर्शाता है जैसा कि नेहरू के इस वाक्यांश से अभिलक्षित होता है-''मैं कहना चाहूँगा कि लोकतंत्र न केवल राजनीतिक है और न केवल आर्थिक वरन् मानसिक अवस्थिति है जैसा कि निश्चित रूप से प्रत्येक वस्तु ही एक मानसिक अवस्थिति होती है। जहाँ तक संभव हो यह आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में सब लोगों को अवसर की समता उपलब्ध कराता है। इसमें सहिष्णुता का वह निश्चित स्तर शामिल है जो अन्य लोगों के प्रति ही नहीं वरन् उनके प्रति जो स्वयं से भिन्न मत रखते है। यह स्थिर न होकर गत्यात्मक प्रणाली है।

नेहरू द्वारा प्रयुक्त शब्द (लोकतंत्र) का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर इसकी चार महत्वपूर्ण सार्थक परिभाषाएँ अभिव्यक्त होती है। जो नेहरू के चिंतन के वास्तविक एवं विभिन्न दृष्टिकोणों या महत्व को परिलक्षित करती है :-स्वतंत्रता के रूप में लोकतंत्र जिसमें मानवीय मूल्यों का एहसास हो सके; नियत सरकारी संस्थानों और प्रक्रियाओं के रूप में लोकतंत्र; समाज की ऐसी संरचना के रूप में लोकतंत्र जिसमें क्रमशः आर्थिक एवं सामाजिक समानता की प्राप्ति होगी; वयक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं के निदान के प्रति निश्चित व्यवहार और दृष्टिकोण के रूप में लोकतंत्र।

लोकतंत्र मानवीय गरिमा का पर्याय है:- नेहरू ने मानवीय गरिमा को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। उसकी लोकतंत्र की प्रथम परिभाषा इसे पूर्णतः स्पष्ट करती है। स्वतंत्रता न केवल राष्ट्र के लिए वरन प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपरिहार्य है। लोकतांत्रिक समाज का मुख्य ध्येय सर्जनशील या रचनात्मक विकास की शर्तों के साथ में वैयक्तिकता उपलब्ध कराना है। भीड़ एक पशु के समान आतंकी होती है। अतः पहले व्यक्तिगत समझ को विकसित करना होगा। 13 दिसम्बर 1946 को नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसमें भारत के सभी लोगों के लिए चिन्तन, विश्वास, उपासना, अभिव्यक्ति, व्यवसाय, संघ और कार्य करने की स्वतंत्रता के संवैधानिक प्रावधान व सुरक्षा की बात कही गयी।

लोकतंत्र जन उतरदायी शासन है:- यह एक तंत्र है जो लोगो के लिए कार्य करता है। दूसरी परिभाषा लोकतंत्र को प्रतिनिधि शासन को दर्शाती है जहाँ संस्थाएं व सरकार अन्तिम रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। लोकतंत्र की इस अवधारणा में निर्वाचित जनप्रतिनिधि, बहुमत का शासन और उत्तरदायी नेता व दल जैसे तत्व लोकप्रिय प्रभुसत्ता को शामिल करते है। रूसो द्वारा प्रतिपादित इस धारणा को नेहरू ने भारतीय लोकतंत्र में स्थापित किया है। परन्तु इसके पीछे का स्रोत पश्चिम नहीं वरन् प्राचीन भारतीय परम्परा है जो अर्थशास्त्र में दिखायी देती है। जहाँ राजा को जनमत के सामने झुकना ही पड़ता है।

नेहरू ने लोकतांत्रिक सरकार की संस्थाओं एवं सिद्धान्तों को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया कि प्रतिनिधित्व के माध्यम से लोकप्रिय प्रभुसत्ता, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त पर नियतकालिक निर्वाचन, बहुमत का शासन तथा जिम्मेदार राजनीतिक दल व नेतृत्व ही सच्चे लोकतंत्र को स्थापित कर सकते है। नेहरू ने संविधान को आगे की ओर बढ़ता हुआ, लचीला एवं परिवर्तनीय बनाने में विश्वास व्यक्त किया है। जिससे कि बदलती हुई परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाना संभव हो सके। हमने संसदीय प्रारूप को ब्रिटेन से स्वीकार किया और तानाशाही के विरूद्ध श्रेष्ठ सुरक्षा प्रदान की। यद्यपि लम्बे समय तक भारत में एक दलीय व्यवस्था का प्रभुत्व रहा है परन्तु इस समय भी गैर कांग्रेसी जॉन मथाई व डॉ. अम्बेडकर जैसे लोगों को मंत्रिमण्डल में रखा गया। अन्य दल जो छोटे रहे उनका भी पूरा ध्यान रखा गया। वैसे भी लोकतंत्र की मजबूती के लिए एक सशक्त विपक्ष का होना अपरिहार्य होता है। लोकतंत्र में राजनीतिक समानता प्रदान करने से ही उसके मूल या सच्चे स्वरूप को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जब ज्यादातर लोगों को वोट का हक मिल गया, तब उन्हें मालूम पड़ा कि इससे उनकी हालत में कोई बड़ा फर्क नहीं पड़ा। वोट का अधिकार मिल जाने पर भी राज्य में या तो उन्हें कुछ भी सत्ता नहीं मिली या बहुत थोड़ी मिली। भूखे आदमी के लिए मताधिकार किस काम का असली सत्ता तो उन लोगों के हाथों में रही जो उसकी भूख का फ़ायदा उठा सकते थे और उसे मजबूर करके अपने फ़ायदे का कोई भी मनचाहा काम उससे करा लेते थे। बस वोट के हक से राजनीतिक सत्ता मिलने के सपने बिखर गये। नेहरू की तीसरी परिभाषा इसे ही अभिव्यक्त करती है।

लोकतंत्र का आर्थिक एवं सामाजिक स्वरूप:- नेहरू ने राजनीतिक लोकतंत्र के साथ ही आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में भी लोकतंत्र को स्थापित करने को अपना लक्ष्य

स्वीकार किया। नेहरू इस क्रम में संसदीय लोकतंत्र के प्रति वफादार बने। नये भारत के लिए नेहरू ने समाजवादी व लोकतंत्रवादी दोनों ही मूल्यों को निर्धारण किया है। प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति एवं प्रगति के लिए आर्थिक व सामाजिक व राजनीतिक तीनों ही क्षेत्रों में अधिकतम संभाव्य समान अवसर मिलना अनिवार्य है। जैसा कि फरवरी, 1962 में 'बंग्लोर' के भाषण में कह रहे थे –''वोट का अधिकार अच्छा एवं उपयोगी है, परन्तु एक भूखे एवं नंगे व्यक्ति के लिए इसके कोई मायने नहीं होते है अतः लोकतंत्र आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में भी स्थापित हो।''

नेहरू के अनुसार आर्थिक लोकतंत्र समाज में आर्थिक संरचना में समानता के लोकतांत्रिक सिद्धान्त को स्थापित करने का समर्थन करता है। समाज में विद्यमान आर्थिक भेदभाव एवं विषमताओं को दूर किये बिना लोकतंत्र की स्थापना नहीं हो सकती है। उनके इस विचार के पीछे मूलतः व प्रत्यक्ष रूप से समाजवाद की धारणा रही है जिसे वे 'समतावादी समाज' के रूप में वर्णित करते है। उनके आर्थिक लोकतंत्र के दो मूल आधार (i) समानता पर आधारित सामाजिक, आर्थिक संस्थान। (ii) लाभ प्राप्ति के ध्येय के स्थान पर पारस्परिक सहयोग पर आधारित आर्थिक व्यवस्था। नेहरू के अनुसार केवल अधिक से अधिक सम्पत्ति का संग्रहण ही मानवीय जीवन का उद्देश्य बना लेना शोषणकारी व्यवस्था को जन्म देता है। उच्चतम मानवीय जीवन स्तर की उपलब्धता सबके लिए हो यही आर्थिक लोकतंत्र है। एक कल्याणकारी राज्य के द्वारा इसे प्राप्त करने में महत्वपूर्ण सहायता मिल सकती है। जहाँ केवल भौतिक उन्नति ही नहीं वरन् मानवीय गरिमा की भी स्थापना होती है।

लोकतंत्र नागरिको के चरित्र का पर्याय होता है :– नेहरू के विचारो मे लोकतंत्र केवल नियमो, प्रकियाओं और संस्थाओ से नही बनता है बल्कि वह उसके नागरिको के चरित्र से बनता है। लोकतंत्र का अन्तिम भावार्थ आत्मानुशासन या आत्म–अनुशासन के मार्ग से जुड़ा हुआ है। यही पर्याप्त नहीं है कि हम केवल राजनीतिक संरचना को ही लोकतंत्र कहकर पुकारते है। नेहरू ने महसूस किया कि 'आत्म–अनुशासन' के बिना लोकतंत्र नहीं चल सकता है क्योंकि वह व्यक्ति एवं समाज का एक अभिन्न हिस्सा है। आत्म–अनुशासन के अधीन रहकर ही समाज अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है। अन्यथा नहीं जैसा कि नेहरू ने 2 अगस्त, 1952 को हाउस ऑफ दि पिपुल सदन में बोलते हुए कहा है कि–''यह जीवन में मूल्यों एवं नैतिकता के उच्च स्तर की योजना है। आप कहीं लोकतांत्रिक हो या नहीं, यह इस पर निर्भर करता है कि हम व्यक्तिगत रूप में और ऐसे ही एक समूह या समाज के रूप में कैसे सोचते है और कैसे कार्य करते है ? यह एक मूलभूत दृष्टिकोण है जो राजनीतिक एवं अन्य समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त होकर तय करता है कि हम लोकतांत्रिक है या नहीं।

लोकतंत्र जीवन का एक तरीका है :– नेहरू ने लोकतंत्र को एक जीवन शैली के रूप में स्वीकार किया है। जिसका मूल लक्ष्य मानव जाति के कल्याण के लिए शक्ति को भी मानव के हाथों में सौंपना है। लोकतंत्र को न केवल भारत के लिए वरन् पूरी दुनिया के राष्ट्रों के लिए हितकारी साधन के रूप में स्वीकार किया है। इस पवित्र साधन के माध्यम से ही पवित्र लक्ष्यों–मानव की गरिमा एवं प्रतिष्ठा को स्थापित करना; मानव मात्र के बीच विद्यमान आर्थिक व सामाजिक संरचना के स्तर पर विभेद को कम करना; समतावादी समाजवाद को संवैधानिक व शान्तिपूर्ण साधनों की सहायता से स्थापित करना; बहुसंख्यकों के साथ–साथ अल्पसंख्यकों के हितों का पूरा ध्यान रखना; शासन सदैव जनसहमति से हो; अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सहयोग स्थापित करना; मानवीय शोषण पर आधारित सभी साधनों का अन्त करना इत्यादि को प्राप्त करना है।

यद्यपि नेहरू के अनुसार लोकतंत्र के सौ रास्ते हो सकते है फिर भी समाज के लिए आत्म–अनुशासन का मार्ग निश्चित रूप से सर्वश्रेष्ठ ही होगा। ऊपर से आरोपित या दबावपूर्ण अनुशासन की तुलना में आत्म–अनुशासन लोकतंत्र के विकास को उच्चतम स्तर तक ले जाता है। इस प्रकार के आत्म अनुशासन का मतलब है कि क्या हम तर्क–वितर्क, बहस या विचार–विमर्श और बहुमत की सामान्य सहमति के पश्चात् अल्पसंख्यकों की स्वाभाविक सहमति प्राप्त करते है। अल्पसंख्यक चाहे तो निर्णय को चुनौती दे सकते है परन्तु सदैव लोकतांत्रिक व शान्तिपूर्ण प्रक्रिया के माध्यम से ही ऐसा कर सकते है। समाज में कार्य करना का यह कठोर पथ है जो लोकतंत्र के साथ ही आत्म–अनुशासन की मांग करता है। अन्य शब्दों में नेहरू उद्घोषित करते है कि लोकतंत्र का अभिप्राय मानवता के उच्चतम स्तर से है। इसे ओर अच्छे शब्दों में रविन्द्रनाथ ठाकुर ने व्यक्त किया है–''अपनी पूर्णता के लिए हमको पूरी तरह जंगली होना पड़ता है और मन से परिष्कृत होना पड़ता है; हममें यह कौशल होना ही चाहिए कि हम प्रकृति के साथ प्राकृतिक हो सके और मानव समाज में मानव हो।''

सामाजिक आत्म–अनुशासन के दो मूल आधार (i) सहिष्णुता की भावना और (ii) शान्तिपूर्ण पद्धति, है। यहाँ

सहिष्णुता का मतलब केवल उनसे नहीं है जो आपके साथ सहमत है वरन् उन लोगों के साथ से है जो आपके विचारों से असहमति रखते है। सहिष्णुता का अर्थ केवल इस बात से नहीं है कि एक ही पक्ष में जनमत निर्मित होता है अथवा अन्य के निर्णय के पक्ष में ही अपने को समर्पित या न्यौछावर कर दिया जाता है बल्कि आलोचना करना या कमियाँ बताना और यहाँ तक की विपक्ष की अनिवार्य उपस्थिति होना लोकतंत्र की आत्मा है या मूल तत्व है या सारांश है। सहिष्णुता का मतलब है, स्थापित प्रक्रियाओं के अनुसार किसी बिन्दु पर भिन्न मान्य दृष्टिकोण रखने वालों को स्वीकार करना और इसे प्रबल बनाने की अनुमति प्रदान करके उन्हें जीतना है। दूसरी तरफ शान्तिपूर्ण साधन आत्म–अनुशासन को मजबूत रूप देते है। नेहरू के दृष्टिकोण में इस आत्म–अनुशासन की जड़े हमारी प्राचीन भारतीय परम्पराओं में विद्यमान रही है। जिसे धर्म (आचरण के नियमों का संग्रह) कहा गया। प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत व सामाजिक कर्तव्य निर्धारित किये गए थे। नेहरू ने गांधी से प्राप्त सहिष्णुता व शान्तिपूर्ण साधनों की शिक्षा को पूर्णतः स्वीकार किया है।

नेहरू ने भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप ही लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली को अपनाया है। उनके अनुसार भारत एक अलौकिक राष्ट्र है, जहाँ विविध भाषाओं, धर्मो, संस्कृतियों, प्राकृतिक विषमताओं, रंग–रूप इत्यादि से जुड़े हुए लोग रहते है। अर्थात् हमारा देश 'विविधता में एकता' को संजोए हुए है। परन्तु इसके सामने आज स्ततंत्रता, समानता, न्याय, पंथनिरपेक्षता, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद, आतंकवाद, नक्सलवाद, अलगाववाद जैसी अनेक चुनौतियाँ है जिनका समाधान इस प्रणाली द्वारा ही किया जा सकता है। इनका वास्तविक हल सहिष्णुता, आत्मानुशासन, समावेशी विकास, जनसहभागिता से ही संभव है केवल जूमलो से नहीं। नेहरू के बाद आने वाल प्रतिनिधियों ने उनके आदर्शों, मूल्यो, मानको को पतित कर दिया है। उनकी एक इच्छा थी, एक कल्पना थी और एक सपना था और एक विजन था– एक ऐसे भारत का निर्माण करना, जो सबके लिए स्वतंत्रता और सबके लिए अवसर की समता की नींव पर आधारित हो। यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम लोकतांत्रिक व्यवस्था की गरिमा को बनाये रखे और उचित रूप से कार्य करने की प्रेरणा देते रहे। जैसा कि राजनीतिक सिद्धान्तकार सुनील खिलनानी लिखते है कि–''भारतीय इतिहास में सन् 1947 से लेकर अब तक का समय लोकतंत्र नाम के एक राजनीतिक विचार को साहसपूर्वक आगे बढ़ाते रहने का समय है।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *काश्यप, सुभाष, ''हमारी संसद'', नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, दिल्ली, 2005, पृ. 01*
2. *अप्पादौराई, ए.,''दि सबस्टेन्स ऑफ पॉलिटिक्स'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2015, पृ. 137*
3. *नेहरू, जे.एल., ''कोटेशन ऑफ नेहरू'', ऑन लाईन वेब असेस्ड 28 जून, 2015, यू.आर.एल. : डब्ल्यू.डब्ल्यू. डब्ल्यू. नेहरू*
4. *स्मिथ, डोनाल्ड युजेन, ''नेहरू एण्ड डेमोक्रेसी'', ओरियण्ट लोंगमैन्स प्रा.लि., कोलकत्ता, 1958, पृ. 43*
5. *वही, पृ. 43–44*
6. *वही, पृ. 44*
7. *वही, 49–50*
8. *मोरर्का, आर.आर.,''द फादर ऑफ पार्लियामेण्टरी डेमोक्रेसी इन इण्डिया'', काश्यप, सुभाष (सम्पादित), ''नेहरू एण्ड पार्लियामेण्ट'', लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1986, पृ. 50–53*
9. *स्पीयर, परसिवल, ''नेहरू'', मॉडर्न एशियन स्टडीज वाल्यूम 1, नं.1, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967, पृ. 21*
10. *नेहरू, जवाहरलाल, ''विश्व इतिहास की झलक भाग–2, (अनु.), सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 667*
11. *स्वीयट, पर्लिवल, ''नेहरू'', मॉडर्न एशियन स्टडीज, वॉल्यूम–1, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967, पृ. 19*
12. *मोरर्का, आर.आर., ''द फादर ऑफ पार्लियामेण्टरी डेमोक्रेसी इन इण्डिया'', काश्यप, सुभाष (सम्पादित), ''नेहरू एण्ड पार्लियामेण्ट, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1986, पृ. 51–53*
13. *मोरर्का, आर.आर., ''द फादर ऑफ पार्लियामेण्टरी डेमोक्रेसी इन इण्डिया'', काश्यप, सुभाष (सम्पादित), ''नेहरू एण्ड पार्लियामेण्ट, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1986, पृ. 51–53*
14. *स्मिथ, डोनाल्ड युजेन, ''नेहरू एण्ड डेमोक्रेसी'', ओरियण्ट लोंगमैन्स प्रा.लि., कोलकत्ता, 1958, पृ. 63–65*
15. *स्मिथ, डोनाल्ड युजेन, ''नेहरू एण्ड डेमोक्रेसी'', ओरियण्ट लोंगमैन्स प्रा.लि., कोलकत्ता, 1958, पृ. 64*

16. नेहरू, जवाहरलाल, ''हिन्दुस्तान की कहानी'' (अनु. सम्पादक रामचन्द्र टण्डन), सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 651

17. स्मिथ, डोनाल्ड युजेन, ''नेहरू एण्ड डेमोक्रेसी'', ओरियण्ट लोंगमैन्स प्रा.लि., कोलकत्ता, 1958, पृ. 62–65

18. राधाकृष्णन, एस. ''ऑन नेहरू'', पब्लिकेशन डिवीजन, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1964, पृ. 62

19. गुहा, रामचन्द्र (अनु. सुशांत), ''भारत नेहरू के बाद'', पेंगुइन बुक्स इण्डिया प्रा.लि., हरियाणा, 2012, पृ. (प्रस्तावना में) पृ. 22–23

जैन धर्म/दर्शन में अष्टांग योग

डॉ. पुनीत कुमार मिश्र
योग एवं प्राकृतिक चिकित्सक
पं.श्रीराम शर्मा आचार्य पारमार्थिक चिकित्सालय, गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

इक्कीसवीं सदी में योग सर्वजनीन् हो गया है। योग का अभ्यास और साधना मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करते हुए उसको मनुष्यत्व के भाव में प्रतिष्ठित करती है। योग जीवन जीने की कला पद्धति है, शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक रूप से स्वस्थ रहने का विज्ञान है और परमतत्त्व को साक्षात् करने का दर्शन है। योग साधना की प्रारम्भिक श्रेणी यम-नियम है और यम-नियम के विविध अंगों की साधना करने पर उनके अपने व्यवहार और आचरण में प्रतिष्ठित होने पर लिंग शरीर (सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर) शोधित होकर सुसंस्कारित बनता है अर्थात्- सुसंस्कारित जीवन मनुष्य के व्यक्तित्व को आध्यात्मिकता प्रदान करते हुए समाधि तक का मार्ग प्रशस्त कर मोक्ष की प्राप्ति कराता है जो मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है। यम-नियम के अंगों का पालन करने पर मनुष्य सामाजिक रूप से स्वस्थ रहता है। भगवान् महावीर और मुनि पंतजलि का पूरे विश्व को योग-साधना के रूप में यौगिक जीवन शैली एक अजस्त्र अनुदान के रूप में है।

संकेताक्षरः *अष्टांग योग, यौगिक जीवन शैली, जैन धर्म/दर्शन, योगसूत्र।*

जैन दर्शन एक प्राचीन भारतीय दर्शन है। यह विचारधारा लगभग छठी शताब्दी ई.पू. में भगवान् महावीर के द्वारा पुनरावर्तित हुई। जैन दर्शन में अहिंसा को सर्वोच्च स्थान देते हुये तीर्थंकरों के उपदेशों का दृढ़ता से पालन करने का विधान बताया गया है। इस तरह की विचारधारा मानवतावादी, सामाजिक समरसता और नैतिकता पूर्ण है। मूल रूप से जैनमत भगवान् महावीर के उपदेशों पर ही आधारित है[1]। 'सत्य' का अनुसंधान करने वाले जैन शब्द की व्युत्पति 'जिन' से मानी गई है जिसका अर्थ होता है- विजेता, अर्थात्- वह व्यक्ति जिसने अपनी समस्त इच्छाओं एवं मन पर विजय प्राप्त करके हमेशा के लिये संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर ली है, वह जिन कहलाता है। इन्हीं जिनों के उपदेशों को मानने वाले 'जैन' तथा उनके साम्प्रदायिक सिद्धान्त जैन दर्शन के रूप में विकसित हुये। जैन दर्शन अद्वैत दर्शन भी कहलाता है। जैन दर्शन निवृत्ति प्रधान दर्शन है और योग साधना भी निवृत्ति प्रधान है। अमन, मौन और शरीर का स्थिर होना निवृत्ति साधना के अन्तर्गत है। निवृत्ति का आधार है- अनासक्ति[2]। जैन दर्शन आत्मतत्त्व को मानता है और आत्म साक्षात्कार के लिये सबसे सरल, सहज, सुगम और व्यावहारिक साधन है- योग। योग-साधना के लिये अनासक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानने के लिये योग साधना के विविध अंगों का विशद् वर्णन जैन ग्रन्थों में मिलता है।

जैन/धर्म दर्शन में अष्टांग योग

1.यम- जैन दर्शन में भगवान् महावीर ने जो पांच महाव्रत बताये हैं, उनको योग दर्शन में मुनि पतंजलि ने भी महाव्रत के रूप में परिभाषित किया है। यम में पाँच अंग हैं-1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अस्तेय, 4. ब्रह्मचर्य, 5. अपरिग्रह।

1.अहिंसा- अहिंसा जैन धर्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, आधारभूत नैतिक गुण है। जिसका शाब्दिक अर्थ है-'अवध'[3]। मुनि

पतंजलि अहिंसा महाव्रत के पालन का परिणाम कहते हैं–'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः'[4] अर्थात्–अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर सभी जीवों में प्रेमभाव लक्षित होता है। अहिंसा अणुव्रत को स्थिर करने के लिये पाँच भावनाओं का पालन करना आवश्यक है[5]– 1.वचन मुक्ति 2.मनोगुप्ति 3.ईया समिति 4.आगम निक्षेपण समिति 5. आलोकित पान भोजन।

2.सत्य– सत्य मुख्य रूप से हमारे वचन की पवित्रता से सम्बन्धित है। सत्य का अर्थ है–जो वस्तु जिस रूप में है उसे उसी रूप में ठीक–ठीक तरह से व्यक्त करना। योगसूत्र के अनुसार– सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्[6] अर्थात्– सत्य की प्रतिष्ठा होने पर क्रिया फल के आश्रय का भाव आ जाता है। जैन दर्शन में सत्य के लिये सूनृत[7] शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ है– जो सबका हितकारी है, जो सबका प्रिय हो। सत्याणु व्रत को स्थिर करने के लिये व्रत की भावनाओं का पालन करना आव यक है– क्रोध, लोभ, भय, हँसी–दिल्लगी का त्याग और हित–मित वचन बोलना[8]।

आचार कुंदकुंद नियमसार में सत्य को इस तरह बताते हैं–

रागेण वा द्वेषेण वा मोहेन वा मृशाभाषा परिणामः।

यः प्रजहाति साधुः सदा द्वितीय व्रतं भवति तस्यै[9]।।

अर्थात्– राग, द्वेष और मोह के कारण किये जाने वाले, असत्य भाषण को जो छोड़ता है, वही इस दूसरे व्रत का व्रती है।

3.अस्तेय– जैन धर्म में मन से भी दूसरों की निजी वस्तु/सम्पत्ति को हड़पने के भाव का दृढ़ त्याग होना चाहिये, ऐसा बताया गया है। आचार्य कुंदकुंद के अनुसार–

ग्रामे वा नगरे वा sरण्ये वा प्रेक्षयित्वा परमर्थम्।

यो मुंचति ग्रहणं भावं तृतीय व्रतं भवित सत्यैव[10]।।

अर्थात्– जो पुरुष ग्राम में, नगर में या वन में पराई वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने के भाव का त्याग करता है, वही वास्तव में इस तीसरे व्रत का व्रती होता है। अचौर्य अणुव्रत की भावनाओं में शून्यागार, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्य शुद्धि एवं साधर्मा विसंवाद की भावना करनी चाहिये[11]। योगसूत्र के अनुसार– अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्[12]। अर्थात् चोरी के अभाव के भाव की दृढ़ स्थिति होने पर पृथ्वी के सभी रत्नों का बोध हो जाता है।

4.ब्रह्मचर्य– ब्रह्मचर्य का अर्थ– समस्त वासनाओं का पूर्ण रूप से परित्याग करना[13]। स्त्रियों के विषय में राग उत्पन्न करने वाली कथा को न सुनना, स्त्रियों के मनोहर अंगों को न ताकना। पूर्व में भोगे हुये भोगों को स्मरण न करना। कामोद्दीपन करने वाले रसों को न लेना। अपने शरीर को इत्र–तैल आदि से न सजाना। ये सभी ब्रह्मचर्य व्रत की भावनायें हैं[14]। योगसूत्र के अनुसार– ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः[15] अर्थात्– ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर पराक्रम तथा सामर्थ्य प्राप्त होने लगता है।

5.अपरिग्रह– अपरिग्रह का अर्थ है–किसी भी वस्तु पर आसक्त होकर उसके अनावश्यक संग्रह का त्याग। सच्चा अपरिग्रही तो वही है–जिसके पास कुछ भी नहीं है और जो किसी भी वस्तु की मन से इच्छा भी नहीं करता है[16]। पंच इन्द्रियों के इष्ट विषयों में राग नहीं करना और अनि विषयों से द्वेश न करना अपरिग्रह व्रत की भावनायें हैं[17]। योगसूत्र के अनुसार– अपरिग्रह का पालन करने से पूर्वजन्म का बोध होने लगता है[18]।

2नियम– जैन धर्म में वर्णित धर्म के 10 लक्षणों में से कुछ लक्षण योग दर्शन के नियम अंग से मिलते हैं।

1.शौच– जैन धर्म में शरीर तथा आत्मा की शुद्धि शौच के अन्तर्गत है। मानसिक शौच के अन्तर्गत लोभ का अत्यंत अभाव शौच है[19]। मुनि पतंजलि के अनुसार– शौचात्स्वांगजुगुप्सापरैरसंसर्गः[20]। अर्थात्– शौच से अपने अंगों में जुगुप्सा का भाव तथा दूसरे से संसर्ग करने की इच्छा न होना। आगे मानसिक शौच के बारे में मुनि पतंजलि कहते हैं– सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्म दर्शन योग्यत्वानिश्च[21]

2.तप– जैन धर्म में तप को मोक्ष का साधन बताया है, तप का विशद् वर्णन जैन धर्म में मिलता है। जैन धर्म में 12 प्रकार के तपों का वर्णन मिलता है जिसमें 6 बाह्य और 6 आभ्यन्तर प्रकार के तप हैं।

तप के भेद–

1.बाह्य तप– इन तपों का पता अन्य दूसरे लोगों को भी लग जाता है। इसीलिये इन्हें बाह्य तप कहते हैं। यह 6 प्रकार के हैं।1.अनशन तप 2. अवमौदर्यतप 3. वृत्तिपरिसंख्यान तप 4. रस परित्यागतप 5. विविक्तशय्यासन तप 6. काय क्लेश तप

2. अन्तरंग तप– जो तप मन को वश में करने के लिये किये जाते हैं। उनको अंतरंग तप कहते हैं। यह भी 6 प्रकार के होते हैं।

1.प्रायश्चित तप 2. विनय तप 3. वैयावृत्य तप 4. स्वाध्याय तप 5. व्युत्सर्ग तप 6. ध्यान तप

जैन धर्म में मन को वशीभूत करने हेतु तप का आचरण बताया गया है। मुनि पतंजलि ने भी शरीर तथा इन्द्रियों के मल को दूर करने के साधन को तप बताया। शरीर तथा

इन्द्रियों की निर्मलता से मन, स्थिर होता है। पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थ सिद्धि में कहा है कि जो कर्मों के क्षय के लिये तपा जाये, वह तप है[22]।

3.आकिंचन्य–इस अंग को योग दर्शन में वर्णित नियम[23] के अन्तर्गत संतोष के रूप में मानना चाहिये। किसी प्रकार की ममता का भाव न होना। अर्थात् संतुष्टि का भाव बना रहना ही आकिंचन्य है। योगसूत्र के अनुसार– संतोशादनुत्तम् सुखलाभः[24] अर्थात्–सभी प्रकार का उत्तम सुख संतोष ही है।

3. आसन– जैन दर्शन में कई प्रकार के आसनों का वर्णन मिलता है–आचार्य देव कायक्लेश को दूर करने के साधनों में सूर्याभिमुख योग, कुक्कुटासन, मकरासन तथा वीरासन बताते हैं[25]। श्री कुंदकुंद ने योगभक्ति की अंचलिका में कहा कि– वीरासन, कुक्कुटासन, उपवास और तप आदि योग से युक्त साधुओं की नित्य काल में अर्चन, पूजन, वंदन और नमस्कार करता हूँ[26]। मुनि पतंजलि के अनुसार– स्थिर सुखमासनम्[27] अर्थात्–शरीर की वह स्थिति जिसमें सुख का अनुभव हो और स्थिरता भी बनी रहे। वह आसन कहलाता है और वह आसनों के अभ्यास का परिणाम भी बताते हैं

–प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्[28] अर्थात्– आसन करते समय प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त में मन लगाने से आसन सिद्ध हो जाता है। ततोद्वन्द्वानभिघातः[29] अर्थात्– आसनों का सतत् व दीर्घकालिक अभ्यास करने पर द्वन्द्व सहन करने की क्षमता विकसित होने लगती है।

4.प्राणायाम– जैन दर्शन में प्राण और उनके प्रकारों का भी वर्णन मिलता है। अन्दर की वायु को बाहर निकालना उच्छ्वास या प्राण है और बाहर की वायु को अन्दर ले जाना निःश्वास या अपान है। प्राण और अपान की क्रिया से आत्मा का अस्तित्त्व ज्ञात होता है[30]। उच्छ्वास निःश्वास का एक प्राण होता है[31]। जैन साहित्य में स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण ये पाँच कर्म इन्द्रियाँ, मन, वचन, कार्य, वासोच्छ्वास और आयु ये 10 प्राण हैं[32]। ये प्राण आत्मा के साथ रहते हैं–आत्मा मूल तत्त्व है। प्राण और शरीर जड़ है और आत्मा चेतन तत्त्व है[33]। मुनि पतंजलि कहते हैं– तस्मिन्सति वासप्र वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः[34]। अर्थात्–उस आसन की सिद्धि होने पर वास और प्रश्वास की गति का रुक जाना 'प्राणायाम' है।

महर्षि पतंजलि ने चार प्रकार के प्राणायामों का वर्णन योग दर्शन में किया है[35]।

1.बाह्य वृत्ति प्राणायाम 2. आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम, 3. स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम, 4. केवल कुंभक

प्राणायाम का लाभ मुनि पतंजलि बताते हैं–ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्[36] अर्थात्–प्राणायाम के अभ्यास से जो प्रकाश के ऊपर आवरण है, वह क्षीण हो जाता है। आगे कहते हैं–धारणासु च योग्यता मनसः[37] अर्थात्– प्राणायाम के अभ्यास से मन में धारणा की योग्यता आ जाती है।

5.प्रत्याहार– जैन धर्म में धर्म के लक्षणों के अन्तर्गत बताया गया है कि इन्द्रियों के विषयों में राग का न होना इन्द्रिय संयम है[38]। इसे योगदर्शन में प्रत्याहार के अन्तर्गत समझना चाहिये। मुनि पतंजलि के अनुसार–स्वविशयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुसार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः[39]। अर्थात् अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर इन्द्रियों का जो चित्त के स्वरूप में तदाकार–सा हो जाना है, प्रत्याहार कहलाता है और प्रत्याहार का फल मुनि पतंजलि बताते हैं– ततः परमाव यतेइन्द्रियाणां[40] अर्थात्– प्रत्याहार सिद्ध होने पर इन्द्रियां परमवश में हो जाती हैं।

6.धारणा– आचार्य देव आत्मा के स्वरूप के बारे में बताते हैं कि आत्मा विभु तथा ज्ञान स्वरूप है[41]। आत्मा की तीन दशायें हैं–

1.बहिरात्मा दशा (त्यागने योग्य)– शरीर आदि को आत्मा मानना।

2.अंतरात्मा दशा (धारण करने योग्य)– मैं आत्मा हूँ इसके सिवाय कुछ नहीं।

3.परमात्म दशा (प्राप्त करने योग्य)– अन्तरात्म बुद्धि का बार–बार अभ्यास करने से परमात्म दशा प्राप्त हो जाती है[42]। अन्तरात्म दशा को योग सूत्र में धारणा के सन्दर्भ में जानना चाहिये। मुनि पतंजलि के अनुसार–देश बन्धि चित्तस्य धारणा[43] अर्थात् किसी एक देश विशेष में (शरीर के अन्दर/बाहर) चित्त को स्थिर करना धारणा है।

7.ध्यान– जैन धर्म में ध्यान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्यान का सतत् अभ्यास करने से निर्जरा शीघ्र होती है। भगवान् महावीर ध्यान का सतत् अभ्यास करते थे और ध्यान द्वारा ही वह सम्बोधि को प्राप्त हुये[44]। महावीर स्वामी मूलबन्ध आसन में भी ध्यान लगाते थे। मूलबन्ध हठयोग के अन्तर्गत है।

जैन धर्म में प्रेक्षा ध्यान का विशेष महत्त्व है। प्रेक्षाध्यान की मूल अवधारणा[45]।

1. **प्रेक्षा ध्यान का प्रेरक सूत्र है–सत्य की खोज स्वयं करो।**
2. **प्रेक्षा ध्यान का मूल मंत्र है–आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो।**

3. प्रेक्षा शब्द का अर्थ है–प्र (उपसर्ग)+ईश (धातु) अर्थात्–गहराई से देखना।

4. प्रेक्षा ध्यान का अभिप्राय है–स्वयं को इतनी गहराई से देखो कि अपने वास, शरीर, प्राण और संस्कारों के स्पन्दनों को देख सको।

5. प्रेक्षाध्यान का उद्देश्य है–चित्त की निर्मलता, आधि–व्याधि और उपाधि से परे समाधि की अवस्था का वरण।

6. प्रेक्षा ध्यान का परिणाम है–चैतन्य केन्द्रों का जाग्रत होना।

प्रेक्षा शब्द के अतिरिक्त जैन धर्म में अनुप्रेक्षा शब्द का भी बड़ा महत्त्व है। अनुप्रेक्षा का शाब्दिक अर्थ है–पुनःपुनः चिन्तन करना, विचार करना[46]।

अनुप्रेक्षा चिन्तनात्मक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत ध्यान में जो अनुभव किया जाता है। उसके परिणामों पर विचार करना अनुप्रेक्षा है[47]। ध्यान की परिसम्पन्नता के पश्चात् मन की मूर्च्छा को तोड़ने वाले विषयों का अनुचिन्तन करना अनुप्रेक्षा है[48]। आचार्य देव सोऽहं ध्यान के बारे में बताते हैं जो साधक जिन मुद्रा तथा वैराग्य का सहारा लेकर पर्वत की गुफाओं, कंदराओं में निवास करते हुये परमानंद स्वरूप, निर्विकार, निरामय, स्वस्थ निज शुद्धात्म का ध्यान करते हैं, उनको निश्चय प्रत्याख्यान होता है[49]। आचार्य देव कहते हैं कि परम समाधि को प्राप्त करने का साधन निर्विकल्प ध्यान है[50]। मुनि पतंजलि के अनुसार– तत्रप्रत्यैकतानताध्यानम्[51] अर्थात्–जहाँ चित्त को लगाया जाये उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है। भगवान् ऋषभदेव भी संकल्प–विकल्प से रहित होकर ध्यान करते थे। फाल्गुन श्ण एकादशी को उत्तारषाढ़ा नक्षत्र में भगवान् को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ[52]।

8.समाधि– आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि जो वीतराग भाव से आत्मा का ध्यान करते हैं–उन्हीं मुनि को परम समाधि होती है[53]। स्वात्मध्यान से परम समाधि सिद्ध होती है[54] तथा जो मुनि निर्विकल्प भाव से आत्मा का ध्यान करते हैं उनको कायोत्सर्ग होता है[55]। मुनि पतंजलि निर्बीज समाधि की बात करते हैं कि तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः[56]। जो साधु मुनि आत्मा का ध्यान करते हैं और भक्तियोग से युक्त हैं–उनको ही ध्यान योग द्वारा परम समाधि की सिद्धि होती है[57]। जैन धर्म/दर्शन निर्विकल्प ध्यान को निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति का साधन बताता है[58]। इस तरह जैन धर्म/दर्शन में वर्णित अष्टांग योग के सभी अंग पातंजल योग सूत्र से प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भारतीय दर्शन, शोभा निगम, पृ. 75*
2. *प्रेक्षा ध्यान (त्रैमासिक पत्रिका) अक्टूबर 2014, पृ. 17*
3. *भारतीय दर्शन, शोभा निगम, पृ. 92*
4. *योगसूत्र, 2/35*
5. *तत्त्वार्थ सूत्र, 7/4*
6. *योगसूत्र, 2/36*
7. *भारतीय दर्शन, शोभा निगम, पृ. 92*
8. *तत्त्वार्थ सूत्र, 7/5*
9. *नियमसार, 57*
10. *नियमसार, 58*
11. *तत्त्वार्थ सूत्र, 7/6*
12. *योगसूत्र, 2/37*
13. *योग महाविज्ञान, ब्रह्मचारी, पृ. 171*
14. *तत्त्वार्थ सूत्र, 7/7*
15. *योगसूत्र, 2/38*
16. *भारतीय दर्शन, शोभानिगम, पृ. 93*
17. *तत्त्वार्थ सूत्र, 7/8*
18. *योगदर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृ. 59*
19. *तत्त्वार्थ सूत्र, 9/6*
20. *योगसूत्र, 2/40*
21. *योगसूत्र, 2/41*
22. *जैन धर्म एवं संस्कृति, पृ. 83*
23. *योगसूत्र, 2/32*
24. *योगसूत्र, 2/42*
25. *नियमसार प्राभृत, पृ. 283*
26. *नियमसार प्राभृत, पृ. 315*
27. *योगसूत्र, 2/46*
28. *योगसूत्र, 2/47*
29. *योगसूत्र, 2/48*
30. *तत्त्वार्थ सूत्र, पृ. 128*
31. *हरिवंश पुराण, 7/19*
32. *जैन धर्म का प्राचीन इतिहास (भाग–1), पृ. 2*
33. *जैन धर्म का प्राचीन इतिहास (भाग–1), पृ. 2*
34. *योगसूत्र, 2/49*
35. *योग दर्शन, जयदयाल गोयन्दका, पृ. 64–66*
36. *योगसूत्र, 2/52*

37. योगसूत्र, 2/53
38. तत्त्वार्थ सूत्र, 9/6
39. योगसूत्र, 2/54
40. योगसूत्र, 2/55
41. आत्म प्रसिद्धि, पृ. 118
42. आत्म प्रसिद्धि, पृ. 119
43. योगसूत्र, 3/1
44. आर्हती दृष्टि, पृ. 65
45. जैन विद्या और विज्ञान, पृ. 246–247
46. आर्हती दृष्टि, पृ. 63
47. आर्हती दृष्टि, पृ. 63
48. अमूर्त चिन्तन, पृ. 1
49. नियमसार प्राभृत, निश्चय प्रत्याख्यानाधिकार, पृ. 96
50. नियमसार प्राभृत, परमसमाधि अधिकार, पृ. 128
51. योगसूत्र, 3/2
52. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास (भाग–1), पृ. 57
53. नियमसार प्राभृत, परम समाधि अधिकार, पृ. 122
54. नियमसार प्राभृत परम समाधि अधिकार, पृ. 277
55. नियमसार प्राभृत, शुद्ध निश्चय प्रायश्चित्ताधिकार, पृ. 121
56. योगदर्शन, 1/51
57. नियमसार प्राभृत, शुद्ध निश्चय प्रायश्चित्ताधिकार, पृ. 314
58. नियमसार प्राभृत, पृ. 321

राजस्थान में मनरेगा के अन्तर्गत सामाजिक अंकेक्षण की भूमिका

कृष्णकांत मीना
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना की शुरुआत के पीछे मकसद था कि इससे गरीब और साधनहीन ग्रामीण परिवारों को साल में कम से कम सौ दिन का रोजगार उपलब्ध करा कर उनकी जीवन यापन संबंधी मुश्किलों को कुछ कम किया जाए। मगर ठेकेदारों और बिचौलियों के चलते यह योजना अपने लक्ष्य से काफी पीछे चलती रही। फर्जी कागजात के जरिए गरीबी रेखा से ऊपर के लोगों को भी इस योजना का लाभ पहुंचाने, मजदूरी के भुगतान में देरी और धोखाधड़ी की शिकायतें आम हो गई। इन्हें देखते हुए वर्तमान केन्द्र सरकार ने अपने पहले बजट में ही संकेत दे दिया था कि वह मनरेगा के स्वरूप में बदलाव कर उसे अधिक व्यावहारिक और पारदर्शी बनाने का प्रयास करेगी।

संकेताक्षरः *सामाजिक अंकक्षेण मनरेगा, मजदूर, भुगतान, औसत व्यय।*

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम एक अति महत्वपूर्ण सामाजिक सुरक्षा कानून है जो मांग पर रोजगार के अधिकार का प्रतीक है इसका लक्ष्य प्रत्येक घर को एक वर्ष में कम से कम 100 दिन की गांरटीयुक्त मजदूरी उपलब्ध कराकर ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका सुरक्षा को बढाना है। मनरेगा में, पहले के अन्य रोजगार सृजन कार्यक्रमों के विपरीत अधिकार आधारित ढांचा है। इसकी मांग आधारित पात्रता मौलिक अधिकार सम्मान के साथ जीवन से संबंधित है जो इसे सरकारी अनुदान पर आधारित अन्य सशर्त नकद हस्तांतरणों तथा सामाजिक सुरक्षा जाल से अलग करती है। इस अधिनियम का मौलिक उद्देश्य उन प्रत्येक घरों को जिनके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करना चाहते है, एक वित्त वर्ष में कम से कम 100 दिनों की गांरटीयुक्त मजदूरी उपलब्ध कराकर ग्रामीण क्षेत्रों की आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। इसका दोहरा लाभ है, कार्य साधनों से रोजगार एवं उत्पादक परिसंपत्ति सृजित होने के कारण इसका दोहरा लाभ है। कार्यान्वयन प्रक्रिया का लक्ष्य विकेन्द्रीकृत प्रजातांत्रिक शासन को मजबूत करना, समता बढ़ाना एवं ग्रामीण समुदाय को सशक्त बनाना है। पारदर्शिता एवं सामाजिक जवाबदेयता इस अधिनियम के कार्यान्वयन का मूल तत्व है क्योंकि ग्रामीण सामाजिक संरचना में भेदभाव गरीब एवं हाशिए पर रहे लोगों को अधिकार को कम करते है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम की सफलता इस अधिनियम के तहत ग्रामीण क्षेत्रों के श्रमिकों को अपना हक प्राप्त करने तथा इस योजना के तहत प्रदत्त संसाधनों का लाभ लेकर अन्य कार्यक्रमों के जरिये विकास अवसरों को प्राप्त करने में सक्षम बनाने पर निर्भर करती है ताकि मजदूरी से निरंतर आजीविका को प्राप्त किया जा सके।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम को संसद द्वारा पारित कर 7 सितम्बर, 2005 को अधिसूचित किया गया तथा इसका प्रारम्भिक चरण देश के 200 जिलों में 2 फरवरी, 2006 से लागू किया गया। द्वितीय चरण में देश के 130 जिलों को 2 मई, 2007 से सम्मिलित किया गया और अन्तिम चरण में 1 अप्रेल, 2008 से इसे सम्पूर्ण भारत में लागू कर दिया गया । इसका नाम 2 अक्टूबर, 2009 में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना (मनरेगा) कर दिया गया। राजस्थान में नरेगा के प्रारम्भिक चरण में देश के 200 जिलों में से 6 जिलों का चयन किया गया जिनमें बांसवाड़ा, डूंगरपुर, झालावाड़, करौली, सिरोही एवं उदयपुर हैं। द्वितीय चरण में 6 अन्य जिलों में सवाईमाधोपुर, टोंक, बाड़मेर, चितौडगढ़,

जैसलमेर एवं जालौर तथा 1 अप्रैल 2008 से यह राज्य के सभी जिलों में लागू कर दी गई है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम, एक ऐसा कानून है जिसमें मजदूरी रोजगार गांरटी दी गई है। अधिनियम का प्रारम्भिक उद्देश्य मजदूरी रोजगार बढ़ाना है, वहीं इसका सहायक उद्देश्य मजदूरी रोजगार के माध्यम से प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन को सुदृढ़ करना है जिसके माध्यम से सूखे वनों की कटाई तथा मृदा क्षरण जैसे समस्याओं को दूर करना तथा स्थायी विकास को बढ़ावा देना है। यह कानून रोजगार के अधिकार को साकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस कानून के माध्यम से ग्रामीण इलाकों में आर्थिक और सामाजिक बुनियादी ढांचा विकसित किया जाएगा, जिससे लोगों को रोजगार के नियमित अवसर मिलेंगे। साथ, ही मजदूरों के पलायन पर रोक व महिलाओं का सशक्तिकरण भी होगा।

महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार योजना (मनरेगा) के तहत रोजगार देने में राजस्थान पूरे देश में प्रथम स्थान पर हैं। यहां मनरेगा में हर रोज 15 लाख 52 हजार 932 लोगों को रोजगार दिया जा रहा है। मनरेगा में रोजगार देने में तमिलनाडु दूसरे नंबर पर और आंध्र प्रदेश तीसरे नंबर पर है। वहीं प. बंगाल चौथे नंबर पर है। राजस्थान में वित्त वर्ष 2016–2017 में मनरेगा पर 4250 करोड़ रुपए खर्च किए गए हैं। इसमें से 3600 करोड़ रुपये केंद्र सरकार की तरफ से जबकि 650 करोड़ रुपए राज्य सरकार की तरफ से खर्च हुए हैं।

क्र. सं	विवरण	2014–15	2015–16	2016–17	2017–18
1	जॉबकार्ड धारी परिवारों की संख्या (लाखो में)	98.46	99.36	95.24	94.59
2	कार्य पर नियोजित परिवारों की संख्या (लाखो में)	36.87	42.21	46.35	36.28
3	कुल सृजित मानव दिवस (लाखो में)	1686.19	2341.34	2596.84	1440.43
	अनुसूचित जाति द्वारा सृजित (लाखो में)	332.34	487.84	537.56	295.7
	अनुसूचित जनजाति द्वारा सृजित मानव दिवस (लाखो में)	444.95	566.04	579.36	346.58
	महिलाएं द्वारा सृजित मानव दिवस (लाखो में	1150.97	1616.06	1740.61	933.71
4	100 दिवस पूरे करने वाले परिवारों की संख्या (लाखो में)	2.81	4.69	4.27	13302
5	औसत रोजगार दिवस (प्रति परिवार)	46	55	56	39
6	व्यय राशि (रुपये करोडो में)	3252	3268.53	5152.21	3259.92
7	औसत श्रमिक दर रुपये प्रति मानव दिवस	115	120	126	141
8	औसत व्यय प्रति जिला (रुपये करोडो में)	98.55	99.04	156.13	98.79
9	औसत व्यय प्रति पंचायत समिति (रुपये करोडो में)	13.11	11.08	17.47	11.05
10	औसत व्यय प्रति ग्राम पंचायत (रुपये लाखो में)	35.44	33.04	52.07	32.95
11	औसत व्यय रुपये प्रति मानव दिवस	193	140	190	226

प्रदेश में नरेगा में सबसे ज्यादा बाड़मेर में रोजगार दिया गया है। यहां हर रोज 1 लाख 37 हजार 81 लोगों को मनरेगा के तहत नियोजित किया गया है। वहीं दूसरे नंबर पर भीलवाड़ा है जहां 1 लाख 7 हजार 926 मजदूरों को रोजगार प्रतिदिन दिया जा रहा है। तीसरे स्थान पर डूंगरपुर है जहां 1 लाख 7 हजार 910 मजदूरों मनरेगा में रोजगार दिया जा रहा है। वहीं अजमेर में प्रतिदिन 1 लाख 4 हजार 155 लोगों को मनरेगा के तहत रोजगार उपलब्ध कराया जा रहा है। मनरेगा के आयुक्त देवाशीष पुष्टि के मुताबिक मनरेगा में मांग आधारित कार्य में कोई कमी नहीं आने दी जा रही है साथ ही बजट में कोई कमी नहीं है। उन्होंने बताया कि मजदूरी सीधे खातों में आनलाइन दी जा रही है। केंद्र सरकार ने वित्तीय वर्ष 2017–2018 के लिए मनरेगा के लिए 48000 करोड़ के बजट का प्रावधान रखा है। जबकि वित्तीय वर्ष 2016–17 के लिए इस योजना में 38500 करोड़

रुपए रखे गए थे। हालांकि संशोधित प्रावधानों में इस राशि को भी बढ़ाकर 42000 करोड़ रुपए किया गया है।

मनरेगा के उद्देश्य

अधिकतर गाँवों में कृषि कार्यों के अतिरिक्त अन्य रोजगार के साधन सीमित मात्रा में ही उपलब्ध है, जिसके कारण या तो रोजगार की तलाश में जरूरतमंद श्रमिकों को गांव से पलायन कर शहर की ओर जाना पड़ता है, या फिर गांवों में बेकारी का सामना करना पड़ता है। गांवों में रोजगार उपलब्ध नहीं होने से शहर की ओर पलायन करने के फलस्वरूप उसे प्राप्त होने वाली आय का एक भाग आने जाने अथवा शहर में अस्थाई ठहरने की व्यवस्थ पर व्यय करना पड़ता है, इससे परिवार को आय का कम भाग मिल पाता है। इसी समस्या को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार द्वारा यह अधिनियम जारी किया गया। जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण इलाकों में लोगों की आजीविका सुरक्षा को मजबूत करने के लिए गांव के प्रत्येक ऐसे परिवार को जिसके सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार हो, को एक वित्तीय वर्ष में 100 दिवस का निश्चित रोजगार अपने ही गांव में उपलब्ध कराना है। इसके अतिरिक्त उत्पादक, सपंदाओं का निर्माण पर्यावरण की रक्षा, ग्रामीण महिलाओं का सशक्तिकरण, गाँवों से शहरों की ओर होने वाले पलायन पर अकुश लगाना एवं सामाजिक समानता सुनिश्चित कराना भी इस योजना का उद्देश्य है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के अन्तर्गत करवाये जाने वाले कार्य एवं योजनाएँ

महात्मा गांधी नरेगा योजनान्तर्गत अधिनियम में वर्णित अनुमत कार्य ही कराए जा सकते है। योजनान्तर्गत भूमि विकास, जल, संरक्षण, पर्यावरण सुरक्षा पर अधिक जोर दिया गया है एवं कार्यो की प्राथमिकता निर्धारित की गई है। योजनान्तर्गत कार्य निम्नानुसार है–

- जल संरक्षण और जल शस्य संचय, जिसके अन्तर्गत कन्टूर खाईयाँ, कन्टूर बाँध, गोलष्य चेक, गबियन संरचनाए, भूमिगत नहरें, मिट्टी के बांध, स्टॉप बांध और झरनों का विकास भी है।
- सूखारोधी, जिसके अंतर्गत वनरोपण और वृक्षारोपण, सिंचाई नहरें, जिसके अंतर्गत सूक्ष्म और लघु सिंचाई संकर्म भी है।
- अनुसूचित जाति/जनजाति/गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले गृहस्थियों के स्वामित्वाधीन भूमि का सिंचाई सुविधा, फार्म पर खोदा गया पोखर, बागवानी, वृक्षारोपण, मेढबंधन और भूमि विकास का उपबंध।
- पारम्परिक जल निकायों का नवीकरण, जिसके अंतर्गत तालाबों की सफाई एवं भूमि विकास।
- जलरूद्ध क्षेत्रों में जल निकास सहित बाढ़ नियंत्रण और नियंत्रण और संरक्षण संकर्म, जिसके अंतर्गत बाढ़ नियंत्रण नालियों को गहरा करना और उनकी मरम्मत करना, और नवीकरण तृतीय संरक्षण के लिए विप्लव जल नालियों का सनिर्माण।
- सभी मौसमों में पहुँच को उपलब्ध करने के लिए ग्रामीण संयोजकता, जिसके अंतर्गत गांव के भीतर, जहां कही आवश्यक हो, पुलिया और सड़के भी है।
- ब्लॉक स्तर पर ज्ञान संसाधन केन्द्र के रूप में और ग्राम पंचायत स्तर पर ग्राम पंचायत भवन के रूप में भारत निर्माण राजीव गांधी सेवा केन्द्र का निर्माण, एनएडीपी कंपोस्टिंग, वर्मी कंपोस्टिंग, लिक्विड बायो–मेन्योर जैसे कृषि सम्बन्धी कार्य, सार्वजनिक भूमि पर मौसमी जल निकायों में मत्स्य पालन जैसे मत्स्य संबंधी कार्य।

मनरेगा में सामाजिक अंकेक्षण

राज्य में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना फरवरी, 2006 से 6 जिलों –बांसवाड़ा, डूंगरपुर, झालावाड़, करौली, सिरोही एवं उदयपुर में तथा अप्रैल 2007 से 6 अन्य जिलों – बाड़मेर, चित्तौडगढ़, जैसलमेर, जालौर, सवाईमाधोपुर एवं टोंक तथा वित्तीय वर्ष 2008–9 से राज्य के शेष 21 जिलों को सम्मिलित करते हुए समस्त राज्य में संचालित की जा रहीं है। यह योजना, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम, 2005, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी स्कीमों की लेखा परीक्षा नियम, 2011, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा योजना के क्रियान्वयन के लिए जारी ऑपरेशनल गाईडलाइन, भारत सरकार तथा राज्य सरकार द्वारा समय–समय पर जारी निर्देश, राजस्थान सरकार के सामान्य वित्तीय एवं लेखा नियम, राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 तथा राजस्थान पंचायती राज नियम, 1996 के प्रावधानों तथा विभिन्न कार्यकारी एजेन्सियों के विभागीय निर्देशों के अनुसार संचालित की जा रही है।

प्रधानमंत्री आवास योजना का हर छह माह में एक बार शत–प्रतिशत सामाजिक अंकेक्षण (सोश्यल ऑडिट) होगा। इसके साथ ही वर्ष 2011–12 से 2014–15 तक हुए सोश्यल ऑडिट अभियान में निकल गई राशि की वसूली कर लंबित प्रकरणों का निस्तारण करना होगा। ग्रामीण विकास विभाग के सचिव राजीव सिंह ठाकुर ने सभी जिला कलेक्टरों को इस संबंध में निर्देश जारी किए

हैं। जारी निर्देश में कहा कि सामाजिक अंकेक्षण में जांच दलों को ग्राम सभा की बैठक की तिथि से कम से कम 15 दिन पहले आवश्यक रिकार्ड उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है। बीआरपी की जिला ग्राम पंचायत स्तर पर प्रशिक्षण कार्यक्रम कराकर 15 दिन में सामाजिक अंकेक्षण दल को रिकार्ड उपलब्ध कराऐं। प्रत्येक सामाजिक अंकेक्षण ग्राम सभा में कलेक्टर प्रभारी अधिकारी को नियुक्तकर उपस्थिति सुनिश्चित किया जाए। उन्होंने निर्देश दिए कि सामाजिक अंकेक्षण दल को निर्माण कार्य का निर्माण स्थल पर जाकर भौतिक सत्यापन किया जाना आवश्यक होगा। सोश्यल ऑडिट के लिए ग्राम सभा की बैठक में ग्राम पंचायत का कोरम पूरा होना आवश्यक है। अगर कोरम पूरा नहीं है तो आगामी ग्राम सभा की बैठक करने की तिथि सुनिश्चित की जाए।

लेकिन सरकार ने स्वयंसेवी संस्थाओं के दबाव में मनरेगा जैसी योजनाओं में सामाजिक अंकेक्षण को लागू तो कर दिया मगर सरकारी कारिंदों की शह एवं अनदेखी के कारण क्षेत्र में सामाजिक अंकेक्षण अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पा रहा है। हालात ये है कि उपखण्ड क्षेत्र में सामाजिक अंकेक्षण का कार्य पूरा हुआ दो हफ्ते बीतने को है। अभी तक पंचायत प्रशासन ने आरोपी ग्राम पंचायतों को नोटिस तक जारी नहीं किए है। बस्सी पंचायत समिति क्षेत्र की ग्राम पंचायतों में मनरेगा के तहत हुए कार्यो के भौतिक सत्यापन एवं उनके सामाजिक अंकेक्षण के लिए 3 अगस्त से अंकेक्षण की प्रक्रिया शुरू की गई थी। इसका समापन इसी माह 7 सितम्बर को हुआ। इस अवधि में अंकेक्षण टीम के सदस्यों ने ग्राम पंचायतों में जाकर वहां हुई अनियमितताओं की जांच की और विस्तृत रिपोर्ट पंचायत समिति को दी। इन रिपोर्ट के आधार पर पंचायत समिति प्रशासन को संबंधित ग्राम पंचायतों से स्पष्टीकरण के बाद उनके खिलाफ कार्यवाही करनी थी। मगर हाल ये है कि पंचायत समिति प्रशासन ने अभी तक एक भी ग्राम पंचायत को नोटिस तक जारी नहीं किया। ऐसे में इस बात कि संभावना भी कम ही दिख रही है कि पंचायत समिति इन ग्राम पंचायतों के खिलाफ कोई कार्यवाही करने की इच्छुक भी है।

गोमियाप्रखंड कार्यालय में 22 से लेकर 28 अगस्त, 2017 तक चलने वाले मनरेगा एवं 14 वें वित्त आयोग के सामाजिक अंकेक्षण के पूर्व तैयारी को लेकर एक बैठक बीपीओ पारसनाथ महतो की अध्यक्षता में हुई। उन्होंने बताया कि अंकेक्षण दल गोमिया प्रखंड के आठ पंचायत बड़की चिदरी, बारीडारी, होसिर पश्चिमी, कथारा, लोधी, सरहचिया, ससबेड़ा पश्चिमी एवं तिलैया में चालू वित्त वर्ष 2016–17 के मनरेगा योजना एवं 14 वें वित्त आयोग द्वारा पूर्ण एवं अपूर्ण योजनाओं का अंकेक्षण होगा। वही अंकेक्षण टीम के डीआरपी मो परवेज खान ने बताया कि अंकेक्षण टीम इस दौरान संबंधित पंचायत के मुखिया, वार्ड सदस्य एवं आंगनबाड़ी सेविका के साथ घर घर सर्वेक्षण क्षेत्र भ्रमण एवं चल रही योजनाओं का निरीक्षण दस्तावेजों का मौखिक एवं भौतिक सत्यापन सहित अन्य कार्य संपादित करेंगे। मौके पर अंकेक्षण टीम के आनंद कुमार, मासूम अंसारी, विकास कुमार, आकाश कुमार, रुबी कुमारी, सुनील कुमार, गौतम, नरेश आदि उपस्थित थे।

मनरेगा में सामाजिक अंकेक्षण हेतु विधिक प्रावधान

धारा 15(5) कार्यक्रम अधिकारी के कार्यों में निम्नलिखित सम्मलित होगे – यह सुनिश्चित करना कि ग्राम सभा द्वारा ग्राम पंचायत की अधिकारिता के भीतर सभी कार्यों को नियमित सामाजिक अंकेक्षण किया जाये और यह भी कि सामाजिक अंकेक्षण में उठाए गए आक्षेपों पर अनुवर्ति कार्यवाही की जाये।

- धारा 17(1) ग्राम सभा, ग्राम पंचायत के भीतर कार्य के निष्पादन का मॉनीटर करेगी।
- धारा 17(2) ग्राम सभा, ग्राम पंचायत के भीतर आरम्भ की गई स्कीम के अधीन सभी परियोजनाओं का नियमित सामाजिक अंकेक्षण करेगी।
- धारा 17(3) ग्राम पंचायत, सभी सुसंगत दस्तावेज, जिनके अन्तर्गत मस्टर रोल, बिल वाउचर, माप, पुस्तिकाएँ, मंजूरी आदेशों की प्रतियाँ और अन्य संबंधित लेखा बहियाँ और कागज पत्र भी है, सामाजिक अंकेक्षण करने के प्रयोजन के लिए ग्राम सभा को उपलब्ध कराएगी।
- धारा 23(3) राज्य सरकार नियमों द्वारा, स्कीमों और स्कीमों के अधीन कार्यक्रमों के उचित निष्पादन के लिए और स्कीमों के कार्यान्वयन में सभी स्तरों पर पारदर्शिता और दायित्व सुनिश्चित करने के लिए की जाने वाली व्यवस्थाओं को अवधारित कर सकेगी।

मनरेगा कानून की वर्तमान में आवश्यकता

राजस्थान में मनरेगा से पहले के सूखे के दिनों को याद करें। सरकार ग्रामीणों को अकाल राहत कार्य खोलकर रोजगार देने का प्रयत्न करती थी। अकाल राहत योजना के तहत कम लोगों को काम मिल पाता था। अपना काम मस्टररोल में लिखवाने के लिए सरपंच के घर लोगों का तांता लगा रहता था। यह सरपंच की इच्छा पर निर्भर होता था कि वह किसका नाम लिखे अथवा नहीं लिखे। कई लोग अपना नाम दर्ज करवाने के एवज में पैसे भी देते थे।

जिनका नाम नहीं आता था और जो कमा पाने में सफल नहीं हो पाते थे, ऐसे आक्रोशित लोग कई बार रास्ते जाम कर देते थे। धरने प्रदर्शन और आन्दोलन किए जाते थे। लोगों को काम चाहिए होता था लेकिन काम नहीं मिलता था। मजदूरी अत्यंत कम 20 से 30 रूपये मिलती थी। लोगों को जमींदारों के यहां हाली के रूप में काम करने को मजबूर होना पड़ता था। मस्टररोल गोपनीयता के आवरण तले छिपे रहते थे। कई बार पूरे के पूरे मस्टररोल में फर्जी नाम दर्ज कर लिए जाते थे और लोगों के नाम पर भुगतान उठा लिया जाता था। श्रमिकों को न तो मस्टररोल देखने और न ही काम मांगने का हक था। मुठ्ठी भर लोगों को काम मिलता था। लोग काम से वंचित रह जाते थे। सरपंच, सचिव, पटवारी के चहेते लोग काम पाते थे, भले वे सक्षम लोग ही क्यों ना हो, जरूरतमंद और गरीबों को काम नहीं मिलता था, नतीजन लोग काम की तलाश में परदेश एवं शहरों की और पलायन करते थे।

रोजगार गांरटी कानून ने ग्रामीण भारत के प्रत्येक परिवार को 100 दिन रोजगार पाना कानूनी हक बना दिया। मांगने पर काम दिए जाने का प्रावधान बना। 15 दिन के भीतर उसी ग्राम पंचायत में 5 किलोमीटर की परिधि में लोगों को काम मुहैया कराना सरकार की जिम्मेदारी कर दी गई। अब काम देना सरपंचो की मर्जी पर निर्भर नहीं रहा। लोग जब चाहे वर्ष में काम मांग सकते है और उन्हें काम देना सरकार का काम है। काम नहीं देने पर बेरोजगारी भत्ता देने का नियम भी बना। मांगने पर दिए जाने वाले काम के कार्यस्थल पर दवा, छाया, पानी, छोटे बच्चों के लिए क्रेच जैसी सुविधाएँ की गई। पूरे काम का पूरा दाम मिलने लगा। आजादी के दशकों बाद ग्रामीण भारत के लिए मरेगा के जरिए प्रतिवर्ष शुरूआती वर्षो में 40 करोड़ रूपये खर्च किए जाने का प्रावधान किया गया। जब लोगों को काम मिलने लगा तो कई प्रकार के बदलाव गाँव में नजर आने लगे।

निष्कर्ष मनरेगा की सीमा घटा कर पहले से कम कर दी गई है और इसे प्रखंड के एक तिहाई हिस्से तक सीमित करने, काम के हिसाब से बजट में प्रावधान करने जैसे संशोधन किए गए हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं का तर्क वाजिब है कि इस विषय में लोगों से कोई राय नहीं ली गई। यह कानून यूपीए सरकार के वक्तजरूर लागू किया गया था, पर इस फैसले में सभी दलों की सहमति थी। इसे कोई सरकार अपने हिसाब से नहीं बदल सकती। यह सही है कि मनरेगा में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार व्याप्त है, पर इससे पार पाने का तरीका यह नहीं हो सकता कि इस योजना को ही समाप्त कर दिया जाए। इससे बहुत सारे गरीब ग्रामीणों को रोजगार सुलभ है। अगर यह योजना बंद हो जाती है तो उनके सामने जीवन यापन का संकट खड़ा हो जाएगा। कायदे से इस योजना की राह में आ गए रोड़ों को दूर करने की कोशिश होनी चाहिए। किस तरह ठेकेदारों और बिचौलियों के चंगुल से श्रमिकों को मुक्त कराया और उनके श्रम का वाजिब भुगतान सुलभ कराया जाए। विचित्र है कि एक तरफ राजग सरकार ग्रामीण विकास की नई योजनाएं शुरू कर रही है, दूसरी तरफ गरीब ग्रामीणों की आर्थिक सबलता से जुड़ी एक महत्त्वाकांक्षी योजना को खत्म करने का विचार कर रही है। हर गरीब को रोजगार पाने का अधिकार है, मनरेगा के जरिए इस मकसद को पूरा करने में मदद मिल रही थी। राजग सरकार को इसे महज इस आधार पर बंद करने का मन नहीं बनाना चाहिए कि इसकी शुरुआत दूसरी सरकार ने की थी। योजनाओं को विचारधारा के आधार पर देखने से उनका मकसद कभी पूरा नहीं हो पाता। मनरेगा के अपने लक्ष्य तक न पहुंच पाने के पीछे राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है। बहुत सारे लोग लंबे समय से अपनी मजदूरी के भुगतान की आस लगाए बैठे हैं, उन्हें कैसे पैसा मिले, बिचौलियों और ठेकेदारों को किस तरह जवाबदेह बनाया जाए, किस तरह इस योजना के तहत होने वाले कार्यों पर कड़ी नजर रखी जा सके आदि पहलुओं को दुरुस्त करने को लेकर सामाजिक कार्यकर्ता और ग्रामीण विकास के विशेषज्ञ सुझाव देते रहे हैं। बेहतर होगा कि इन तमाम पहलुओं पर व्यापक विचार-विमर्श के बाद कोई कदम उठाने की बात सोची जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मीणा, जनक सिंह, भारत में ग्रामीण विकास प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर 2012, पृष्ठ संख्या 46*
2. *कलवार सुगनचन्द्र, ''निर्धनतम उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास'', पोइन्टर पब्लिकेशन, 2001, पृ. 17*
3. *राष्ट्रीय रूपरेखा, ग्रामीण विकास मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार, पृ. 1*
4. *राजस्थान सरकार मनरेगा रिपोर्ट 2017-18*
5. *दैनिक भास्कर, 11 फरवरी, 2017*
6. *वार्षिक प्रतिवेदन, ग्रामीण विकास एवं पंचायतीराज विभाग राजस्थान 2015-16, जयपुर पृ.सं. 16*
7. *सामाजिक अंकेक्षण मार्गदर्शिका - 2016 पृ.सं. 17*
8. *दैनिक भास्कर, 5 जनवरी, 2017*
9. *दैनिक भास्कर, 24 अगस्त, 2017*
10. *राजस्थान पत्रिका 14.7.2014*

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में साहित्य और समाज का अंर्तसम्बन्ध (डॉ. मधु संधु की कहानियों के संदर्भ में)

डॉ. दीप्ति
सहायक प्रोफेसर, हिन्दू कॉलेज, अमृतसर (पंजाब)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

साहित्य और समाज का अर्न्तसंबंध जगविदित है। प्रस्तुत शोध पत्र में वैश्विकता के दौर में डॉ. मधु संधु की कहानियों के सन्दर्भ में समाज के बदलते स्वरूप का प्रतिबिम्ब दिखाने का प्रयास किया गया है। 21 वीं सदी के समाज के परिप्रेक्ष्य में जहां प्रणय और परिणय की ठावना को बड़े सटीक रूप से अभिव्यक्त किया गया है, वहीं आधुनिक नारी का पूर्ण सशक्त चित्र अभिव्यक्त है। प्रस्तुत शोध पत्र में समाज के अभिन्न अंग वू संचेतना और दलित समस्या के साथ आज के युवा वर्ग के प्रवास के प्रति आर्कषण को भी रेखांकित किया गया है।

संकेताक्षरः *प्रणय और परिणय की भावना, सशक्त नारी, दलित समस्या, वू संचेतना, युवा वर्ग का प्रवास के प्रति आर्कषण ।*

साहित्य का स्रष्टा होने के नाते अपने दायित्व का ईमानदारी व कुशलतापूर्वक निर्वाह करना साहित्यकार का कर्त्तव्य होता है। साहित्यकार समाज के सैद्धांतिक और व्यावहारिक सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करके यथातथ्य/कलागत रूप में साहित्य में रूपायित करता है। इस प्रकार वह रचनाओं के माध्यम से समाज की घटनाओं, क्रियाकलापों इत्यादि से पाठक को अवगत करवाता है। अतः साहित्य और समाज का अंतर्संबंध जगविदित है। आज का हिन्दी साहित्यकार अपनी रचनाओं में 21वीं सदी के समाज का बदलता स्वरूप प्रस्तुत करने में सतत प्रयासरत है। आधुनिक हिन्दी साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर डॉ. मधु संधु ने हिन्दी साहित्यकारों में सृजनशीलता व सक्रियता से विशेष पहचान बनाई है। बहुमुखी व्यक्तित्व की स्वामिनी डॉ. मधु संधु लगभग 36 वर्षों से अध्यापन काल के दौरान हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान देती रही है तथा आज भी निरन्तर साहित्य–सृजन के द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवा के लिये कटिबद्ध है। लेखिका ने अपनी रचनाओं में 21वीं सदी के परिवेशगत सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत बदलते जीवन मूल्यों, समाज में व्यक्तियों के परिवर्तित संबंधों, समाज की बदलती संरचना का सूक्ष्म पैनी दृष्टि से विश्लेषण कर उसे कलमबद्ध किया है। लेखिका ने दो कहानी–संग्रहों, 3 सम्पादित ग्रंथों और 16 शोध–ग्रंथों की रचना द्वारा हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में अमूल्य योगदान दिया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में उनके दो कहानी–संग्रहों में से कतिपय चयनित कहानियों (आहुति, तुषाराघात, कुमारिका गृह, लिव इन, आवर्तन, नियति, लिटल गर्ल, अभिसारिका, फ्रैक्चर) में वैश्विकता के दौर में साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को खोजते हुए समाज के बदलते स्वरूप का प्रतिबिम्ब दिखाने का प्रयास किया गया है।

समाज की लघुतम इकाई मानव है। मानव की सभी आवश्यकतायें किसी न किसी रूप में परिवार और समाज से जुड़ी होती हैं। भावनायें, विचार और क्रियाकलाप जीवन में व्यक्तिगत कुछ नहीं होता, सभी कुछ समाज से जुड़ा होता है। प्रणय और परिणय संबंधों के प्रमुख स्तम्भ है। प्रणय और परिणय की भावना समाज में पुरूष और नारी के सम्बन्धों के जुड़ाव की मुख्य कड़ी है। प्रस्तुत शोध–पत्र में साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को खोजते हुए प्रणय और परिणय की भावना को 21वीं सदी के समाज के परिप्रेक्ष्य में 'आहुति' और 'तुषाराघात' कहानियों के सन्दर्भ में बड़े सटीक रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

21वीं सदी के वैश्वीकरण के दौर में भी परिणय के पश्चात् कतिपय लोभी ससुराल वालों द्वारा दहेज की बलिवेदी में बहुओं की जबरन आहुति दी जा रही है। यह विकराल समस्या आज भी हमारे समाज में बड़ी चुनौती के रूप में विद्यमान है। 'आहुति' कहानी में लेखिका ने परिणय अर्थात् विवाह के पश्चात् 'अपूर्वा' नामक किशोरी के विवाह के नाम पर दी गई आहुति का यर्थाथांकन किया है। प्रस्तुत कहानी में नेशनल लेवल की टैनिस प्लेयर 'अपूर्वा' बचपन से ही लड़कों सी बिंदास लड़की के रूप में जीवन जीने वाली दृष्टिगोचर होती है। वह पढ़ाई अर्थात् एम.ए. में दाखिले के दौरान घरवालों की मर्जी के आगे झुककर शादी के लिये स्वीकृति दे देती है। आरम्भ में शादी की तैयारियों में खुश व रोमांचित अपूर्वा विवाह के पश्चात् ससुराल वालों के वास्तविक घिनौने रूप से परिचित होती है। फेरे के समय माँ ने भी मायके में उसके मुरझाए चेहरे पर ध्यान नहीं दिया । एक महीने बाद मायके में अपूर्वा के साथ आए पति ने जब लोन के बहाने उसके पिता से तीन लाख का चैक लिया तो उसके सब्र का बाँध टूट गया । क्रोधित अपूर्वा ने अपनी माँ को सब बता दिया, ''अपनी एम.ए.पास सास की दनदनाती आवाज में गूँजते अभद्र श्लोक । एम.बी.बी. एस. ससुर की तानाशाही। पति का दोगलापन, बहरापन और अपनी एक मुफ्त की आया अथवा मेडसर्वेंट की स्थिति।''[1] माँ ने समझा-बुझाकर दामाद के साथ अपूर्वा को ससुराल भेज दिया, जहाँ उन दोनों के बीच चैक को लेकर झगड़ा हुआ और पति ने उसे मारा भी। चार दिन बाद मायके वालों को फोन पर सूचित किया गया कि अपूर्वा ने कुछ खा लिया है और वह बेहोशी की हालत में सिविल अस्पताल में है। माँ-बाप अपूर्वा को पी.जी.आई में दाखिल करवाकर उसके बचने की प्रार्थना करने लगे । होश आने पर अपूर्वा भी माँ से उसे बचाने की विनती करने लगी । पर भाग्य की विडम्बना कि अपूर्वा जिन्दगी की लड़ाई हारकर निर्दयी दुनिया को अलविदा कह गई । माँ जहां इस सदमे में थी, वहीं पिता को गम से हार्ट-अटैक आ गया । ''अपूर्वा के ससुराल वालों पर कोर्ट-केस किया गया, किन्तु यह इन्टर-स्टेट का मामला था। बड़ा कम्पलीकेटेड । उन्हें सब विद-ड्रा करना पड़ा।''[2]

युवा पीढ़ी प्रणय भाव के प्रति जल्दी आकर्षित होती है। प्रणय भाव यदि कतिपय युवाओं के लिये सुख व आनंद की वर्षा करता है तो कुछ नौजवानों के लिये बेवफाई का अभिशाप बन जाता है। 'तुषाराघात' कहानी में लेखिका ने पुरुष के धोखे की शिकार 'मलयका' नायिका की मानसिक यातना एवं पीड़ा का मर्मस्पर्शी अंकन किया है। अल्हड़, स्वस्थ और आत्मविश्वास से भरपूर मलयका जीवन को जी भर लेने की अभिलाषा रखती थी। पढ़ाई और किचन के कामों में परफैक्ट मलयका का ऐरोबिक्स के इन्स्ट्रक्टर विमल से अफेयर हो जाता है। प्रेम के नशे में मदमस्त मलयका को माता-पिता की अप्रत्यक्ष स्वीकृति भी मिल जाती है परन्तु कुछ समय पश्चात् मलयका विमल के व्यस्त होने के बहाने से परेशान हो जाती है। तभी उसे पता चलता है कि ''विमल ने पड़ोस की, अपने से छह वर्ष बड़ी, चार वर्ष की बच्ची की मां, फैक्टरी ओनर, खूबसूरत अतुला से शादी कर ली है। मलयका के व्यक्तित्व का सारा संयम एक ही झटके में, यौवन के प्रथम तुषाराघात से ही चरमरा गया।''[3] बेवफाई के आघात को ना सहते हुये अपूर्वा मनोवैज्ञानिक समस्या से ग्रस्त होकर अस्पताल के कार्डआलॉजी विभाग में मरीज बनकर रह जाती है।

इस प्रकार 'आहुति' और 'तुषाराघात' कहानियों में परिणय और प्रणय संबंधों में प्रेमी के धोखे की शिकार प्रेमिका और लोभी, निर्दयी ससुरालवालों द्वारा नव-विवाहिता को मौत की ओर धकेलने के कटु यथार्थ को उकेरा गया है। दोनों कहानियों में नागर चेतना और नागर संवेदना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैश्वीकरण ने व्यक्ति को बाज़ारवाद की ओर उन्मुख करके भौतिकवादी बना दिया है जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक भौतिकवादी लोग किसी की संवेदनाओं की उपेक्षा करने के साथ-साथ किसी की जान की भी परवाह नहीं करते।

'दीपावली अस्पताल.कॉम की कहानियों के अगले पड़ाव में लेखिका की भूमंडलीकरण के दौर की स्त्री अधिकार प्राप्ति के लिये दौड़ना-भागना बन्द कर देती है। उसके आत्मबल और आत्मचिन्तन ने उसे अधिकार सम्पन्न बना दिया है। आज की नारी परम्परा या व्यवस्था जैसे बड़े झूठों को पहचानकर उनसे किनारा कर लेती है। जैसे ऊषा राजे सक्सेना की 'आंटोप्रेन्योर' में पूर्ण सशक्त स्त्री का चित्रण है, वैसे ही 'कुमारिका गृह' और 'लिव इन' में अपने-आप में संपूर्ण नारी का सशक्त रूप दृष्टिगोचर होता है। लेखिका ने इन कहानियों में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और साहित्य के अंतर्संबंधों को खोजते हुए 21वीं सदी में नारी सशक्तिकरण पर प्रकाश डालते हुए पूर्ण आत्म-विश्वास से निर्णय लेने की क्षमता से युक्त 'स्व' के प्रति जागरूक नारी को चिन्हित किया है।

'कुमारिका गृह' कहानी में पारिवारिक उपेक्षाओं और अपेक्षाओं के अभिशाप को झेलने वाली 'पुण्या' को

कुमारिका गृह में आने के पश्चात् जीवन को जी भर जीने की दृढ़ प्रेरणा मिलती है। वहां रहने वाली ''सभी कुमारिकाओं के हाथ में अर्थ की जादुई छड़ी और मन में जीवन को जी भर लेने की ललक है। उनके पास साँस लेने के लिये ढेर सारी ब्रीथिंग स्पेस है।''[4] पूनम सर्जन है तो इन्द्राणी कम्प्यूटर की कक्षाएँ अटैंड करती और कम्प्यूटर सैंटर की योजना बनाती। ''कुमारिका गृह की ये संरक्षक रह चुकी महिलाएँ हैं, जिन्हें किसी संरक्षण की आवश्यकता नहीं।''[5] इस प्रकार 21वीं सदी की 'कुमारिका गृह' की नायिका प्रणय और प्रेम से ऊपर उठकर घुटघुट कर जीने और स्वप्नभंग जैसी स्थितियों से छुटकारा पाकर सशक्त नारी के रूप में जीने का एक नया मकसद या विकल्प ढूँढती है। प्रस्तुत कहानी में परिवार द्वारा उपेक्षित नारियां बिना किसी संरक्षण के दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ जीवन व्यतीत करती हुई सशक्त नारी का रूप उजागर करती है। 'लिव इन' कहानी में लेखिका ने 21वीं सदी के नारी सशक्तिकरण का एक नवीन पहलू प्रस्तुत किया है। आज आधुनिक नारी प्राचीन परंपरागत रूढ़ियों को त्यागकर 'विवाह' के बंधन में ना बंधकर 'लिव इन' रिलेशनशिप में रहना पसंद करती है। कहानी के दोनों पात्र प्राइवेट कम्पनियों में कार्यरत थे । ''लिव–इन' में रहना उन्हें अच्छा लगता था और सौभाग्य से दोनों को अच्छे साथी भी मिलते रहे थे। ...इस प्रकार दोनों पात्र गृहस्थ के कारावास, सात फेरों वाला अटूट बंधन और बंधी नौकरी की बासी रूटीन से दोनों बहुत आगे निकल चुके थे।''[6]

दलित वर्ग समाज का सदा से अभिन्न अंग रहा है। भारतीय समाज में दलित समस्या सदैव मुँह खोले खड़ी रही है। दलितों का अपमान, मज़ाक उड़ाना, उनके प्रति घृणा और द्वेष रखना आम बात है किन्तु स्थितियाँ यहीं तक नहीं ठहरती । आज दलितों ने भी अनेक स्थलों पर अपनी विशेष पहचान या अस्तित्व बनाया है । एक समय था कि दलित शोषण की बात की जाती थी । आज 21वीं सदी के वैश्विक दौर में एक समय यह भी आ गया है कि दलित द्वारा दलित के शोषण की बात की जा रही है। 'आवर्तन' कहानी में 'ज्ञानी' नामक पात्र परिवार को बदहाली से खुशहाली का जीवन देने की आशा में गाँव से शहर में बसकर दर्जी की दुकान खोल लेता है। उसका बेटा चानन सिंह परिश्रम और लगन के बल पर एम.ए. करके सिफारिश से विश्वविद्यालय में नौकरी प्राप्त कर लेता है और पढ़ी–लिखी लड़की रूही से कोर्ट मैरिज कर उसकी भी सिफारिश से नौकरी लगवा देता है। आर्थिक तौर पर दलित परिवार सुखी व खुशहाल जीवन व्यतीत करता है। ''प्रसन्नता इस बात की थी कि .... शहर में जात कौन पूछता है। जानकर भी लोग इग्नोर करते हैं। लेन–देन, खान–पान सब बराबर रहता है।''[7] कभी स्वयं आर्थिक अभावों में जीवन व्यतीत करती जमींदारिन के यहाँ गोबर संभालने का काम करने वाली चानन की माँ अमीर होने पर गरीब महरियों के प्रति अमानवीय दृष्टिकोण रखती हुई वैसा ही कहर बरसाती है। महरी द्वारा पति के ईलाज के लिये छोटी बेटी से पैसे मंगवाने पर रूपये न देकर रूखे व्यवहार से घर का सारा काम करवाती है। पैसों का घमण्ड किसी के मन से दया भाव खत्म करने के लिये पर्याप्त होता है। ''यह आवर्तन ठीक वैसे ही था, जैसे पहले बीबी के साथ होता था । बस स्थान और व्यक्ति बदल गये थे।''[8] आज दलितों ने भी चाहे अनेक स्थलों पर अपनी विशेष पहचान बना ली है किन्तु सत्य तो यह है कि दलित ही दलित की वेदना को समझ नहीं पाता ।

लेखिका ने कहानियों में 21वीं सदी के वैश्विक समय के समाज के महत्त्वपूर्ण अंग युवा वर्ग के प्रवास के प्रति आकर्षण को भी रेखांकित किया है। प्रवास के स्वप्न/मायाजाल आज के युवावर्ग का झिलमिलाता सच है। 'नियति' कहानी का नायक सफल डॉक्टर के लक्ष्य को पूरा करने के लिये एम.डी. करने विदेश चला जाता है। जहां शादी भी करता है और एक सुन्दर सी बच्ची का भी पिता बनता है परन्तु काम के दबाव और सफलता पाने की सनक में संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। ''उन तनाव भरे दिनों में पत्नी का सुख जाना ही नहीं और तब डायवोर्स झेलना पड़ा । बच्ची माँ, भाई–भाभी के यहीं रही।''[9] प्रवास के मायाजाल में उलझकर पारिवारिक संबंधों की टूटन का दंश उसे झेलना पड़ता है। अकेलेपन से ग्रस्त नायक नन्हीं बच्ची की स्कूल अध्यापिका के प्रति आकर्षित होता है परन्तु उसके शादीशुदा होने का सत्य जानकर दुःखी हो जाता है। तत्पश्चात् लम्बी पढ़ाई पूरी करने के पश्चात् सैटल्ड सफल डॉक्टर के रूप में पहचान बनाने के पश्चात् भी ''घर में उसका अस्तित्व बियरर चैक का पर्याय बन गया। ––– आज पारिवारिक सदस्य दो मीठे बोलों का अहसान करने में भी कतराने लगे । ––––– सब उससे ऊब चुके हैं।''[10]

'लिटल गर्ल' कहानी में भी प्रवास के आकर्षण का युग यथार्थ चित्रित है। प्रस्तुत कहानी में पिता के विदेश जाने के पश्चात् उसकी नन्हीं लड़की के अकेलेपन और उसके अपने पिता से अलगाव के दर्द को यथार्थ रूप में अंकित किया गया है। वर्तमान समाज के बहुत से नौजवान प्रवास

के दौरान जल्दी पैसा कमाने की महत्त्वाकांक्षा रखते हैं। यह हमारे वर्तमान समाज का कटु सत्य है । अतीतजीवी लिटल गर्ल अक्सर पिता के साथ बिताए यादगार लम्हों में खो जाती है। कभी वह विदेश में रहते अकेले पिता के लिये चिंतित होती है तो कभी प्रवासी पिता द्वारा वर्णित अत्याधुनिक मानवीय जीवन के लिए अपेक्षित संसाधनों की तुलना अपनी स्थानीय चीज़ों और सुविधाओं से करती है। पिता जब कहते हैं, ''इतनी सुंदर ज़िन्दगी कतरा–कतरा संजोने लायक है .... तो उदास गर्ल सपनाती आँखों से कहती है, ''क्या जुड़ता होगा पापा, कोई सब – वे मेरे देश तक, मेरे घर तक क्यों नहीं आता ।''[11] समय बीतने के पश्चात् लिटल गर्ल बड़ी होकर यंग गर्ल बन जाती है जो अतीत में नहीं वर्तमान में जीने में विश्वास करने लगती है। यौवन की दहलीज़ पर अब यंग गर्ल को पापा की स्मृतियाँ नहीं सताती बल्कि उसे नये सपनों की दिशाएं मिलती हैं तथा उसके संगणक का आउटबॉक्स भी पिता की ई–मेल पढ़ने की अपेक्षा कहीं और ही खुलने लगता है। इस प्रकार वैश्वीकरण का प्रभाव हमें भारतीय समाज पर भी स्पष्ट परिलक्षित होता है।

अतीत से चिपकना और चिपके रहना वायवी (काल्पनिक) मूल्य हो सकता है जबकि 'लिटल गर्ल' का जीवन यथार्थ यहीं कहता है कि आउटबॉक्स को कहीं ओर खुलना है। मुड़–मुड़कर पीछे नहीं देखा जा सकता अथवा 'नियति' के नायक की तरह जीवन अवरूद्ध हो जाएगा और रूकने का नहीं बल्कि आगे बढ़ने का नाम ही तो ज़िन्दगी है। वैश्विकता भी जीवन सत्यों से मुँह नहीं चुरा सकती। साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को खोजते हुए समाज के महत्त्वपूर्ण अंग वद्ध संचेतना की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लेखिका की वृद्ध संचेतना से जुड़ी दोनों कहानियाँ 'अभिसारिका' और 'फ़ैक्चर' मूल्य चेतना का संदेश देती है। लेखिका ने 'अभिसारिका' में जहाँ जीवन का कटु यथार्थ प्रस्तुत किया है, वहीं 'फ़ैक्चर' में आम आदमी की संवेदनशीलता को चित्रित किया है। 'अभिसारिका' में ''साठ वर्षीया पत्नी छोटे बेटे के पास और उसका तिरसठ वर्षीय पति पिछले पाँच वर्षों से बड़े बेटे के पास रहते हैं।''[12] कभी अवसर मिलने पर दोनों मिलकर सार्थक समय व्यतीत करते हैं। प्रस्तुत कहानी में बच्चों को आजीवन स्नेह और संरक्षण देने वाले वृद्ध दम्पति को बुढ़ापे में अलग करने की यथार्थ समस्या प्रस्तुत की गई है। लेखन यात्रा के अगले पड़ाव में लेखिका 'फ़ैक्चर' कहानी में साकारात्मक सामाजिक मूल्य परिलक्षित होता है। प्रस्तुत कहानी में वृद्ध के अकस्मात फ़ैक्चर का शिकार होने के पश्चात् परिवार द्वारा उसे संरक्षण देने के तथ्य को रेखांकित किया गया है। इस कहानी में पूरा परिवार अस्वस्थ वद्ध पिता के इर्द–गिर्द घूमता है। पत्नी दिन–रात उनकी सेवा में उपस्थित रहती। ''बेटा सुबह – शाम पास बैठ घंटा भर इधर–उधर की बातें करने लगा था। बहू ने घर के सारे कामकाज की ज़िम्मेदारी संभाल सास को छोटे–मोटे झंझटों से मुक्त कर दिया था। बेटी हर शनि–इतवार चक्कर लगा जाती। .... कभी–कभी तो उन्हें बीमारी भी वरदान लगने लगती ।''[13] इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में वृद्ध के प्रति परिवार के संरक्षण के गहरे बोध स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

लेखिका की उपरोक्त कहानियों में समकालीन समाज का बदलता स्वरूप स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। लेखिका की 'लिव इन' में रहने वाली स्त्री प्रेमचन्द की 'मिस पदमा' की तरह लुटी–पिटी, बेचारी – दुखियारी नहीं बल्कि उसने अपने लिये कुमारिका गृह का सृजन कर लिया है। उनके वृद्ध भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' की माँ की तरह बरामदों–गलियारों में नहीं भटक रहे, न ही ऊषा प्रियवंदा की 'वापसी' के रिटायर्ड पिता की बेचारगी झेल रहे हैं । उनके साकारात्मक सामाजिक मूल्यों ने अस्वस्थ पिता को 'फ़ैक्चर' में परिवार का केन्द्रबिन्दु बना दिया है। 'अभिसारिका' में अलग–अलग जीने को विवश दम्पति की व्यथा के वृतांत से लेखन यात्रा के अगले पड़ाव 'फ़ैक्चर' में वृद्ध नायक की रूग्णावस्था में सारे परिवार के उसके इर्द–गिर्द घूमने, प्यार व उसे संरक्षण देने का सुखद अहसास मिलता है। इस प्रकार साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को खोजती लेखिका की कहानियों में जहां 21वीं शती के समाज का यथार्थ व उसका बदलता स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित है वहीं इनमें युग यथार्थ को उकेरने की शक्ति के साथ–साथ कला भी दृष्टिगोचर होती है। इन कहानियों में हाशिये के लोगों की प्रभावशाली उपस्थिति भी है और संक्रमणशील पात्रों के सृजन की क्षमता के साथ–साथ इन सबको उकेरने वाली सर्जनात्मक भाषा भी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, आहुति, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 42*
2. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, आहुति, (दल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 43*
3. *डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, तुषाराघात, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 52*

4. डॉ. मधु सन्धु, दीपावली अस्पताल.कॉम, कुमारिका गृह, (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015), पृ. 12
5 डॉ. मधु सन्धु, दीपावली अस्पताल.कॉम, कुमारिका गृह, (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015), पृ. 14
6 डॉ. मधु सन्धु, दीपावली अस्पताल.कॉम, लिव इन, (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015), पृ. 128
7 डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, आवर्तन, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 36
8 डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, आवर्तन, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 38
9 डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, नियति, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 16
10 डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, नियति, (दिल्ली : शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 18
11 डॉ. मधु सन्धु, नियति और अन्य कहानियाँ, लिटल गर्ल, (दिल्लीः शब्द संसार प्रकाशन, 2001), पृ. 14
12 डॉ. मधु सन्धु, दीपावली अस्पताल.कॉम, अभिसारिका, (नई दिल्ली : अयन प्रकाशन, 2015), पृ. 103
13 डॉ. मधु सन्धु, दीपावली अस्पताल.कॉम, फ़ैक्चर, (नई दिल्लीः अयन प्रकाशन, 2015), पृ. 25

ग्रामीण महिलाओं का यथार्थ : एक विवेचन (गुर्जर महिलाओं के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर
पोस्ट डॉक्टरल फेलो, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत में आदिकाल से ही नारी को सम्मानजनक एवं पूज्य स्थान प्राप्त है। समाज निर्माण एवं शासन संचालन में नारी की भागीदारी दृष्टिगत है। ऐतिहासिक दृष्टि से स्वतंत्रता आन्दोलन से लेकर आजाद भारत में नारी का योगदान उल्लेखनीय है। भारत में अधिकांश लोग ग्रामीण परिवेश में निवास करते हैं, वहां नारी की स्थिति दयनीय प्रतीत होती है। वर्तमान में ग्रामीण नारी समग्र विकास से दूर दिखाई देती है। गुर्जर ग्रामीण नारी की स्थिति तो और अधिक भयावह एवं दयनीय है। यह समाज कृषि एवं पशुपालन से जुड़ा हुआ है तथा इनका जीवन परम्परागत शैली में देखने को मिलता है। गुर्जर समाज में वैदिक कन्या गायत्री एवं पन्नाधाय के गौरवशाली इतिहास का उल्लेख तो मिलता है किन्तु इसके विपरीत आज की ग्रामीण नारी पूरी तरह से अशिक्षा एवं परम्पराओं के जाल में जकड़ी हुई है जो आधुनिकता से बहुत दूर है।

संकेताक्षरः *अबला, बेचारी, मानवीय क्रूरता, रनिवास, घूंघट, नाता प्रथा, पतिव्रता।*

नारी का सम्मान एवं उनके हितों की रक्षा करना हमारी संस्कृति है। भारत में नारी की दशा विरोधाभासी प्रतीत होती है। एक तरफ तो देवी का रूप, शक्ति का रूप, दुर्गा माता, सरस्वती माता आदि की पूजा की जाती है तथा दूसरी तरफ नारी की वास्तविक स्थिति दयनीय दिखाई देती है और वह ''बेचारी–अबला'' कही जाती है। प्राचीन काल से ही नारी व पुरूषों में समानता के सन्दर्भ में नारी को ठगा गया है। नारी का समाज निर्माण में योगदान अतुलनीय है फिर भी समाज में अत्याचार एवं शोषण का शिकार बनी हुई है। महिला विकास की अनेक बातें विश्व स्तर व राष्ट्रीय स्तर पर होती हैं। महिलाओं की दशा सुधारने हेतु उन्हें संवैधानिक अधिकार दिए गए हैं। विश्व में 'महिला दिवस' मनाया जाता है किन्तु आज भी महिला मानवीय क्रूरता एवं हिंसा से ग्रसित है।

सदियों से नारी अनेक विडम्बनाओं एवं विसंगतियों के बीच जीवन–यापन करती आ रही है। वैदिक काल में विद्वता के लिए सम्मान पाने वाली नारी मुगलकाल में रनिवासों की शोभा बनकर रह गई थी। ब्रिटिश काल में अनेक सामाजिक सुधारों के बावजूद भी नारी अपना सम्मान व हक नहीं पा सकी। आज भी ग्रामीण महिलाओं की दशा बहुत अच्छी नहीं है। अशिक्षा, पुरूष प्रधान समाज, पुत्र का अधिक महत्व आदि कारकों ने नारी को महज एक गृहिणी का जीवन व्यतीत करने पर मजबूर कर रखा है।जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष का साथ निभाने वाली नारी के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। सीता व गंधारी का आदर्श उदाहरण तो दिया जाता है किन्तु इन पात्रों के आदर्शो को स्वीकार करना उचित नहीं समझा जाता है।

महिलाओं की दशा सुधारने के लिए अंग्रेजों तथा आजादी के पश्चात् भारत सरकार ने महत्वपूर्ण कदम उठाये – जैसे सती प्रथा निषेध अधिनियम 1829, हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856, एज ऑफ कन्सेटेंट बिल 1891, बहुविवाह को रोकने के लिए वेटिव मैरिज एक्ट, दहेज निषेध कानून 1961, पूर्व गर्भाधान और प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 1994 आदि आदि किन्तु ग्रामीण महिलाओं की दशा में सुधार लाने में ये अधिनियम अधिक कारगर सिद्ध नहीं हुए। महिला उत्पीड़न एवं अपराध बढ़ते ही जा रहे हैं।

आजादी की लड़ाई में झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, बेगम हजरत महल आदि के व्यक्तित्व वशतित्व की चर्चा तो होती है किन्तु समाज में उनके चरित्र को अपनाने में किन्तु परन्तु ही दिखाई देता है।

शिक्षा के प्रचार-प्रचार से शहरी महिलाओं की दशा में सुधार दिखाई देता है किन्तु ग्रामीण महिलाऐं आज भी समान अधिकारों एवं सुविधाओं से महरूम हैं। भारतीय नारी का क्षेत्र कठोर रूप से घर की चार दीवारी तक ही सीमित था। पति को प्रसन्न रखना एवं स्वयं को पतिव्रता सिद्ध करने तक ही उसके समस्त विचार होने की आशा की जाती थी। आज भी ग्रामीण महिलाओं का यह स्वरूप पूर्ण रूप से यथावत बना हुआ है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने संविधान में महिलाओं के लिए अनेक नियम, उपनियम की व्यवस्था कर सामाजिक, शैक्षणिक व राजनैतिक रूप से सशक्त बनाने का प्रयास किया तथा कुछ ही महिलाऐं जो शिक्षित थी, उनको ही इनका लाभ मिला, बहुसंख्यक ग्रामीण महिलाओं का विकास नहीं हो पाया। इसके लिए हमारी सामाजिक संरचना, परम्परागत प्रथाएँ, मान्यताएँ एवं सरकारों द्वारा विकास की योजनाओं का सही क्रियान्वयन नहीं हो पाना आदि जिम्मेदार माने जा सकते हैं। सामाजिक क्षेत्र में मेधा पाटकर, सुधा मूर्ति, राजनीति में श्रीमती प्रतिभा पाटिल, श्रीमती सोनिया गांधी, जयललिता, मायावती, ममता बनर्जी, खेल जगत में पी. टी. ऊषा, सानिया मिर्जा आदि ने नये कीर्तिमान स्थापित किये परन्तु आम ग्रामीण महिला की सोच एवं दशा तो अति कष्टदायक एवं पीड़ादायक बनी हुई है।

आज भी ग्रामीण महिलाओं को बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन जीवन यापन करना पड़ता हैं यह कथन मनु धर्म शास्त्र में भी वर्णित है।

सिद्धान्ततः भारतीय संविधान के पुरूष व महिला को समान काम के लिए समान अधिकार प्रदान किये है किन्तु व्यवहारिक रूप से महिलाओं को मौका बहुत कम मिलता है। आज उच्च पदों पर स्त्रियाँ 3 प्रतिशत तथा पुरूष 97 प्रतिशत काबिज है।

महिलाओं के संदर्भ में भारत में जनसंख्या के आधे भाग की योग्यता व कार्य क्षमता का लाभ नहीं लिया जा रहा है जिसे कार्य क्षमता एवं प्रतिस्पर्द्धा की जड़े कमजोर पड़ रही है। मार्गरेट कजिन्स ने ठीक ही कहा है कि ''किसी देश की प्रगति का पैमाना यही हो सकता है कि उस देश की महिलाओं की स्थिति क्या हैं।'' महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा है, ''तुम औरतों को चारदीवारी में कैद करने के बजाय, उन्हें तरक्की का मौका दो, उसके व्यक्तित्व के विकास की भूमिका तैयार करो, देश के विकास में देर नहीं लगेगी।''

सुविधा की दृष्टि से शिक्षा के क्षेत्र में लड़के, लड़कियों के मुकाबले आगे है। भारतीय दृष्टिकोण ऐसा बना हुआ है कि लड़के परिवार का दीपक होता है, वंश चलाते हैं तथा परिवार का नाम रोशन करते हैं जबकि परिवार के प्रति लड़कियाँ अधिक जिम्मेदार दिखाई देती हैं। भारतीय नारी में अधिक सहनशीलता होती है। अतः अनेक कष्ट झेलते हुए भी वह अपने परिवार के प्रति कटिबद्ध रहती है। ग्रामीण परिवार में लड़के के जन्म पर अधिक खुशी मनायी जाती है जबकि लड़की के जन्म पर मायूसी छा जाती है।

गुर्जर समाज मूलतः पशुपालक एवं कृषक है। ये भौगोलिक रूप में नदियों के किनारें एवं पहाड़ी व वन क्षेत्र में बहुलता से पाये जाते हैं। उदाहरण के तौर पर राजस्थान के पूर्वी क्षेत्र में घना बीहड़ धौलपुर, करौली, भरतपुर जिलों में गुर्जर जाति बहुतायत पायी जाती है। शिक्षा की दृष्टि से आज भी अति पिछड़ी जाति बनी हुई है। हाल ही में राजस्थान सरकार ने चौपड़ा कमीशन से गुर्जर जाति की स्थिति का आंकलन करवाया था जिसमें चौंकाने वाले तथ्य उजागर हुए विशेषकर महिलाओं के सम्बन्ध में। ओबीसी आयोग ने भी 2012 में गुर्जर सहित विशेष पिछड़ा वर्ग का सर्वे प्रस्तुत किया है जिसमें गुर्जर महिलाओं की दयनीय स्थिति का जिक्र किया गया है।

राजस्थान सहित सम्पूर्ण देश के गुर्जर समुदाय की महिलाएँ शैक्षिक रूप से अति पिछड़ी हुई है। विभिन्न प्रशासनिक एवं राजकीय सेवाओं में उनकी भागीदारी से यह प्रमाणित होता है कि गुर्जर महिलाओं को घर की चारदीवारी का हिस्सा ही माना जाता है। परम्परागतरूप से पशुपालन में महिलाओं की भूमिका अधिक प्रभावी देखी जाती है। घर में पशुओं की देखभाल एवं सम्पूर्ण जिम्मेदारी पूर्ण रूप से महिला की ही होती है। अतः लड़की जन्म से ही पशुपालन की विभिन्न विधाओं में निपुण हो जाती है। साथ ही कृषि कार्य में भी पुरूषों से कम योगदान महिलाओं का नहीं देखा जाता है। अतः परिवार की आर्थिक संरचना में महिला की महत्ती भूमिका दृष्टिगोचर होती है। परिणाम स्वरूप बालिका को उच्च शिक्षा से दूर ही रखा जाता है।

सामाजिक समारोह एवं परम्पराएँ भी महिलाओं द्वारा ही निर्वहन अधिक की जाती है। परम्परागत कुप्रथाओं ने तो गुर्जर महिला को आधुनिक स्वतंत्र जीवन का बोध ही नहीं होने दिया। कुछ पढ़े-लिखे परिवारों को छोड़ दे तो

अधिकांश महिलाओं को परम्पराएँ निभाते-निभाते ही जीवन का अंतिम पड़ाव मिल जाता है।

समाज में व्याप्त अमानवीय प्रथाएँ आज भी प्रभावी तौर पर देखी जाती है जिस कारण शिक्षा से महिलाओं को वंचित रहना पड़ता है। अशिक्षा व बाल विवाह महिलाओं की खराब दशा के प्रमुख प्रभावी कारक माने जा सकते हैं जिसके साथ ही लड़की को स्वतंत्र अधिकारों से वंचित किया जाना प्रारम्भ होता है। सामूहिक रूप से बाल विवाह ने तो नारी के जीवन को अंधकार मय बना दिया। इसके दुष्परिणामों के रूप में अशिक्षा एवं दुर्भाग्यवश बाल विधवा का क्रूर रूप तथा उसके पश्चात् नाता प्रथा का शिकार महिला को होना पड़ता है। नाता प्रथा में पति की मृत्यु के बाद उसके छोटे भाई के साथ या अन्य रिश्तेदार के साथ जीवन बिताना पड़ता है। इससे महिला की भावनाओं एवं स्वतंत्र विकास को अवरूद्ध किया जाना प्रतीत होता है।

दहेज प्रथा भी एक सामाजिक बुराई है जो महिलाओं पर विपरित असर डालती है। आर्थिक रूप से पिछड़े व्यक्ति द्वारा अपनी सभी लड़कियों की एक साथ शादी (सामूहिक बाल विवाह) करना मजबूरी जीवन भर अनेक कष्ट झेलने पड़ते है। क्योंकि योग्य वर की कोई सम्भावना ऐसी शादी में नहीं होती है। ये सब भाग्य भरोसे चलता है ऐसा माना जाता है या अंधविश्वास आज भी प्रचलन में है। घूंघट या पर्दा प्रथा ग्रामीण गुर्जर महिलाओं में विशेष रूप से पायी जाती है जो उनके विकास में रूकावट का कार्य करती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से माना जाता है कि कुछ गुर्जर महिलाओं ने राष्ट्रीय स्तर पर धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक रूप में गौरवपूर्ण कार्य किए हैं। उनका गुणगान किया जाता है किन्तु आज की गुर्जर महिला की दशा को दर्शाकर उनके विकास के आयामों की स्थापना करना अधिक आवश्यक है।

उल्लेखनीय है कि वेदमाता गायत्री देवी गुर्जर समाज से ताल्लुक रखती है। मेवाड़ में त्याग और बलिदान की देवी पन्नाधाय गुर्जर समाज से ताल्लुक रखती थी। ऐसे कतिपय उदाहरण गुर्जर वीरता एवं गौरव को तो दर्शाते है किन्तु वर्तमान गुर्जर महिला की दशा का उल्लेख नहीं मिलता।

ग्रामीण गुर्जर समाज में आज भी पिता की सम्पत्ति पर सिद्धान्ततः व कानूनी रूप से तो पुत्री का अधिकार है। किन्तु व्यवहारतः पिता की सम्पत्ति पुत्र की ही होती है, पुत्री को उसमें कोई हिस्सा नहीं मिलता है। यह एक विडम्बना है कि स्वतंत्र भारत में इस प्रकार का सम्पत्ति विभेद दिखाई पड़ता है। लड़की अपनी स्वेच्छा से अपनी पढ़ाई-लिखाई नहीं कर पाती है उसे अपने पिता या पति की आज्ञा मानना अनिवार्य होता है। अतः प्रभिभावान लड़कियां अपनी प्रतिभा को सिद्ध नहीं कर पाती है। चन्द उच्च शिक्षित परिवारों को छोड़कर कमोबेश देशभर में गुर्जर महिलाओं की स्थिति अंधकारमय दिखाई देती है।

जब तक गाँवों का सम्पूर्ण विकास नहीं होगा तब भारत के मानव संसाधन का सम्पूर्ण सदुपयोग होना शंका का विषय है। गाँवों को प्राचीनकाल से ही विकास का आधार माना गया है किन्तु वास्तव में विकास धरातल पर दिखाई नहीं देता है। भारतीय संविधान में पंचायती राज अधिनियम पारित करके गाँवों की दशा सुधारने एवं गाँवों को सशक्त करने के वैधानिक प्रयास किए गए है, किन्तु आधारभूत संरचना आज भी विकास की बाट जोह रही है।

73वाँ संविधान संशोधन पंचायती राज संस्थाओं के विकास की दृष्टि से ऐतिहासिक कदम है इससे गाँवों के विकास के लिए पंचायतों को संवैधानिक दर्जा तथा महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की गई है। इसके बावजूद भी ग्रामीण महिला अपने अधिकारों का उपयोग करने से वंचित है। राजनैतिक रूप से जन प्रतिनिधि तो महिला अपने आरक्षित स्थान से चुनी जा रही है किन्तु कार्य तो व्यवहारिक तौर पर पुरूष द्वारा ही किये जा रहे हैं। शिक्षा की कमी के कारण पुरूष ही उनके अधिकारों का इस्तेमाल कर रहे हैं। अनेक महिला प्रमुख, प्रधान, सरपंच बैठकों में भाग लेती है तो ढाई गज का घूंघट देखने को मिलता है या वह बैठकों में भाग ही नहीं लेती।

वास्तव में ग्रामीण पिछड़े इलाकों की महिलाओं की दशा सुधारना चाहते हैं तो सरकारी, सार्वजनिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर ग्रासरूट कार्य करने होंगे। विशेष रूप से महिलाओं को शिक्षा का प्रचार-प्रसार एवं उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना अनिवार्य है। ऐसे शैक्षिक सम्मेलन एवं सेमीनार, कार्यशाला महिला जन-जागरण के लिए ग्रामीण स्तर पर आयोजित करना अधिक महत्वपूर्ण होंगे। सरकारी प्रयासों के साथ-साथ महिलाओं के प्रति समाज की सोच बदलना भी अधिक उपयोगी होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *बिन्दु मट्ट, मध्यकालीन भारत में स्त्री, पुरूष सम्बन्ध, शोधक, टवस.32ए सितम्बर-दिसम्बर, 2003, जयपुर, पृ.सं. 173-179.*

2. द इन्स्टीट्यूशन ऑफ द मनु, हिग्गीन बोथम एण्ड कम्पनी, मद्रास, 1880 ई., पृ.सं. 231.
3. द हिन्दू, 20.03.2005.
4. आशारानी बोहरा, आजादी के बाद ग्रामीण महिलाएँ, क्या पाया, क्या खोया, कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, अगस्त, 1997, पृ.सं. 27.
5. गुर्जरों का सम्पूर्ण इतिहास, चौ. खुर्शीद भाटी, कोटला पटपड़ गंज, दिल्ली–91, पृ.सं. 455.
6. डॉ. भीमसिंह चौहान, राजस्थान में पंचायती राज में महिलाओं का योगदान, अरिहन्त प्रकाशन, जोधपुर, पृ.सं. 64
7. ''घूंघट की ओट से पंचायती मंच तक'', राजस्थान पत्रिका, 22 जनवरी, 1997, पृ.सं. 10.

नागार्जुन के उपन्यासों में दलित चेतना

जितेन्द्र कुमार बरबड़
शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

आधुनिक काल में हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में सृजन हो रहा है। इन्हीं विधाओं में से एक विधा है उपन्यास। इसमें जीवन के आदि से लेकर अंत तक की कथा का समावेश होता है। इनमें नागार्जुन के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश की घुटन, वेदना, संस्कार, दलित शोशण, दलित वर्ग की आर्थिक स्थिति आदि देखने को मिलती है। नागार्जुन का 'बलचनमा' उपन्यास बिहार प्रान्त के मधुबनी, सदर एवं समस्तीपुर के जन जीवन में दलित वर्ग के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करता है। 'वरुण के बेटे' उपन्यास में भी नागार्जुन ने दलित–पीड़ित के जीवन संघर्ष को सक्रिय रूप में प्रस्तुत किया है। नागार्जुन का उपन्यास 'उग्रतारा' भारतीय नारी के वैधव्य जीवन की घुटन, प्रताड़ना, वेदनाओं एवं अत्याचारों का जीवन्त उदाहरण है। इस प्रकार नागार्जुन ने जातिगत समता, नारी शिक्षा, समाज के निम्नवर्ग तथा तिरस्कृत, शोशित, पीड़ित, दलित व नारी वर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की समस्या को भी उद्घाटित किया है।

***संकेताक्षरः** उपन्यास, नागार्जुन, दलित साहित्य।*

आधुनिक काल में हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में सृजन हो रहा है। इन्हीं विधाओं में से एक विधा है उपन्यास। उपन्यास वस्तुतः महाकाव्य के अनुरूप ही होता है। इसमें भी जीवन के आदि से लेकर अंत तक की कथा का समावेश होता है। हिन्दी उपन्यास यात्रा बहुत लम्बी है। अनेक उपन्यासकारों ने अनेक विशयों पर उपन्यासों की रचना की है। आजादी के पूर्व औ पश्चात उपन्यास यात्रा के अनेक सोपान है। अनेक लेखक है। उन्हीं में से एक है नागार्जुन। नागार्जुन ने अनेक उपन्यासों की रचना सफलता पूर्वक की है। हिन्दी उपन्यास के सन्दर्भ में लोक संस्कृति, रीति–रिवाज, बोली–बानी व सामुदायिक जीवन के चित्रण तक ही सीमित नहीं है। वैसे तो नागार्जुन प्रगतिशील चेतना के साहित्यकार रहे है। किन्तु इस परम्परा से हटकर उन्होंने ग्रामीण जीवन को भी आत्मसात किया है। जिसके कारण उनके उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश देखने को मिलता है। ग्रामीण परिवेश की घुटन, वेदना, संस्कार, दलित शोषण, दलित वर्ग की आर्थिक स्थिति आदि भी देखने को मिलती है। नागार्जुन के उपन्यासों में दलित विमर्श, दलित चेतना को देखने से पहले यहाँ पर दलित शब्द का अर्थ और उसके स्वरूप में समझना आवश्यक है।

दलित शब्द का अर्थ– ''दलित शब्द दल् धातु में क्त प्रत्यय से बना हुआ है (दल+क्त)। जिसका अर्थ है टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े–टुकड़े हुआ, खुला, फैलाया हुआ।'' दूसरे शब्दों में दलित शब्द का अर्थ है– ''कुचला हुआ, मर्दित, मसला हुआ, रौंदा हुआ।''दलित वर्ग से आशय है–''अछूत, जनजाति, डिप्रेस्ड क्लास।''इस प्रकार हम कह सकते है कि दलित शब्द का अर्थ हुआ–वंचित, उत्पीड़ित, शोशित, सताया हुआ, उपेक्षित, घृणित आदि।

''राजेन्द्र यादव 'दलित' शब्द को काफी व्यापक अर्थ और व्यापक दायरे में लेते हुए स्त्रियों को भी दलित मानते हैं। पिछड़ी जातियों को भी दलित में शामिल करते हैं।''अर्जुन डागले–''दलित यानी शोषित, पीड़ित। समाज, धर्म एवं अन्य कारणों से जिसका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शोषण किया जाता है वह मनुष्य।''

वर्तमान समय में दलित साहित्य ने समाज में स्थान बना लिया है। साहित्य की अनेक विधाओं में जैसे–आत्मकथा, कहानी, कविता तथा उपन्यास आदि के माध्यम से दलित साहित्य में आना शुरू हो गया है। दलित साहित्य आधुनिक युग का आविर्भाव है। दलित पीड़ित, शोशित जन की भावनाओं का प्रतिबिम्ब है, अंतिम छोर के मानव को प्रदर्शित करता है। फिर भी दलित साहित्य युगों से दबे हुए, शोशित, तिरस्कृत हुये अछूत समाज के जीवन की अभिव्यक्ति देता है। दलित साहित्य,साहित्य का नवोन्मेश है, मानव जीवन का आविष्कार है। दलित चेतना का सम्बन्ध आज के आधुनिक साहित्य से नहीं है यह तो प्राचीन काल से चली आ रही एक परम्परागत शैली के रूप में देखने को मिलती है। भक्ति काल में कबीर के साहित्य से दलित चिन्तन के बीज मिलते हैं। साहित्य समाज की प्रतिध्वनि है उसको दबाया नहीं जा सकता।

''शहरी और ग्रामीण अंचल के विशम परिवेश के प्रति जागृत होता शोषित वर्ग शोषण के शिकंजे के विरूद्ध आवाज बुलन्द कर रहा है। पशु से भी लांछित जिन्दगी जीने वाले इन शोषित मनुष्यों में अपने वर्ग एवं अस्तित्व के प्रति अस्मिता का भाव बोध पैदा हुआ जो उनके अधिकारों के प्रति जागरुक होने का बोध भी पैदा करता है।'' भारत में वर्ग–संघर्ष और वर्ण–संघर्ष एक दूसरे के पूरक है। क्या दलित का केवल आर्थिक शोषण ही होता है ? क्या आर्थिक शोषण से कहीं अधिक पीड़ा दायक यह नहीं है कि मनष्य होने के बावजूद वे परम्परा से अपवित्र, यहां तक कि कलंकित माने जाते हैं और जीवन में कभी इससे मुक्ति पाने की गुंजाइश भी नहीं रख सकते।''

नागार्जुन का 'बलचनमा' उपन्यास बिहार प्रान्त के मधुबनी, सदर एवं समस्तीपुर के जन जीवन में दलित वर्ग के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करता है। उपन्यास का नायक बलचनमा स्वयं दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। बलचनमा अपनी करुण कहानी व्यक्त करते हुए कहता है– ''मेरी हड्डी–हड्डी, नस–नस और रोएँ–रोएँ पर उनका मौरुसी हक था। पोसने–पालने, सड़ाने–गलाने और मारने–पीटने का भी उन्हें पूरा हक था। दोपहर का खाना खाकर जब मैं बैठता तो खवासिन आवाज देती–बलचनमा, कहाँ गया बे, कोढ़िया बोलता भी नहीं, कहाँ मर गया।'' बलचनमा चौदह वर्ष का होता है तब एक घटना का जिक्र करते हुए लेखक ने बताया है कि वह आम के बाग से एक आम चुराकर खा लेता है और नौकरो द्वारा चुगली करने पर उसे हवेली में बुलाकर रस्सी के सहारे खंभे से बंधवा दिया जाता है और नौकर की सहायता से उसे पीटा जाता है। बलचनमा की हालत देखकर उसकी दादी गिड़गिड़ाते हुए कहती है– ''दुर्हा सरकार की, मर जायगा ललुआ! छोड़ दीजिए सरकार! अब कभी ऐसा न करेगा, दुहाई मालिक की। दुहाई माँ बाप की।''

उपन्यास में पीढ़ियों के संघर्ष की गाथा भी देखने को मिलती है, तभी तो बलचनमा कहता है कि– ''तीन पुरखों का हाल तो मैं भी बता सकता हूँ, मालिकों के जूठन का गुन गाते, उनकी बिकट गालियों को परेम–भाव से सुनते दादी को देखा। रात–दिन की सेवा करते रहने पर भी पाव–आधा पाव खुदी के लिए माँ किस तरह रिड़ियाती फिरती थी, यह क्या भूलने की बात है ?''

'वरुण के बेटे' उपन्यास में भी नागार्जुन ने दलित–पीड़ित के जीवन संघर्ष को सक्रिय रूप में प्रस्तुत किया है– ''लेकिन माधुरी से नहीं रहा गया। वह बेंच से उठकर और आगे आ गई और पुलिस बैन के पिछले छोर पर खड़ी हो गई। बाएँ हाथ से उसने ऊपर लटकती जंजीर को थाम लिया और दाहिना हाथ घुमा–घुमाकर नारे लगाने लगी। लोग दुगुने चौगुने जोश में जवाबी नारे देने लगे– 'इन्कलाब–जिन्दाबाद।'' मछुआ संघ जिन्दाबाद।'' बाबा नागार्जुन ने इस उपन्यास में मलाही गोढ़यारी गाँव के मछुआरों के सामाजिक व आर्थिक जीवन के साथ–साथ दलित वर्ग के शोषण को व्यक्त किया है। 'वरुण के बेटे' में चित्रित मोहन माँझी मलाही गोढ़यारी मछुआरों का संगठन बनाकर गढ़ पोखर पर जबदस्ती अधिकार जताने वाले जमींदार, उनके अत्याचार और कानूनी विसंगति के विरुद्ध संघर्ष करता नजर आता है। यही मछुआ संघ अपनी किसान सभा के द्वारा बाढ़ पीड़ितों के लिए आर्थिक मदद का कार्य भी करता है।

नागार्जुन ने अपनी पैनी दृष्टि से उपन्यासों में गरीबी की दुर्दशा, महाजनों द्वारा शोषण और अत्याचार को बड़ी मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त किया है। उपन्यासकार ने दलित वर्ग के दुख को 'दुखमोचन' उपन्यास में दुखमोचन के माध्यम से दलित जनों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहा है– ''सुनती हो सुनिया की अम्मा, इस गाँव में आग यह पहलीबार नहीं लगी थी। कुछ कसूर था मौसम का, कुछ पछिया हवा का, कुछ कूस का, कुछ तुम्हारा और कुछ हमारा । इसमें किसी एक का कसूर नहीं था, सुनिया की अम्मा! होनी थी सो होकर रही, अब नाहक पछता रही हो।''

नागार्जुन का उपन्यास 'उग्रतारा' भारतीय नारी के वैधव्य जीवन की घुटन, प्रताड़ना, वेदनाओं एवं अत्याचारों का जीवन्त उदाहरण है। उग्रतारा वैधव्य जीवन के कारण घुटन का शिकार बनती है। उस पर बलात्कार करते हुए भभिखन सिंह उसके साथ जबरदस्ती विवाह करता है। इस उपन्यास में दलित, शोषित नारी समाज के प्रति पुरुषों का

अनैतिकता, भ्रष्टाचार का सजीव चित्रण किया गया है। तभी तो शिक्षा की महत्ता सिद्ध करते हुए कहा है–''तीसरी आँख होती तो विद्या समझती।'' उगनी भभिखन को रक्षक के रूप में ही अनुभव करती है, पति के रूप में नहीं। क्योंकि अब भी वह मन कामेश्वर को समर्पित मानती है। इसलिए वह इस विवाह को विवाह नहीं बल्कि भभिखन को मिला हुआ 'बलात्कार का अधिकार' मानती है। उसके पास–पड़ोस की स्त्रियाँ भी उसको छिनाल के नाम से सम्बोधित करती है।

कथाकार नागार्जुन के उपन्यासों की आधार भूमि सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति रही है। जातिगत समता, नारी शिक्षा, समाज के निम्नवर्ग तथा तिरस्कृत, शोशित, पीड़ित, दलित व नारी वर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की समस्या को भी उद्घाटित किया है। नागार्जुन ने जनजीवन के विस्तार के साथ साथ उनके रीति–रिवाज, लोक विश्वासो, अंधविश्वासों और परम्पराओं का भी सटीक वर्णन किया है। उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन समाज की यथार्थ स्थिति का जीवन्त चित्रण किया। वर्ग विहीन, दलित जन जीवन निश्चित ही नागार्जुन के दलित वर्ग का समर्थक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत शब्द कोश, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ. 451*
2. *भोलानाथ तिवारी : हिन्दी पर्यायवाची कोष, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ. 278*
3. *वही, पृ. 278*
4. *राम स्वरूप खरे (सं.) : शोधार्णव : दलित विमर्श विशेषांक, अंक 18, 2010 पृ. 43*
5. *वही, पृ. 43*
6. *सुदर्शन पासवान : दलित साहित्य और संघर्ष, अनुज पब्लिशिंग दिल्ली, 2005, पृ. 32,*
7. *रमणिक गुप्ता : दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, समीक्षा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2008, पृ. 16*
8. *नागार्जुन : बलचनमा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 14*
9. *वही, पृ. 3*
10. *वही, पृ. 14*
11. *नागार्जुन : वरुण के बेटे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 102*
12. *नागार्जुन : दुखमोचन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 14*
13. *नागार्जुन : उग्रतारा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 48*

19 वीं शताब्दी में कन्यावध एवं सती प्रथा उन्मूलन के प्रयास (मेवाड़ के सन्दर्भ में)

प्रीति मीना
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी समाज में स्त्रियों की दशा को उस समाज की उन्नति या अवनति का मापदण्ड माना जा सकता है। हिन्दू समाज में स्त्रियों का समान और आदर प्राचीन काल से आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था। कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में, बहिन के रूप में तथा माँ के रूप में वे हिन्दू परिवार और समाज में आदृत थीं। परिवार और समुदाय में उनके द्वारा कन्या, पत्नी, वधू, बहिन, और माँ के रूप में किये जाने वाले योगदान का सर्वथा महत्व आर गौरव रहा है। राजस्थान में 19वीं शताब्दी में समाज सुधार मुख्यतः स्त्रियों की स्थिति से संबंधित था। उसी प्रकार मेवाड़ में भी समाज सुधार की चर्चा स्त्रियों की स्थिति सुधार के विषयों से अधिक जुड़ी हुई थी। इस दृष्टि से सामान्यतः सती और कन्या वध की बुराइयों की अधिक चर्चा होती है।

संकेताक्षरः *स्त्री, कानून, समाज, वर्ग, इतिहास, प्रथाएं।*

भारतीय धर्मशास्त्र में नारी सर्वशक्ति सम्पन्न मानी गई तथा विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति की प्रतीक समझी गई। गृह की साम्राज्ञी के रूप में उसे प्रतिष्ठापित किया गया तथा घर के अन्य सदस्यों को उसके शासन में रहने के लिए निर्देशित किया गया।

संस्थाप्यात्र सुतं ज्येष्ठमागरां प्रति निर्ययौ,
अमरेशः खानखानादाराणां हरणं व्यधात्।।
सुवासिनीवत्संतोष्य प्रेषयामास ताः पुनः।
खानखानास्याभ्दु तं तज्जातं शेखूमन्स्यापि।।

अर्थात् – महाराणा अमरसिंह द्वारा खानखाना की स्त्रियों का हरण किया, किन्तु उन्हें बहिन–बेटियों के समान सन्तुष्ट कर उन्हें वापस भेज दिया। इस बात को जानकर मुगल शासकों, खानखाना व शेखू को आश्चर्य हुआ, साथ ही इससे स्पष्ट होता है कि उसकी मेवाड़ के महाराणाओं द्वारा भारतीय संस्कृति में स्त्री के सम्मान के वर्चस्व को कायम रखा।

19 वीं शताब्दी तक आते–आते यहां की विशिष्ट राजनीति एवं सामाजिक संस्कृति ने राजस्थान के ताने–बाने के निरूपण को काफी हद तक प्रभावित किया है। इस राजनीति एवं सामाजिक ताने–बाने के पीछे न्यूनाधिक रूप में यहां की सामन्ती व्यवस्था एवं देशी राज्यों के निरन्तर आपसी संघर्ष एवं आन्तरिक षड़यन्त्र एवं स्थितियां रही हैं। राजस्थान की विशिष्ट राजनीतिक संस्कृति, निरन्तर युद्ध तथा तदनुरूप विशिष्ट सामाजिक ढांचे, जिसमे यहां के सामंतों की महत्वपूर्ण स्थिति थी, ने महिलाओं के स्तर को विशेष रूप से प्रभावित किया। इस परिवेश ने महिलाओं के अवसर एवं स्वतन्त्रता को सीमित किया, साथ ही व्यक्तिगत विकास को बाधित किया, कालान्तर में कई कुप्रथाएं यथा – पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बालिका वध, विधवाओं की स्थिति, स्त्री क्रय–विक्रय से स्त्रियों के स्तर में निरन्तर गिरावट आई। राजस्थान का सामन्त वर्ग 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पतनोन्मुख था इसलिए वह सामाजिक ढांचा जो सामन्तीय प्रणाली पर आश्रित था, खण्डित होने लगा। भारत में एक नया मध्यम वर्ग विकसित हो रहा था जो समाज सुधार का नेतृत्व कर रहा था। राजस्थान में इस प्रकार का एक

मध्यम वर्ग विकसित नहीं हुआ लेकिन भारतीय शिक्षा प्रणाली और आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव हुए बिना भी नहीं रह सकता था। 19वीं शताब्दी के अन्त तक राजस्थान में एक धनी व्यपारी वर्ग विकसित हो चुका था जो अंग्रेजी भारत में और राजस्थान में, दोनों जगहों पर विद्यमान था।

राजपूताना में विधिक एवं गैर–विधिक रूप से महिलाओं की सामाजिक समस्याओं के निराकरण की प्रक्रियाएँ सहगामी रही हैं। राजस्थान में कन्यावध, सती, बाल विवाह, अनमेल विवाह, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा, स्त्रियों का क्रय विक्रय के बहुप्रचलन ने सुधार कार्यो के लिए विवश किया ताकि इनमें समाज को मुक्ति दिलाई जा सके। सुधार की धारा का प्रवहा देशी शासकों, ब्रिटिश सरकार, सामाजिक संगठनों एवं व्यक्तियों के प्रयासों के माध्यम से हुआ। यहां विशेष बात ये है कि सामान्य धारणा के विपरीत देशी शासकों ने यदा–कदा महिलाओं को इन समसरूाओं से मुक्त कराने के लिए ब्रिटिश प्रयासों का अनुसरण करते हुए कार्य किऐ। एक प्रविधि एवं रणनीति में परिवर्तन आता है। उन्नीसवीं सदी में जहां देशी शासकों एवं ब्रिटिश सरकार द्वारा सामाजिक विधि निर्माण पर अधिक बल दिखाई देता है, वहीं बीसवीं शताब्दी में व्यक्तियों व संगठनों द्वारा जनचेतना एवं जनमत निर्माण के बाद विधिक प्रयास किए जाने की प्रवृत्ति उभरती है। पर अग्रगामी हो या अनुगामी, विधिक प्रयास रहे हें और महत्वपूर्ण रूप से रहे हैं। कई समाज सुधारकों का मत था कि कानूनी प्रावधान कुप्रथाओं के उन्मूलन के सर्वप्रमुख माध्यम रहे हैं। यहां यह भी उल्लेखीनय है कि विधि निर्माण के माध्यम से इन जघन्य प्रथाओं की सामप्ति की पहल ब्रिटिश प्रभाव से कहीं पहले 18वीं शताब्दी में भी देशी शासकों के प्रयासों के रूप में हमारे सामने आती है जो परम्परागत इतिहास दृष्टि से अप्राप्य है जिसमें प्रायः ऐसे प्रयासों का एकल श्रेय ब्रिटिश सरकार को दिया जाता रहा है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में होने वाले सुधार आन्दोलनों में आर्य समाज का राजस्थान पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। आर्य समाज उत्तरी भारत में एक प्रभावी सुधार आंदोलन के रूप में अग्रणी रहा। आर्य समाज के संस्थाापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने राजस्थान को विशेष रूप से अपना कार्यक्षेत्र बनाया। स्वामी दयानन्द सरस्वती का ध्यान राजस्थान के राज्यों को उनके प्राचीन गौरव की याद दिलकर, सामाजिक दोषों से जन सामान्य को जागरूक करने की ओर गया। आर्य समाज व उसके प्रतिनिधियों ने समाज में स्त्री की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया। आर्य समाज ने बाल विवाह, वद्धि अनमेल विवाह, विधवा विवाह निषेध, पर्दा प्रथा, बहु विवाह और वैश्या उद्धार आदि महिलाओं से सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं में सुधार की ओर ध्यान दिलाया तथा उनके उचित समाधान के लिए चेतना पैदा की।

1877 ई. में उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह की अध्यक्षता में मेवाड़ के 32 प्रमुख सामन्तों एवं राज्याधिकारियों की एक सभा आयोजित की गई जिसमें राज्य में विवाह सम्बन्धी नियम बनने पर विचार विमर्श किया। फलतः 1877 में देश हितेषणी सभा की स्थापना की गई। यही एक मात्र ऐसी संस्था थी जिसमें शासक और सामन्तों ने पहली बार सुधार कार्यो को लागू करने की पहल की। देश हितेषणी सभा में सामाजिक सुधार संबंधी नियमों का निर्धारिण किया गया। देश हितेषणी सभा में राजपूतों में उत्पन्न विवाह सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करने के लिए दो प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए (1) राजपूतों में विवाह के अवसर पर खर्च सीमित कर दिया गया।

(2) राजपूतों, ब्राह्मणों, महाजनों में बहु विवाह के सम्बन्ध में नियम बना दिए गए। त्याग केवल उन्हीं राजपूतों द्वारा देय होगा जिनकी वार्षिक आय 500 रू. से अधिक हो, और उस स्थिति में भी त्याग की राशि वार्षिक आय के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। पुत्रियों और ज्येष्ठ पुत्र के विवाह पर खर्च होने वाली राशि की अधिकतम सीमा वार्षिक आय का 25 प्रतिशत निर्धारित कर दी गई। दूसरे पुत्र के विवाह पर 10 प्रतिशत और निर्धारित खर्च का 1 प्रतिशत त्याग में दिया जा सकता था। राज्य से बाहर के चारणों को त्याग देय नहीं था। ब्राह्मणों और महाजनों के लिए वार्षिक आय का 25 प्रतिशत विवाह पर खर्च किया जा सकता था। बहुविवाह के लिए ब्राह्मण और महाजनों को 40 वर्ष की आयु तक दूसरे विवाह की अनुमति थी यदि पहली पत्नी से कोई संतान नही हो तो। राजपूतों के लिए दो विवाह सामान्य माने गए और 45 वर्ष की आयु तक तीसरे विवाह की अनुमति दे दी गई यदि उसके कोई संतान नह हो तो। निर्धारित सीमा से अधिक आयु वाले ब्राह्मणों और महाजनों को दूसरा और राजपूतों को तीसरा विवाह करने के लिए सभा से अनुमति लेनी होती थी।

1879–81, 1882––85 और 1886–87 में कर्नल वाल्टर मेवाड़ का रेजिडेन्ट रहा। नवम्बर 1881 के चित्तौड़ दरबार में वाल्टर उपस्थित था। अतः वाल्टर ने समाज में फैली हुई सुधार भावना एवं जागरूकता को आर्य समाज के नेतृत्व की अपेक्षा अंग्रेजी नेतृत्व में संचालित करने का प्रयत्न किया। वाल्टर ने 18 मार्च, 1888 को अजमेर में राज्यों के प्रभावी सामन्तों, सरदारों एवं चारणों के प्रतिनिधियों की सभा बुलाई और उसमें सुधार कार्यो के

लिये सुझाव आमंत्रित किए। अधिकांश राज्यों के प्रतिनिधियों ने विवाह एवं मृत्यु से सम्बन्धित खर्चो में कमी करने का सुझाव दिया। आपसी विचार विमर्श के बाद ए.जी.जी. वाल्टर की अध्यक्षता में राजपूतों एवं चारणों के लिये वाल्टरकृत राजपुत्र हितकारिणी सभा की स्थापना की गई।

कन्यावध उन्मूलन के प्रयास

18वीं और 19वीं शताब्दी के मध्य तक कन्या वध की प्रथा मेवाड़ में सीमित मात्र में प्रचलित थी। कनर्ल टॉड के अनुसार विवाह अवसर पर कन्या और वर पक्ष के राजपूतों द्वारा चारणों को विदा के पूर्व दान दक्षिणा के रूप में मोहर, वस्त्र आदि दिये जाते थे। यह धनराशि 'त्याग' के रूप में मानी जाती थी और इस त्याग प्रथा को कन्या वध का कारण माना गया। ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्टों ने इसे ही दोहराया है। श्यामलदास ने त्याग को कारण न मानते हुए सगाई के वक्त लड़की के पिता द्वारा दिये गये टीका को इसका कारण माना है। डॉ. ओझा ने राजपूतों में लड़की के विवाह में अत्यधिक व्यय होना इसका कारण माना है। इन सभी कारणों के अतिरिक्त राजपूतों में अपनी पुत्री का विवाह अपने से उच्च घराने अथवा किसी शासकीय या सामन्ती घराने में करने की लालसा रखना था जिसके कारण उन्हें उच्च घराने के अनुरूप त्याग व दहेज जुटाना अत्यन्त कठिन था। सामाजिक कुरीतियों की परम्परा में कन्यावध की कुप्रथा से मेवाड़ कहीं ना कहीं ग्रसित रहा है। कन्यावध जघन्य अमानवीय प्रथा थी, इसके उन्मूलन हेतु 18वीं शताब्दी में जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह, जोधपुर (मारवाड़) के महाराजा बख्तसिंह तथा प्रतापगढ़ (मेवाड़) के राजा व बांसवाड़ा के रावल जैसे देशी शासकों ने अपने क्षेत्रों में इस पर पाबंदी लगाई। यह इन शासकों द्वारा उठाया गया अत्यन्त प्रगतिशील कदम था, जिन्होंने सामाजिक मुद्धों पर कानून निर्माण को अपनाया।

यद्यपिक न्यावध से संबंधित विधि निर्माण के लिए मेजर लुडलो को महत्वपूर्ण योगदान देने वाला माना जाता है पर वस्तुतः देखा जाए तो राजपूताना की अधिकांश रियासतों में कन्यावध के विरूद्ध ऐसे कदम ब्रिटिश प्रयासों से पहले प्रारम्भ किए गए। मेजर लुडलो के प्रयास उस समय प्रतीकात्मक रूप से फलीभूत हुए कहे जा सकते हैं, जब मार्च, 1847 को जयपुर रियासत में, जहां यह प्रथा कम प्रचलित थी, राजपूतों में कन्यावध पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कानून बनाया गया। पर कानून का प्रभाव नगण्य प्रायः रहा और प्रथा गुप्त रूप से यथावत जारी रही।

मेवाड़ के उदयपुर के राणा सरदारसिंह ने 1844 ई. में और राणा स्वरूपसिंह ने 1850 ई. में तथा सन् 1860 ई. में अनेक बार राजकीय आदेश जारी किए। इन आदेशों के अन्तर्गत दूसरे राज्यों के चारण भाटों को उदयपुर में आने से रोक दिया गया तथा उदयपुर के चारण भाटों को अन्य राज्यों में त्याग मांगने के लिए जाना निषिद्ध कर दिया गया। इसके अलावा उदयपुर में आय का 9 प्रतिशत भाग त्याग के रूप में निर्धारित कर दिया गया। सन् 1888 ई. में राजपूताना के ए.जी.जी. कर्नल वाल्टर ने 'वाल्टर राजपूत्र हितकारिणी सभा' की स्थापना की। सभी की प्रथम बैठक में प्रस्ताव पारित किया गया कि प्रत्येक राजपूत जागीरदार अथवा शासक अपनी वार्षिक आय 9 प्रतिशत से अधिक त्याग नहीं देगा। इस प्रस्ताव को प्रभावी बनाने के लिए वाल्टर ने आंग्ल प्रशासन को राज्य में सतर्क रहने के आदेश प्रदान किये। इसके बाद सभी जातियों ने जाति समूहों में सामाजिक एवं आर्थिक व्यय को नियन्त्रित करने के लिए जाति विधानों का निमार्ण किया। परन्तु इन सुधारों के परिणाम 19 सदी के बाद स्पष्ट हुए। महाराणा सरदारसिंह ने 24 मई 1884 को सभी जातियों में इस प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया था। शनैः शनैः इन घटनाओं में कमी आती गई। महाराणा स्वरूपसिंह ने 1855 व 1860 में त्याग प्रथा बन्द करने व सामाजिक आर्थि प्रदर्शनी की प्रतिस्पर्धा रोकने के लिए आदेश जारी किये। इन आदेशों से त्याग प्रथा में कमी हुई। फलस्वरूप कन्यावध में भी कमी होने लगी।

कन्या वध के संबंध में अंग्रेजी सरकार का दृष्टिकोण भिन्न था तथा अनेक अंग्रेज अधिकारियों ने मेवाड़ में अंग्रेजी सुधारात्मक नियमों के पश्चात् इसका न होना स्वीकर किया। अंग्रेज अधिकारी कैप्टन शॉवर ने भी 24 अक्टूबर, 1854 ई. को अपनी रिपोर्ट में कन्या वध का कई वर्षो से प्रचलन न होना स्वीकार किया। राज्य की पोलिटिकल रिपोर्टो में भी कन्या वध के प्रचलित न होने के बात कही गयी। अतः इन रिपोर्टो के आधार पर यदि सन् 1860 ई. के बाद कन्या वध का प्रचलन नहीं रहा तो सन् 1861 के बाद जनसंख्या में वृद्धि होनी चाहिए थी तथा जनसंख्या के अनुपात में स्त्रियों का अनुपात भी बढ़ना चाहिए था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ और यह अनुपात स्थिर रहा। इस संबंध में 1881 ई. के पूर्व के आंकड़े उपलब्ध नहीं होते है, लेकिन इसके बाद के आंकडों में पुरूष–स्त्री अनुपात स्थिर रहता है। इससे स्पष्ट है कि अंग्रेजी रिपोर्टस और उनका विवरण अंग्रेजों की इस कुप्रथा को समाप्त करने का श्रेय प्राप्त करने का ही रहा।

14 अगस्त, 1855 को कैप्टन बेबेन और 27 अगस्त, 1862 को पोलिटिकल एजेन्ट लारेन्स ने जहाजपुर इलाके के खैराड़ के क्षेत्र में पुरबिया, मीणा जाति में व्यापक रूप से कन्या वध के प्रचलन की रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस तर्क का

आधार जनसंख्या में स्त्रियों का अनुपात कम होना था। यद्यपि अंग्रेजों ने महाराणा से कहकर कन्या वध को अवैध घोषित करवा दिया परन्तु मीणा जाति के व्यक्तियों ने इस कुप्रथा के प्रचलन से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि उनमें 'त्याग', 'टीका' की प्रथा प्रचलित नही थी बल्कि विधवा पुनर्विवाह और वधू मूल्य का प्रचलन होने के कारण लड़कियों की अधिक मांग थी। लेकिन अंग्रेजों ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया। जहाजपुर क्षेत्र में 1857, 1860 और 1862 की अवधि में मीणा जाति के विद्रोह होते रहे। अतः इन विद्रोहों को कुचलने तथा कन्या वध की समाप्ति के लिए इस जाति को चेतावनी दी गयी। इससे स्पष्ट है कि यहां अंग्रेजों ने जबरदस्ती कन्यावध का प्रचलन बताकर हस्तक्षेप किया।

टॉड के बाद 19वीं शताब्दी के राजस्थानी लेखकों और पोलिटिकल एजेन्टों ने भी इसका वर्णन किया है। राजस्थानी लेखकों – श्यामलदास, गौरीशंकर, रेउ आदि ने इसका प्रचलन स्वीकार किया है परन्तु इन लेखकों के विवरण में साक्ष्यों एवं मतैक्य का पूर्णतया अभाव है। 19वीं सदी का चौथा दशक ईसाई मिशनरियों के राजनीति पर प्रभुत्व का पहला दशक था। उन्होंने कुछ कुरीतियों को भारतीय समाज में व्यापक बताना आवश्यक समझा। कर्नल सदरलैण्ड, कैप्टन लुडले, मेजन जैक्सन, कैप्टन बेबेन, वैब आदि पोलिटिकल एजेन्टों और ए.जी.जी. ने भी राज्यों में कन्यावध का अतिशयोक्तिपूर्ण एवं अंग्रेज छवि को उजागर करने का प्रयास किया है।

सती प्रथा उन्मूलन के प्रयास

कुलीय रक्त की शुद्धता और प्रतिष्ठा को मध्यकालीन असुरक्षा के वातावरण में सुरक्षित रखने के लिए सती प्रथा का प्रचलन राजपूतों में व्यापक था। हिन्दुओं की उच्च कुछ जातियों में भी यह प्रथा कुछ मात्रा में प्रचलित थी लेकिन 19वीं सदी के आरम्भ में इस प्रथा की व्यापकता तथा प्रसार कम हो रहा था। मेवाड़ के उदयपुर में महाराणा भीमसिंह की 1828 में मृत्यु पर 4 रानियां, 4 पासवान और जवानसिंह की 1838 में मृत्यु पर 2 रानियां, 3 पासवान और 3 दासियां सती हुई थी। लेकिन 1842 में सरदारसिंह की मृत्यु पर केवल 1 ख्वास ही सती हुई और 1861 में स्वरूपसिंह की मृत्यु पर 1 दासी को ही सती होने के लिए फुसलाया गया। इन तथ्यों से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि सती प्रथा में कमी हो रही थी और यह स्वतः हो रहा था कोई बाहरी दबाव इस समय नहीं था।

मेवाड़ की सामाजिक संरचना में हम स्त्रियों से संबंधित इस कुप्रथा का अध्ययन कर चुके हैं। राजस्थान में सती प्रथा के कुछ उल्लेख प्राचीनकाल से प्राप्त होते हैं, लेकिन मध्यकाल से यह प्रथा अत्यधिक विस्तार पा गई थी। वस्तुतः सम्पूर्ण राजपूताने प्रान्त में ही यह प्रथा प्रचलित थी, फलस्वरुप मेवाड़ भी उसका अपवाद नही था। पति के मरने पर उसका शव या उसके किसी अवशेष चिह्न के साथ शोकग्रस्त पत्नी जलकर भस्म हो जाती थी, उसे 'सती' या 'महासती' होना कहा जाता था। सामान्यतः राजपूत जाति में इस प्रथा का सर्वाधिक प्रचलन था।

मेवाड़ में मृतक संस्कार के संदर्भ में आत्मदाह करने की प्रथा भी समाज में प्रचलित थी। मुस्लिम आक्रमणों के शहीद हुए वीरों की पत्नियां स्वसतित्व रक्षार्थ बारहवीं शताब्दी से जौहर द्वारा आत्मदाह कर लेती थीं जो कालान्तर में सती प्रथा के रूप में प्रतिस्थापित हुई।

उल्लेखनीय है कि मेवाड़ में अनेक सतियों की मान्यता रही है, जो आलोच्य काल और उससे पूर्व में पनपी। सती हो जाने की प्रथा को अवैदिक, अमानवीय तथा अवांछनीय मानते हुए सन् 1829 ई. में इस पर कानूनन प्रतिबन्ध लगाया गया था, किन्तु लुके–छिपे अन्य कुरीतियों की तरह यह प्रथा भी राजस्थान में प्रदेश में चलती रही।

18वीं शताब्दी के उतरार्द्ध और 19वीं शताब्दी के पूवार्द्ध में तो प्रति वर्ष सैंकड़ों स्त्रियां सती हो जाया करती थी। अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य विचारों के प्रचार के परिणामस्वरूप इस प्रथा की निन्दा होने लग गई। भारत के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने सर्वप्रथम सती प्रथा को समाप्त करने के बारे में विचार किया था। किन्तु राजपूताना के राज्य उदयपुर की आड़ लेते रहे। गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने महाराणा जवानसिंह व उसे उत्तराधिकारी सरदारसिंह को इस प्रथा को बंद करने का परामर्श दिया। परन्तु राज्य के शासन पर सामन्तों के सामाजिक–राजनैतिक दबाव व रूढिवादी सामाजिक वातावरण के फलतः इस परामर्श पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। 1842 ई. में राणा स्वरूपसिंह के समय ब्रिटिश सरकार द्वारा इस प्रथा को समाप्त करने कके लिए प्रयास किये जाते रहे। 1859 ई. तक इस विषय पर राणा तथा भारत सरकार के मध्य तर्क–वितर्क होते रहे। अंत में ब्रिटिश सरकार द्वारा मेवाड़ से सन्धि विच्छेद करने का पत्र लिखने पर राणा द्वारा निषेधाज्ञा प्रसारित करने की स्वीकृति दी गई थी। किन्तु इसके बाद भी स्त्रियां सती होती रही। उदयपुर राज्य में सती प्रथा के प्रचलन की जड़े इतनी गहरी थी कि महाराणा स्वरूपसिंह के निधन के बाद उनकी पत्नियों द्वारा उनके शव के साथ जलने का सम्मान अस्वीकार करने के उपरान्त उनके पीछे एक दासी कानून विरुद्ध सती हुई।

पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल टॉड अपने व्यक्गित प्रभाव से न तो बिजौलिया में सती की घटना को रोक पाया और न ही सन् 1828 में महाराणा भीमसिंह की मृत्यु के उपरान्त उनकी पत्नी को सती होने से रोक पाया। सन् 1842 में महाराणा स्वरूपसिंह के शासनकाल में मेवाड़ के पोलिटिकल एजेण्ट कर्नल सदरलैण्ड ने ब्रिटिश सरकार को पत्र लिखा कि मेवाड़ में सती प्रथा शीघ्र समाप्त हो जायेगी। महाराणा स्वरूपसिंह के शासनकाल में भी ब्रिटिश शासन अपने प्रयासों में असफल रहा। उदयपुर में सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कराने में अंग्रेज अधिकारियों ने लम्बे समय तक प्रयास किया। सन् 1846 में ब्रिटिश सरकार ने उदयपुर राज्य के वार्षिक खिराज में दो लाख रूपये की कमी कर दी। सन् 1854 में महाराणा पर पुनः दबाव डाला गया। सन् 1858 ई. में सम्मानजनक उपाधियों का उपयोग बन्द करने की चेतवानी दी गयी तथा ए.जी.जी. ने शिष्टाचारी मुलाकात बन्द कर दी। विक्टोरिया की घोषणा की शरण लेकर सती के प्रचलन में अहस्तक्षेप का तर्क दिया गया तो उसे यह स्पष्ट बता दिया गया कि यह कानून सती जैसी कुरीति के प्रचलन पर लागू नहीं हो सकता था। अन्त में 1860 में महाराणा ने आदेश प्रसारित कर दिये। सन् 1862 में महाराणा शम्भूसिंह के शासनकाल में सती प्रथा को बन्द करने के संबंध में रीजेन्सी कौन्सिल के अध्यक्ष और मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट ईडन ने सख्त कदम उठाये और राज्य के सभी पटेल तथा जागीरदारों के नाम आज्ञा पत्र भेजकर लिखा कि सती की घटना घटित होने पर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व तथा उसका हर्जाना पटेल या जागीरदारों से वसूल किया जाएगा तथा उदयपुर में इसे गैर कानूनी घोषित किया गया। 1838 में उदयपुर के महाराणा जवानसिंह की मृत्यु के बाद सती होने पर लार्ड आकलेण्ड द्वारा ए.जी.जी. एलविस को निर्देश दिया कि वह महाराणा सरदारसिंह को आगे से ऐसी घटना घटित न होने देने के लिय तैयार करे। लेकिन इसके बावजूद सरदारसिंह अपने राज्यकाल में इस परम्परागत कुप्रथा को रोकने में असमर्थ रहा, जबकि सरदारसिंह अंग्रेजों के सहयोग से ही शासक बने थे। इतने प्रयासों के बावजूद भी सती की घटनाएं घटित होती रहीं। इसके बाद अंग्रेज अधिकारियों ने नये आदेशों के अन्तर्गत नियमों का उल्लंघन करने पर मदद देने वालो से जुर्माना वसूल करके कारावास की सजा देकर या पदच्युत करके एंव गांव खालसा करके दण्डित किया।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि सती होने वालियों की संख्या में कमी आयी। दूसरे, अंग्रेज अधिकारियों के प्रयत्न के बावजूद भी सती प्रथा की घटनाओं को नहीं रोका जा सका। तृतीय, शासकों एवं सामन्तों का सहयोग पाकर ही सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया जा सका। चतुर्थ, मेवाड़ में अंग्रेजों का राजनीतिक प्रभाव कायम हुआ। इस परम्परागत प्रथा के गढ़ उदयपुर राजघराने में 1836 के बाद कोई रानी सती नहीं हुई। 19वीं शताब्दी के अन्त तक यह अमानवीय प्रथा लगभग समाप्त हो गई परन्तु सती घटनाएं कम होने के लिए इसका श्रेय किसी विदेशी या ब्रिटिश सरकार को नहीं दे सकते। यद्यपि अंग्रेज लेखकों और पोलिटिकल अधिकारियों द्वारा सन् 1829 में सती निषेध अधिनियम को सती प्रथा के कम होने के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

अतः सती प्रथा की रोकथाम के संबंध में अंग्रेज अधिकारियों का दृष्टिकोण एक दर्शक का ही रहा और अपने राजनीतिक स्वार्थों के कारण अंग्रेज अधिकारी यहां के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे। यद्यपि 19वीं शताब्दी के अन्त सती प्रथा का प्रचलन कम हुआ तथापि इस प्रथा की पूर्णतः समाप्ति 20वी शताब्दी में ही हो सकी। इस कुप्रथा के समाप्त होने पर स्त्रियों में जागृति आयी और उनकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अथर्ववेद, 14.14*
2. *राजप्रशस्ति, 4.32-33*
3. *राठैड़, प्रदीपसिंह : मेवाड़ का ऐतिहासिक संस्कृत साहित्य एवं संस्कृति, पृ. 224*
4. *यादव, संतोष : 19वीं व 20वीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति, पृ. 133*
5. *यादव, संतोष : 19वीं व 20वीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति, पृ. 134*
6. *महर्षि, लेखराम : दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, पृ. 600-601*
7. *बारहठ, कृष्णसिंह : कृष्णसिंह का जीवन चरित्र एवं राजपूताने का अपूर्व इतिहास, भाग 1, पृ. 84*
8. *यादव, संतोष : 19वीं व 20वीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति, पृ. 138-139*
9. *जैन, एम. एस. : आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 263*
10. *श्यामलदास : वीर विनोद, पृ. 2235*
11. *वाल्टर सभा की रिपोर्ट, 1888-1889*
12. *व्यास, प्रकाश : आधुनिक मेवाड़ का इतिहास, पृ. 563-565*

ISSN 2277-5587

13. यादव, संतोष : 19वीं व 20वीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति, पृ. 175–176
14. फोरेन एण्ड पोलिटिकल, न. 17 अप्रैल, 1847, न. 47–49
15. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, उदयपुर रिकार्ड, मेहता संग्रामसिंह संग्रह, फाइल न. 572
16. कन्छल, मंजू : उन्नसवी शताब्दी में सामाजिक परिवर्तन, पृ. 69
17. व्यास, प्रकाश : आधुनिक मेवाड़ का इतिहास, पृ. 565–66
18. पोलिटिकल कन्सलटेशन, दिसम्बर, 1855, न. 188–190; जून, 1862, न. 30–31
19. यादव, सन्तोष : उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति, पृ. 166–173
20. पोलिटिकल कन्सलटेशन, 3 अक्टूबर, 1838, न. 23–ए
21. वही, पृ. 168

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता; संवेदना के नए आयाम (कवि संजय कुंदन, हरिओम राजोरिया, हरे प्रकाश उपाध्याय एवं कवयित्री निर्मला पुतुल के विशेष सन्दर्भ में)

shodhshree@gmail.com

अंसारी मोहम्मद इकराम
शोद्यार्थी, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटन (गुजरात)

शोध सारांश

इक्कीसवीं सदी अपने साथ कई चुनौतियाँ लेकर आई है। पूंजीवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी, लैंगिक भेद वगैरा नए समय में नया भेस डालकर सामने आये हैं। इस सदी के हिन्दी कवियों ने ऐसी तमाम विसंगतियों को ललकारा है। इन्टरनेट के बेशुमार फायदे हैं पर नुकसान भी है। आज भावनाएं भड़काने में तथा झूठ फ़ैलाने में धडल्ले से इसका प्रयोग हो रहा ह। विकास आवश्यक है पर इसके नाम पर प्रकृति एवं मानव हितों की नजरंदाजी कतई योग्य नहीं ह। बाजारवाद हमारे व्यक्तिगत जीवन में दखल देने लगा है द्य साथ ही नए दौर में पुरानी रूढ़ियाँ भी टूटी ह। सदियों से शोषण झेल रहा समाज आज खुलकर साहित्य के मार्फ़त अन्याय के दस्तावेज पेश कर रहा है द्य कुलमिलाकर इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता कई स्तरों पर संवेदनात्मक सम्बन्ध जोड़ने में सफल हुई है द्य

***संकेताक्षरः** इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता, इक्कीसवीं सदी के हिन्दी युवा कवि, इक्कीसवीं सदी की कविता और बदलते सरोकार, इक्कीसवीं सदी की कविता; बदलते तेवर, आज की कविता, समकालीन कविता।*

निरंतर चलने वाली समय की यात्रा ने हमें इक्कीसवीं सदी में लाकर खड़ा कर दिया ह। हम चाहें या न चाहें समय के साथ चलाना हमारी नियति है और यह नियति हमेशा की तरह कई चुनौतियां अपने साथ लेकर आई है। यह चुनौती है पूंजीवाद की जो पहले के मुक़ाबले कई गुना ज्यादा भारतीय बाजार पर छाया हुआ ह। यह चुनौती है सांप्रदायिकता की, एक ऐसी अंधी सांप्रदायिकता जो कभी भी, कही भी, किसी की भी पुरी दुनिया, पुरा जीवन तबाह करने पर अमादा रहती ह। इसी प्रकार भ्रष्ट राजनीति, जातिवाद, गरीबी, बेरोजगारी एवं स्त्री शोषण ने आज इक्कीसवीं सदी में भी अपना वर्चस्व कायम रखा है, हां इनका लबादा जरुर बदल गए हैं जो पहले से ज्यादा क्रूर और भयावह ह। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि नैतिकता का जितना क्षरण आज हो रहा है शायद पहले कभी नहीं हुआ। आज के कवियों ने इन सारी चुनौतियों को बड़े आदर और साहस के साथ स्वीकार करते हुए इक्कीसवीं सदी मे अपनी मजबूत स्थिति दर्ज करवाई ह। समय की सारी विसंगतियों से जूझता हुआ आज का कवि निराश और हताश नहीं है बल्कि इस कठिन समय में उसकी सृजनशीलता और उभर कर सामने आ रही ह। इक्कीसवीं सदी मे जनधर्मी युवा कवियों की एक ऐसी जमात खड़ी हुई है जो शोषित–वंचित की वेदना को बखूबी संवेदना में बदल रही ह।

साहित्य संवेदनशील व्यक्त्यिों के अनुभूति का प्रमाण है। साहित्य–सर्जन के मूल मे यही संवेदना हमेशा से अहम भूमिका अदा करती आई है, आज भी कर रही है और हमेशा करती आएगी। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में संवेदना की अनेक तहें–परतें हैं, और उतनी ही विविधता भी। एक कवि के लिए सजग रहना बहुत जरुरी है। यह सजगता तभी आ पाएगी जब कवि का सामाजिक सरोकार गहरा होगा। आज की कविता में सामाजिक सरोकार की गहराई देखते ही बनती है। इक्कीसवी सदी का कवि जीवन की मार्मिकता को पहचान कर बखूबी इसे कविता में ढाल रहा है। यह कवि गहन परिक्षण के बल पर

समय को पकड़ने में सफल हुऐ है। अतः इक्कीसवीं सदी की कविता का पटल अत्यंत व्यापक एवं सार्थक बना है।

इंटरनेट के इस युग में सोशल मिडिया ने अपनी मजबूत जगह बनाई है। इसके फायदे तो हैं लेकिन नुकसान भी कुछ कम नहीं है। अफवाह और नफ़रत फ़ैलाने के लिए आज सोशल मिडिया का धड्ल्लेसे इस्तेमाल हो रहा है। इसके जरिऐं भावनाओं को उकसा कर सामाजिक और धार्मिक सदभाव बिगाड़ना आसन हो गया है। आज सोशल मिडिया पर वायरल एक झूठ ही काफी है सदियों के सामाजिक ताने–बाने को तहस नहस करने के लिए। विडंबना यह है कि इस झूठ को योजना के तहत फैलाया जाता है ताकि लोग आपस में लड़ें और मर। वही यह सोशल मिडिया बाज़ार के हाथो बिका हुआ ह। यहाँ हमारी हर गतिविधि पर बारीक़ नजर रखी जाती है ताकि हमारी पसंद नापसंद के बारे में जाना जा सके। सोशल मिडिया ने हमारी व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर पहरा बिठाया ह। कवि संजय कुंदन ने कविता 'फेसबुक' में इस समस्या को अभिव्यक्त किया है–

तुम्हें पढ़ लिए जाने के बाद तय होता है
कि तुम्हें किस श्रेणी में रखा जाए
मतलब यह कि तुम किस तरह के इन्सान हो
आखिर तुम्हे क्या क्या बेचा जा सकता है
कैसा जूता, कैसी कमीज
कैसी टीवी और किस तरह की शराब।
बहुत उपयोगी होती है यह जानकारी
सौदागरों के लिए। [1]

साथ ही सोशल मिडिया पर आंकड़ों का जबरदस्त खेल खेला जाता है। जिसके तहत एक मिडिया सेल खड़ा किया जाता है। इसका काम फर्जी लाइक और कमेंट का अम्बार लगाना है जिस किसी की झूठी शान गढ़ी जा सके। यह सारा काम ठेके पर वेतन देकर करवाया जाता है–

तुम उसे करते हो ना पसंद यहाँ
वह पैसो की ताकत से नापसंद को बदल देता है पसंद में
वह करोड़ों भाड़े के टिप्पणीकार जूता सकता है
अपने विचारों के पक्ष में
वह वेतन पर, ठेके पर प्रतिकियाबाज इकट्ठा कर सकता है
और कह सकता है कि उसे पूरी दुनिया पसंद करती है। [2]

आज विकास के नाम पर काफी कुछ हो रहा है। इस की आवश्यकता भी है। किन्तु यह विकास अन्याय और स्वार्थ पर आधारित नहीं होना चाहिए। फिर चाहे यह अन्याय पर्यावरण के साथ हो या इन्सान के साथ। इक्कीसवीं सदी में होने वाले विस्थापन के कई कारणों में से एक कारण यह विकास भी है। इस तरह के विस्थापम में मीलों का सफ़र तय नहीं करना पड़ता, लोग एक ही शहर, एक ही गाँव में विस्थापित हो रहे हैं। कही नदियों पर बांध बनाने के नाम पर लोगों का बसेरा छिना जा रहा है तो कही बड़े–बड़े माल, फ्लाईओवर ओए एक्सप्रेस–वे बनाने के नाम पर। हरिओम राजोरिया ने विस्थापितों की इसी टीस को अपनी कविता के माध्यम से बयां किया है–

जाते वक्त नहीं निकली
एक टीस भर ही मन में
तिनका–तिनका करके बनाई जो जगह
हट गयी एक पल में
इतनी बड़ी पृथ्वी पर
उसका अपना एक हिस्सा था
टुटा फूटा माटी का बना एक छोटा कच्चा घर
जिन्हें वह कहता था अपनी जगह। [3]

वैश्विकरण ने एक विश्व बाज़ार को जन्म दिया है। जिसके तहत पुरा विश्व एक बाज़ार में तब्दील हो रहा है। पहले लोग जरुरी चीजों के लिए मेले या हाट में जाया करते थे अब माल में जाते हैं। इससे भी आगे आज बाज़ार हमारे घरों और कमरों तक में प्रवेश कर गया है, आनलाइन खरीदी के माध्यम से। लेकिन बाजारों में सामान की खरीद फरोख्त हो वहां तक तो ठीक है, चिंता तब होती है जब इन बाज़ारों में मानवीय मूल्यों को ख़रीदा और बेचा जाता है। इन्सानी जीवन पर हावी इस बाजारवाद पर व्यंग्य कसरे हुए कवि हरे प्रकाश उपाध्याय लिखते हैं–

माँ का दूध कितने किलों बिकना चाहिए भाइयों !
सोचो एक दिन सब लोग।
धरती ने शुरु करदी दुकानदारी तो क्या होगा ! [4]

इक्कीसवीं सदी में स्त्रीवादी लेखन का काव्यात्मक रूप काफी प्रबल हुआ है। आज स्त्री अपने अधिकारों के प्रति ज्यादा सजग है। लोकलाज की जंजीरों को तोड़ कर आज की स्त्री जीना सिख भी रही है और सिखा भी रही है। अतः आज की कवयित्री अपने कलम से स्त्री समस्याओं को तो उकेर ही रही है साथ–साथ समाज की अन्य विसंगतियों पर भी बराबर लिख रही है। निर्मला पुतुल एक ऐसी ही कवयित्री हैं जिनके शब्द व्यवस्था की विद्रूपता पर करारा प्रहार करते हैं। आदिवासी समाज के कई रंग निर्मला पुतुल की कविता मे पाए जाते हैं। आदिवासी समाज को जागरूक करते हुए वह लिखती हैं–

शाम घिरते ही अपनी बस्तियों में उतर आए
उन खतरनाक शहरी जानवरों को पहचानो चुड़का सोरेन पहचानो
पांव पसारे जो तुम्हारे ही घर मे धुसकर बैठे हैं !!
तुम्हारे भोलेपन की ओट में

इस पेचदार दुनिया में रहते
तुम इतने सीधे क्यों हो चुड़का सोरेन ??[5]

निर्मला पुतुल ने केवल आदिवासी समाज को ही लक्ष में लेकर कविता नहीं रची, इससे इतर भी कई मुद्दों पर लिखती रही ह। वें पुरुष के उस स्वार्थपूर्ण नजरिए को उजागर करती हैं जहा स्त्री को केवल एक वास्तु के रूप मे देखा जाता है–

तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के
मन की गांठे खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास
पढ़ा है कभी
उसकी चुप्पी की दहलीज पर बैठ
शब्दों की प्रतीक्षा में उसके चेहेरे को द्य[6]

वस्तुतः इक्कीसवीं सदी की काव्य संवेदना का पाट काफी दूर तक फैला है। आज के कवि जीवन के मार्मिक पहलुओं को बखूबी परख कर अभिव्यक्त कर रहे हैं। यह कविता मनुष्य की मूल संवेदना की रक्षक है जो इन्सान को सही मायने में इन्सान बनने की प्रेरणा देती ह।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *संजय कुमार कुंदन– फेसबुक, ऑनलाइन कविता कोष, लिंक–http:@@kavitakoshorg@kk/फ़ेसबुक–/–संजय–कुंदन*
2. *वही*
3. *हरिओम राजोरिया, 'इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य रु समय,समाज और संवेदना', सम्पादक– रविन्द्रनाथ मिश्र,लोकभारती प्रकाशन– 2011, पृ. 61*
4. *हरे प्रकाश उपाध्याय, 'इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य रु समय, समाज और संवेदना' सम्पादक– रविन्द्रनाथ मिश्र पृ. 47*
5. *निर्मला पुतुल– चुड़का सोरेन से, अ नलाइन कविता कोषhttp:@@kavitakoshorg@kk/–चुड़का–सोरेन–से/–निर्मला–पुतुल*
6. *निर्मला पुतुल– क्या तुम जानते हो, अ नलाइन कविता कोषhttp:@@kavitakoshorg@kk/–क्या–तुम–जानते–हो/–निर्मला–पुतुल*

ISSN 2277-5587

अंतर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा स्थापना में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका

दिनेश कुमार जांगिड़
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

संयुक्तराष्ट्र संघ अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को उग्र होने से रोकने के लिए एक सेफ्टी बाल्व (Fafety Valve) का काम करता है। राल्फ बन्चु के अनुसार संयुक्तराष्ट्र संघ की प्रमुख विशेषता यह है कि यह राष्ट्रों को बातचीत में व्यस्त रखता है। वे जितनी अधिक देर तक बात करते रहें, उतना ही अधिक अच्छा है क्योंकि उतने समय युद्ध टल जाता है। संयुक्तरष्ट्र संघ का मूल ध्येय अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बनाये रखना तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जहाँ कहीं भी आक्रमण हो वहाँ सुरक्षा के लिए सामूहिक कार्यवाही करना है। चार्टर में अनुच्छेद 33 से 38 तक अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शान्तिपूर्ण समझौते की व्यवस्थाएं की गयी हैं। जब से संघ की स्थापना हुई है तब से आज तक, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा सम्बन्धी अनेक विवाद इसके समक्ष लाये गये हैं। इन विवादों को सुलझाने में यद्यपि संघ सदैव सफल नहीं हुआ, तथापि अनेक बार युद्ध की सम्भावनाओं को टालकर विश्व शान्ति की दिशा में उसने उल्लेखनीय भूमिका निभायी है।

संकेताक्षरः *विश्व शान्ति, सुरक्षा स्थापना, संयुक्त राष्ट्र संघ, अन्तराष्ट्रीयशान्ति, शान्ति सेना।*

संयुक्तराष्ट्र संघ की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर वर्ष 1945 में हुई। इसका प्रमुख उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करना था। विश्व में शांति का वातावरण बनाने के लिए लंबे समय से प्रयास होते रहे, लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध (सन् 1914–1918) के दौरान लाखों लोगों की अकारण मौत तथा अरबों रुपए की संपत्ति के विनाश से दुःखी होकर यह निर्णय किया गया कि राष्ट्र संघ की स्थापना की जाए ताकि भावी महायुद्ध की संभावना टाली जा सके। इस तरह अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति वुडरो विल्सन की पहल पर सन 1920 में राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। इसमें प्रारंभ में 42 राष्ट्र शामिल हुए जिनमें निबंध सागर अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के अलावा जापान तथा इटली भी थे। इनमें जापान ने संघ छोड़ दिया, क्योंकि राष्ट्र संघ ने मंचूरिया पर उसके हमले की आलोचना की थी। जर्मनी ने इस संगठन की सदस्यता सन् 1925 में स्वीकार की थी, लेकिन 10 वर्षो बाद हिटलर के सत्ता में आने के पश्चात् उसने संघ छोड़ दिया। इसी तरह इटली ने 1937 में अबीसीनिया पर हमले के साथ राष्ट्र संघ को अलविदा कह दिया। अंततः महाशक्तियों में फ्रांस और ब्रिटेन ही इसके सदस्य रह गए। रूस ने 1934 में संघ की सदस्यता ग्रहण की, लेकिन हिटलर के साथ समझौते के बाद उसकी सदस्यता न के बराबर रहे गई। अमेरिका ने सदस्यता की परवाह ही, नहीं की। इस तरह 'लीग ऑफ नेशन्स' का भविष्य खतरे में पड़ गया। इस बीच द्वितीय विश्वयुद्ध (1939) शुरू हो गया। इसमें जो विनाश क्तांडव हुआ उससे मानवता कॉप उठी। हिरोशिमा–नागासाकी पर अणु बम के प्रहार ने–सारे विश्व को दहला दिया था। अतः तीव्रता से किसी ऐसे संगठन की अवल्पकता अनुभव की जाने लगी, जो विश्व को युद्ध की विभीषिका से बचा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास. पहले से जारी थे ही। धुरी राष्ट्रों (जापान, जर्मनी और इटली) के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों ने बो युद्ध अभियान शुरू किया, उसी समय संयुक्तराष्ट्र शब्द का प्रयोग होने लगा था।

जनवरी 1942 में एक संयुक्तघोषणा–पत्र में इस नाम का प्रयोग भी किया गया, जिसमें 26 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध क्यई शपथ ल्टई थी। इसके बाद सन् 1943 में मॉस्को में इन राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ जिसमें ग्रेट

ब्रिटेन, अमेरिका, रूस और फ्रांस के विदेश मंत्री शामिल हुए, और विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन बनाने बनाया गया था। 'लीग ऑफ नेशंस' को अक्षम मानकर नए संगठन के उद्देश्य–से काहिरा, तेहरान, ग्रेट–ब्रिटेन, बुड्स और हॉटस्टिंग में सम्मेलन करके संगठन की रूपरेखा पर विचार होता रहा। यद्यपि द्वितीय विश्वयद्ध अपनी पूरी क्षमता से लड़ा जा रहा था। अंततोगल्य स्मृर 1944 के वाशिंगटन सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ का एक प्रारूप प्रस्तुत किया गया। इस सम्मेलन में चीन, सोवियत संघ, ब्रिटेन और अमेरिका के प्रतिनिधि शामिल हुए। इसके बाद एक सम्मेलन 25 अप्रैल से 26 जून, 1945 तक सैन फ्रांसिस्को में हुआ, जिसमें 50 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। इसी सम्मेलन में उल्लिखित चार्टर घोषणा–पत्र को स्वीकृति प्रदान की गई। इस घोषणा–पत्र पर 26 जूनको 50 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किए थे। एक अन्य राष्ट्र पोलैंड ने बाद में हस्ताक्षर किया। इस तरह 51 राष्ट्रों की सहमति से संयुक्त राष्ट्र संघ अपने अस्तित्व–में आया; लेकिन विभिन्न राष्ट्रों की ओर से पृथक–पृथक पुष्टि के बाद 24 अक्टूबर, 1945 को इस संगठन की स्थापना हुई। सुरक्षा परिषद् के 5 स्थायी सदस्य– चीन, फ्रांस, अमरिका, सोवियत संघ (अब रूस) और ग्रेट ब्रिटेन– इस संगठन के प्रारंभिक स्थापनाकर्ताओं में शामिल हैं और वही बाद में सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य घोषित हुए।

उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार–पत्र (घोषणा–पत्र) में मुख्यतः चार उद्देश्यों का उल्लेख है–

- अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखना। राष्ट्रों के बीच उनके सम्मान, अधिकार (सार्वभौम अधिकार) और आत्मनिर्णय के उनके विशेषाधिकार को ध्यान में रखते हुए मित्रतापूर्ण संबंधों का विकास करना।
- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानव कल्याण से जुड़ी अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का निराकरण करना और मानवाधिकारों के प्रति सम्मान भाव अभिवर्धित करने में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग करना।
- इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के साथ विश्व के समस्त राष्ट्रों के बीच आपसी संबंधों का सामंजस्य स्थापित करना।

  इन उद्देश्यों की पूर्ति का आधारभूत सिद्धांत इस प्रकार है–

- संयुक्तराष्ट्र संघ का गठन विभिन्न राष्ट्रों की संप्रभुता को बराबर सम्मान देने के आधार पर हुआ है। अतः सभी सदस्यों की सदस्यता का स्वरूप भी समान है।
- सदस्यों को आपसी झगड़ों को शांतिपूर्ण ढंग से इस प्रकार तय करना है, जिससे शांति, सुरक्षा और न्याय को कोई खतरा न हो।
- सभी सदस्य राष्ट्रों को अन्य सदस्य राष्ट्रों के विरुद्ध धमकी, चेतावनी या बल–प्रयोग से दूर रहना चाहिए।
- संयुक्तराष्ट्र संघ जो भी कार्य करता है, उसमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को मदद करनी होगी। जिन सदस्य राष्ट्रों के विरुद्ध राष्ट्र संघ निरोधात्मक कारवाई, उन्हें विवश करने के लिए करता है, उनको सदस्य राष्ट्र मदद नहीं करेंगे।
- संयुक्त राष्ट्र संघ किसी राष्ट्र के आतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, परंतु जहाँ शांति भंग का खतरा हो या आक्रमण किया गया हो, वहाँ यह धारा लागू नहीं होगी और राष्ट्र संघ बाध्यीकरण या विरोधात्मक काररवाई कर सकेगा, क्योंकि बाध्यीकरण से अनुशासन का उल्लंघन करनेवाले राष्ट्र को अनुशासन में लाया जा सकता है।

सदस्यता

संयुक्तराष्ट्र संघ की सदस्यता के लिए दो मुख्य शर्तें हैं– 1. सुरक्षा परिषद् की संस्तुति, 2. महासभा द्वारा दो–तिहाई बहुमत से सदस्यता को स्वीकृति, किंतु इनमें से पहली ही शर्त महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यदि सुरक्षा परिषद् ने किसी सदस्य की सदस्यता निलंबित करने की स्वीकृति दे दी तो वह निलंबित होकर ही रहेगा और यदि सुरक्षा परिषद् चाहती है कि निलंबन समाप्त हो जाए तो वह समाप्त हो जाएगा। इस तरह सदस्यता के लिए सुरक्षा परिषद् की स्वीकृति–अस्वीकृति महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि संपूर्ण संयुक्तराष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद् के अनुसार चलता है। संयुक्तराष्ट्र संघ के अंग इस संगठन के प्रमुख अंग हैं– 1. महासभा 2. सुरक्षा परिषद् 3. आर्थिक और सामाजिक परिषद् 4. न्यास परिषद् 5. अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय।

महासभा

सभी इस सभा के सदस्य होते हैं और उनका अपना एक मत होता है। आमतौर पर वर्ष में एक बार महासभा की बैठक होती है और यह दिन सितंबर का तीसरा मंगलवार होता है। इसका सत्र आमतौर पर दिसंबर के मध्य तक चलता है, लेकिन यदि आवश्यक होता है तो यह नए वर्ष के कुछ सप्ताहों तक भी चल सकता है। सुरक्षा परिषद् की

पहल पर राष्ट्र संघ का महासचिव विशेष या आपात अधिवेशन बुला सकता है। महासभा का कोई स्थायी अध्यक्ष नहीं होता। वह अपने हर सत्र में नया अध्यक्ष चुनती है। महासभा का पहला सामान्य सत्र सन् 1946 में 10 जनवरी से 14 फरवरी (लंदन) और 23 अक्टूबर से 16 दिसंबर (न्यूयार्क) तक चला था। विशेष अधिवेशन प्रायः किसी विशेष मुद्दे को लेकर बुलाया जाता है, जैसे–सन् 1967 में अरब–इजराइल युद्ध के कारण बुलाया गया था।

सुरक्षा परिषद

इस संस्था में 15 सदस्य हैं, जिसमें 10 अस्थायी और 5 स्थायी सदस्य हैं। अस्थायी सदस्यों को राष्ट्र संघ महासभा में दो–तिहाई बहुमत से प्रति दो वर्षो के लिए चुना जाता है। अवकाश पानेवाले सदस्य तत्काल पुनर्निर्वाचित नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद् अपनी बैठकों में गैर–सदस्यों को भी भाग लेने के लिए आमंत्रित कर सकती है। सुरक्षा परिषद् का मुख्य दायित्व विश्व में शांति–व्यवस्था बनाए रखना है। सुरक्षा परिषद् में किसी प्रस्ताव की स्वी ति के लिए 9 मत आवश्यक होते हैं। यदि स्थायी सदस्य अनुपस्थित रहते हैं तो इसका तात्पर्य निषेधाधिकार नहीं होता, लेकिन उपस्थित सभी स्थायी सदस्यों का मत उन 9 मतों में शामिल होना जरूरी है। शांति और सुरक्षा स्थापित करने में मदद के लिए एक सैनिक कर्मी समिति की व्यवस्था की गई है, जिसमें सभी स्थायी सदस्यों के सेनाध्यक्ष या उनके प्रतिनिधि शामिल होते हैं।

आर्थिक और सामाजिक परिषद

राष्ट्र संघ की आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य आदि मामलों का दायित्व इस परिषद् को दिया गया है। इसमें 54 सदस्य हैं, जो महासभा द्वारा दो–तिहाई बहुमत से चुने गए हैं। प्रतिवर्ष 1 सदस्य चुने जाते हैं, जिनका कार्यकाल 3 वर्ष का होता है। अवकाश ग्रहण करनेवाले सदस्य तत्काल दोबारा भी चुने जा सकते हैं। प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है और उपस्थित सदस्यों के बहुमत से निर्णय किए जाते हैं। यह समिति प्रत्येक वर्ष दो सत्र में बैठती है और आवश्यक होने पर विशेष अधिवेशन भी बुला सकती है। इसके अंतर्गत अनेक संगठन हैं, जैसे–सांख्यिकी आयोग, जनसंख्या आयोग, मानवाधिकार आयोग, मादक पदार्थ आयोग, नारी सामाजिक स्थिति आयोग, सामाजिक विकास आयोग आदि। इन आयोगों के अतिरिक्तस्थायी समितियाँ भी हैं, जैसे– आर्थिक समिति, सामाजिक समिति, समन्वय समिति, गैर–सरकारी संगठनों से संबद्ध समिति, सम्मेलनों के कार्यक्रम संबंधी अंतरिम समिति, औद्योगिक विकास समिति आदि। इस तरह आर्थिक और सामाजिक परिषद् का क्षेत्र बहुत व्यापक है।

न्यास परिषद

इस परिषद् का महत्त्व उपनिवेशवाद काल में अधिक था। उस समय इस तरह के 11 न्यास बनाए गए थे, जिनमें माइक्रोनेशिया अब भी अमेरिका द्वारा शासित है। यह प्रशांत के द्वीपों का समूह है। कुछ ऐसे ही द्वीप फ्रांस के पास भी हैं।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय

यह न्यायालय संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा–पत्र का एक अंग है और एक अंतर्राष्ट्रीय संधि के तहत इसकी स्थापना हुई है। इसमें निष्पक्ष न्यायाधीशों की नियुक्ति होती है, जिसके लिए किसी देश की राष्ट्रीयता जरूरी नहीं है। उनमें अपने देश में उच्च पद के लिए निर्धारित योग्यता देखी जाती है। इसके अलावा अंतर्राष्ट्रीय कानून से संबद्ध ख्याति देखी जाती है। इस समय 15 न्यायाधीश। इनकी नियुक्ति सन् 1899 और 1107 के हेग कन्वेंसन के अनुसार गठित स्थायी न्यायाधिकरण द्वारा नामांकित न्यायाधीशों की सूची से की जाती है, जिस पर महासभा और सुरक्षा परिषद् दोनों की स्वीकृति होती है। इन न्यायाधीशों का कार्यकाल 1 वर्षो का होता है। यह न्यायालय अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तीन वर्षो के लिए स्वयं चुनता है, साथ ही निरंतर कार्यशील रहता है। आमतौर पर सभी 15 न्यायाधीश न्यायालय में बैठते हैं, लेकिन 9 न्यायाधीशों की उपस्थिति से कोरम पूरा मान लिया जाता है।

उपलब्धियाँ

ऐसी बात नहीं कि इन कारणों से संयुक्तराष्ट्र संघ की सारी उपलब्धियाँ ही नकारात्मक हो गईं। राष्ट्र संघ की सबसे बड़ी उपलब्धि तो यही रही कि विगत 72 वर्षो में तृतीय विश्वयुद्ध की नौबत ही नहीं आई। छोटी–मोटी लड़ाइयाँ तो कई हुई, लेकिन संयुक्तराष्ट्र के माध्यम से जो बातचीत के क्षेत्र खुले रखे गए उनसे समस्याओं के निराकरण में काफी मदद मिली। कुछ मामले तो संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप के बाद ही सुलझ पाए। महाशक्तियों के बीच शीतयुद्ध भले ही पूर्व सोवियत संघ और संयुक्तराज्य अमेरिका की आपसी बातचीत से समाप्त हुआ हो, फिर भी उसमें संयुक्तराष्ट्र का योगदान कम न रहा।

संयुक्तराष्ट्र संघ ने मध्यस्थता और शांति स्थापना के कई महत्त्वपूर्ण कार्य भी किए, जैसे– सन् 1946 में ईरान से रूसी फौजों की वापसी, 1948 में अरब–इजराइल युद्ध

तथा भारत–पाकिस्तान युद्ध में मध्यस्थता, कोरिया यद्ध में शांति स्थापना, 1956 में अरब–इजराइल के बीच स्वेज नहर के लिए छिड़े युद्ध में शांति सेना के माध्यम से शांति स्थापित करना, 1960 में कांगो में शांति सेना भेजकर अमन–चैन कायम करना। 1962 में क्यूबा में प्रक्षेपास्त्रों की तैनाती पर अमेरिका और पूर्व सोवियत संघ के बीच उठे विवाद में बीच–बचाव, 1964 में साइप्रस के लिए संघर्षरत पक्षों के बीच शांति स्थापित करना, 1967 के अरब–इजराइल युद्ध में मध्यस्थता करके युद्ध विराम कराना, 1978 में लेबनान में शांति स्थापित कराना तथा 1990–91 के खाड़ी युद्ध में इराक के हमले को नाकाम करने के लिए बहुराष्ट्रीय सेनाओं को दायित्व सौंपना। सोमालिया, कंबोडिया में शांति स्थापना के प्रयास, बोस्निया में शांति के लिए जद्दोजहद, उत्तरी कोरिया को परमाणु हमले से रोकना, फिलिस्तीन–इजराइल समझौते, ईरान का परमाणु मुद्दा आदि ऐसे कार्य हैं, जिनसे राष्ट्र संघ का महत्त्व स्थापित हुआ है। यह बात और है कि जहाँ महाशक्तियों (विशेषतया अमेरिका) ने सहयोग किया वहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ सफल हुआ। फिर भी उसके कार्यों का महत्त्व घटता नहीं, क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका भी उसका महत्त्वपूर्ण सदस्य है, अतः उसकी मदद से भी जो कार्य राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में होते हैं, उनको उसके ही खाते में रखना समीचीन होगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ की वजह से ही विश्व के कई हिस्सों में आज शांति और एकता का वातावरण स्थापित है। मनुष्य को उसकी बढ़ती हुई लालसा तथा अधिकार क्षेत्र को बढ़ाने के जुनून ने हमेशा उसे एक–दूसरे का शत्रु ही बनाया है। भविष्य में दो देशों के बीच युद्ध न हो इसे रोकने के लिए संयुक्तराष्ट्र संघ की स्थापना की गई थी जो आज विश्व की सबसे शक्तिशाली शक्ति है। हालांकि संयुक्त राष्ट्र संघ कई मामलों में विवश रहा है लेकिन यह कहना भी गलत न होगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ की वजह से ही विश्व के कई हिस्सों में आज शांति और एकता का वातावरण स्थापित है। संयुक्त राष्ट्र सदस्य देशों का एक ऐसा संगठन है, जो अंतर्राष्ट्रीय शान्ति, सुरक्षा, राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को बनाये रखने के लिए वचनबद्ध है। इसके प्रमुख उद्देश्यों को संगठन के घोषणा पत्र में उल्लिखित किया गया है। यह घोषणा पत्र संगठन को किसी भी देश के घरेलू मामले में दखल देने की अनुमति प्रदान नहीं करता है।

संयुक्त राष्ट्र की शान्ति सेना

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्र संघ अर्थात लीग ऑफ नेशन्स का गठन किया गया था। राष्ट्र संघ काफी हद तक प्रभावहीन था और संयुक्त राष्ट्र का उसकी जगह होने का यह बहुत बड़ा फायदा है कि संयुक्तराष्ट्र अपने सदस्य देशों की सेनाओं को शांति के लिए तैनात कर सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ से पूर्व, पहले विश्व युद्ध के बाद राष्ट्र संघ (लीग ऑफ नेशंस) की स्थापना की गई थी। इसका उद्देश्य किसी संभावित दूसरे विश्व युद्ध को रोकना था, लेकिन राष्ट्र संघ 1930 के दशक में दुनिया के युद्ध की बढ़ती प्रवृत्ति को रोकने में विफल रहा और कुछ वर्षों के पश्चात इसे भंग कर दिया गया। संयुक्तराष्ट्र संघ की स्थापना के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ ने राष्ट्र संघ के ढांचे और उद्देश्यों को अपनाया। संयुक्तराष्ट्र के चार्टर में इस बात का उल्लेख है कि किसी आपातकालीन स्थिति या गम्भीर समस्या के समाधान के लिये संयुक्तराष्ट्र की सेना गठित की जायेगी। पहली बार शान्ति सेना कोरिया (1950) में स्थापित की गयी। चूंकि संयुक्तराष्ट्र की कोई संयुक्तस्थायी सेना नहीं हैं, इसलिये सेना में विभिन्न राष्ट्रों के सैनिक शामिल किये जाते हैं, जिनका वित्तीय भार संयुक्तरूप से सदस्य राष्ट्रों द्वारा वहन किया जाता है। किसी भी राष्ट्र को शान्ति सेना में अपने सैनिकों को भेजने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ को प्रजातांत्रिक एवं शक्तिशाली बनाकर विश्व संसद का स्वरूप प्रदान करना चाहिए

विश्व में एकता व शांति कायम करने के लिए विश्व के कुछ भटके हुए युवाओं को विस्फोटक विचारधारा को त्याग कर शांति व आपसी भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना होगा। एकता व शांति के रास्ते को अपनाकर ही विश्व के सभी देश सही मायनों में समान स्तर पर विकास कर सकते हैं। पिछले कुछ समय से कई देश आधुनिक हथियारों का निर्माण एवं भंडारण कर रहे हैं। इससे विश्व में अशांति फैलाने की कोशिश हो रही है। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री जान टिम्बरजेन ने कहा है कि राष्ट्रीय सरकारें विश्व के समक्ष उपस्थित संकटों और समस्याओं का हल अधिक समय तक नहीं कर पायेंगी। इन समस्याओं के समाधान के लिए विश्व संसद आवश्यक है, जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ को मजबूती प्रदान करके प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए प्रभावशाली वैश्विक प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को प्रजातांत्रिक एवं शक्तिशाली बनाकर विश्व संसद का स्वरूप प्रदान करना चाहिए। महान विचारक विक्टर ह्यूगो ने कहा है कि ''इस दुनियाँ में जितनी भी सैन्यशक्ति है उससे कहीं अधिक शक्तिशाली वह एक विचार होता है, जिसका कि समय अब आ गया हो।'' वह विचार जिसका कि समय आ गया है। वह विचार है भारतीय संस्कृति की 'वसुधैव कुटुम्बकम' की महान विचारधारा और भारतीय संविधान का 'अनुच्छेद 51' जिसके द्वारा विश्व को तीसरे विश्व युद्ध एवं परमाणु बमों की विभीषिका से बचाया जा सकता है।

विश्व के 3 बड़े नेताओं ने विश्व में एकता व शांति की स्थापना के लिए समय-समय पर प्रयास किया जिसके तहत

प्रथम विश्व युद्ध के समय 1919 में अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री वुडरो विल्सन ने विश्व के नेताओं की एक बैठक आयोजित की, जिसके फलस्वरूप लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना हुई और सन् 1919 से 1939 तक विश्व में कोई अन्य युद्ध नहीं हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के समय अमेरिका के ही तत्कालीन राष्ट्रपति श्री फ्रैन्कलिन रूजवेल्ट ने 1945 में विश्व के नेताओं की एक बैठक बुलाई जिसकी वजह से 24 अक्टूबर, 1945 को 'संयुक्तराष्ट्र संघ' (यू.एन.ओ.) की स्थापना हुई। जिसके बाद विश्व में पिछले 67 वर्षो में कोई विश्व युद्ध नही हुआ। फ्रांस के प्रधानमंत्री श्री राबर्ट शूमेन ने यूरोपीय देशों के नेताओं की एक बैठक बुलाने की पहल की। इस पहली बैठक में 76 यूरोपीय संसद सदस्यों ने प्रतिभाग किया जिसके परिणामस्वरूप यूरोपीय यूनियन व 28 यूरोपीय देशों की एक यूरोपीय संसद गठित की गई। इस यूरोपीय संसद की वजह से आज पूरे यूरोप में स्थायी एकता व शांति स्थापित है। आज यूरोपीय यूनियन में 28 यूरोपीय देश पूर्ण सदस्य राज्यों की तरह से हैं। यूरोपीय यूनियन के 18 देशों ने अपनी राष्ट्रीय मुद्रा को समाप्त कर 'यूरो' मुद्रा को अपनी राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में अपनाया है।

शांति स्थापना शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का वक्तव्य

राष्ट्रपति बराक ओबामा, महासचिव बान की मून, संयुक्त राष्ट्र की बुनियाद दूसरे विश्व युद्ध के जंग के मैदानों में जांबाज सैनिकों ने रखी थी। 1945 तक, उनमें भारतीय सेना के 2.5 मिलियन जवान थे, जो इतिहास का सबसे विशाल स्वयंसेवी बल था। उनमें से 24,000 से ज्यादा जवानों ने अपने प्राण गंवाएं और लगभग आधे लापता हो गए। बलिदान की यह विरासत यहां मौजूद तीनों देशों ने साझा की है। वे आज संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों में सबसे ज्यादा योगदान देने वाले देशों में से हैं। संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों में180,000 से ज्यादा भारतीय सैनिकों ने भाग लिया है, जो किसी भी अन्य देश से ज्यादा है। भारत ने अब तक 69 संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों में से 48 में हिस्सा लिया है। संयुक्त राष्ट्र के मिशनों में भाग लेते हुए 161 भारतीय शांति सैनिकों ने सर्वोच्च बलिदान दिया है।

भारत पहला देश है, जिसने लाइब्रेरिया में संयुक्त राष्ट्र मिशन के दौरान अपनी महिला फॉर्मड पुलिस यूनिट को भेजा। भारत बड़ी तादाद में देशों के शांति रक्षक अधिकारियों को प्रशिक्षण उपलब्ध कराता आया है। अब तक, 82 देशों के करीब 800 अधिकारियों को हम प्रशिक्षण दे चुके हैं। मैं शांति स्थापना अभियानों पर शिखर सम्मेलन बुलाने के लिए राष्ट्रपति ओबामा का आभार व्यक्त करता हूं। इस संगठन की 70वीं वर्षगांठ होने की वजह से ही यह सामयिक नहीं है, बल्कि यह इसलिए भी सामयिक है, क्योंकि सुरक्षा का वातावरण बदल रहा है, शांति स्थापना की मांग बढ़ रही है, जबकि संसाधन खोज पाना कठिन है। आज शांति रक्षकों को सिर्फ शांति और सुरक्षा बहाल रखने के लिए ही नहीं बुलाया जाता, बल्कि कई जटिल चुनौतियों से निपटने के लिए भी बुलाया जाता है। आदेश महत्वाकांक्षी होते हैं, लेकिन संसाधन अक्सर अपर्याप्त होते हैं। आदेश अक्सर शांति रक्षकों को संघर्षो का पक्ष बना देते हैं जिससे उनका जीवन और उनके मिशन की सफलता खतरे में पड़ जाती है। इन समस्याओं का कारण काफी हद तक यह है कि सैनिकों का योगदान देने वाले देशों की निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई भूमिका नहीं होती। वरिष्ठ प्रबंधन और बल के कमांडर के रूप में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं होता। शांति रक्षा अभियान विवेकपूर्ण तरीके से, अपनी सीमाओं को पूरी तरह समझते हुए और राजनीतिक समाधानों की सहायता से संचालित किए जाने चाहिए। हमें खुशी है कि शांति अभियानों पर उच्च स्तरीय स्वतंत्र पैनल ने इन विषयों की पहचान की है। पैनल की सिफारिशों पर तत्काल रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए हम संयुक्त राष्ट्र महासचिव का आभार व्यक्त करते हैं। हम उनके जल्द विचार करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों के लिए भारत की प्रतिबद्धता मजबूती से बनी रहेगी और इसमें वृद्धि होगी। हम संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों के लिए अपने नए अपेक्षित योगदानों की घोषणा कर चुके हैं। इनमें मौजूदा अथवा नये अभियानों के लिए 850 सैनिकों तक की अतिरिक्त बटालियन, महिला शांति रक्षकों के अधिक प्रतिनिधित्व के साथ अतिरिक्त 03 पुलिस यूनिट्स, महत्वपूर्ण साधन उपलब्ध कराने की प्रतिबद्धता, संयुक्त राष्ट्र मिशनों में तकनीकी कर्मियों की तैनाती, और भारत में हमारी सुविधाओं पर और मैदान में शांति रक्षकों को अतिरिक्त प्रशिक्षण देना शामिल है। अंत में मैं इस बात पर जोर देना चाहूंगा कि संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों की सफलता आखिरकार सैनिकों द्वारा उठाए जाने वाले हथियारों पर नहीं, बल्कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा लिए जाने वाले फैसलों के नैतिक बल पर निर्भर करती है। हमें निश्चित समय सीमा में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सुधार लाने के काफी समय से लंबित कार्य को हर हाल में पूरा करना चाहिए, ताकि संयुक्त राष्ट्र की प्रासंगिकता और प्रभावशीलता संरक्षित रहे। मैं संयुक्त राष्ट्र के सर्वोच्च

आदर्शों की रक्षा की खातिर प्राण न्योछावर करने वाले शांति रक्षकों को श्रद्धांजलि देता हूं। यदि शांति रक्षकों की याद में प्रस्तावित स्मारक दीवार का निर्माण जल्द हो जाए, तो यह बहुत उपयुक्त होगा। भारत इस उद्देश्य के लिए वित्तीय सहित अन्य प्रकार का योगदान करने को तत्पर है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *रंजन, रवि, संयुक्त राष्ट्र संघ : बदलते पारिप्रेक्ष्य, राज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 58*
2. *वैश्य, हरिश कुमार, अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध, आर्य पब्लिकेशनस, नई दिल्ली, 2014, पृ. 108*
3. *यादव, डी.एस., संयुक्त राष्ट्र संघ और भारत, डिस्कवरी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011, पृ. 78*
4. *मोहन, आचिस, आलेख ''भारत और संयुक्त राष्ट्र : समता की तलाश में', सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, . भारत सरकार, नई दिल्ली, 2013, पृ. 1–2*
5. *संयुक्तराष्ट्र संघ एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठन, उपकार प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 87*
6. *रंजन, रवि, संयुक्त राष्ट्र संघ : बदलते पारिप्रेक्ष्य, राज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 60*
7. *वार्षिक रिपोर्ट 2015.16, नीति नियोजन एवं अनुसंधान प्रभाग, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 141*

हिन्दू कोड बिल और डॉ. भीमराव अम्बेडकर

विरेन्द्र सिंह गौड़
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अम्बेडकर का जन्म् एक सामान्य महार जाति में हुआ। बचपन से ही प्रखर बुद्धि के धनी बाबा साहब ने सामाजिक समरसता के लिए अपने जीवन में कई प्रयास किये। सामाजिक समरसता व सामाजिक सद्भावना की आज भी महती आवश्यकता है। उन्होनें समाज में पीड़ित, शोषित वर्ग के लिए कई प्रयास किए। संविधान सभा में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। पूरे हिंदू समाज के लिए एक जैसे नियम कानून बने इसलिए उन्होनें हिन्दू कोड बिल को पारित करवाने का भरसक प्रयास किया। बाबा साहब किसी जाति या वर्ग के नेता नहीं थे, वे तो पूरे भारत के नेता थे क्योंकि उन्होनें पूरे राष्ट्र के लिए कार्य किया उन्होनें कहा कि मेरे कर्त्तव्य के तीन पहलू हैं– पहला हैं देश, दूसरा अस्पृश्य समाज और इसके बाद आता है समाज। वे राष्ट्रऋषि थे। उन्होनें उस समय इतना अध्ययन किया इसलिए उन्हें ज्ञानऋषि भी कहा जा सकता है। उन्होनें स्वयं कहा कि हिन्दू कोड बिल संविधान से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है।

संकेताक्षरः *हिन्दू कोड बिल, सामाजिक समरसता, हिन्दू, तलाक, समान नागरिक कानून।*

भीमराव अम्बेडकर का जन्म् 14 अप्रेल 1891 को महू मध्यप्रदेश में हुआ। रामजी और भीमाबाई की वे चौदहवीं संतान थे। रामजी ने अपने पुत्र का नाम रखा था – भीम। जिस परिवार में डॉ बाबा साहब का जन्म हुआ वह परिवार भी अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का था।

एक सामान्य व्यक्ति और महापुरुष के जीवन में अंतर होता है। महान व्यक्ति या महापुरुष अपने जीवन या उदेश्य या ध्येय निश्चित करता हैं और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए स्वयं के अन्दर वैसे गुणों का सृजन करता हैं। छत्रपति शिवाजी का ध्येय– हिन्दवीं स्वराज्य की स्थापना करना था, उसकी उन्होनें प्रतिज्ञा ली।

लोकमान्य तिलक ने अपना ध्येय स्वराज्य प्राप्त करना निश्चित किया उन्होनें कहा कि ''स्वराज्य मेरा जन्म् सिद्ध अधिकार हैं और मैं उसे लेकर रहूँगा"। सावरकर ने भारत माता को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने की घोर प्रतिज्ञा की थी।

इसी प्रकार बाबा साहब का भी एक ही जीवन लक्ष्य था उन्होनें कहा कि, ''अपने समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए मैं निश्चयपूर्वक और प्रामाणिकता से प्रयास करने वाला हूँ, इसीलिए मैनें इतना विद्याध्ययन किया है। अपनी अर्जित की हुई इस ज्ञानशक्ति का उपयोग मैं केवल अपने परिवार या जाति के लिए ही नहीं करूंगा। संपूर्ण अस्पर्श्य समाज के लिये मैं उसका उपयोग करने वाला हूँ। अस्पृश्यों की समस्यायें बड़ी हैं। वे सभी समस्यायें मैं नहीं सुलझा सकता। मगर इन सवालों को दुनिया के चौराहे पर प्रस्तुत करके मैं उनकी ओर संसार का ध्यान आकृष्ट कर सकता हूँ। अस्पृश्यों की समस्या मानो एक प्रचंड हिमालय है। इस हिमालय से टकराकर मैं अपना सिर फोड़ने वाला हूँ। हिमालय भले ही धराशयी नहीं हुआ तो भी मेरा रक्तरंजित सिर देख कर सात करोड़ अस्पृश्य लोग उस हिमालय को भूमिसात करने के लिये एक पैर पर तैयार हो जायेंगें और इस मन्तव्य के लिये अपने प्राण अर्पित कर देंगे।"

डॉ॰ बाबा साहब ने समरसता लाने के लिये कई प्रयास किए जैसे– महाड़ का संघर्ष, मंदिर सत्याग्रह, स्त्री संबंधी विचार,

उनके संविधान सभा में किये गये प्रयास, मजदूरों संबंधी विचार, किसानों संबंधी विचार और हिन्दू कोड बिल।

हिंदू कानूनों का इतिहास प्राचीन हैं। परंतु समस्त हिन्दूओं के लिए एक जैसे कानून का प्रचलन नहीं हैं। प्रत्येक जाति, बिरादरी, जमात अलग रूढ़ि परम्परा कुलाचार की अलग न्याय परम्परा हैं। सभी जातियों के अलग–अलग नियम कानून हैं। सभी हिन्दूओं के लिए समान संहिता हो तो बहुत सारी परिस्थितियाँ खड़ी हो सकती हैं। हिन्दू कानूनों में बहुत सारी कुरीतियां प्रचलित थी। स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, तलाक, सम्पत्ति, उत्तराधिकार के अलग–अलग समाज में अलग–अलग नियम थे। मुस्लिम आक्रमणों के समय इनमें और कड़े नियम आ गए।

अंग्रेजी शासन से समय सामाजिक प्रबोधन का कार्य शुरु हुआ। न्याय शास्त्रियों ने हिन्दुओं के लिए एक समान कानून बनाने की आव यकता महसूस की गयी। इसी कड़ी में अंग्रेजी सरकार ने सन् 1941 में बी॰ एन॰ राव की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। लोगों से पूछ–पूछकर इस समिति ने हिन्दू कोड बिल का मसौदा तैयार किया। मगर यह विधेयक उस समय स्वीकृत नहीं हो सका।

भारत का विधि मंत्री बनने के बाद हिन्दू कोड बिल का कार्य डॉ॰ बाबा साहब के हाथ में आया। पंडित नेहरु व बाबा साहब इस बिल को पारित करने के लिए वचनबद्ध थे। स्वास्थ्य खराब होने के बावजूद भी बाबासाहब बड़ी प्रामाणिकता व परिश्रम से यह कार्य पूरा करने में लग गए। हिन्दू कोड बिल के पाँच भाग थे– विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, निर्वाह और दत्तक सम्बन्धी कानून। हिन्दू कोड बिल का खाका प्रकाशित हुआ उस पर बहुत टीका–टिप्पणी हुई। यहाँ तक स्वयं राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद जैसे व्यक्ति ने इसका घोर विरोध किया। कांची कामकोटि पीठ के शंकराचार्य ने हिन्दू कोड बिल का धोर विरोध किया। उन्होनें कहा कि इस हिन्दू कोड बिल से हिन्दू परिवार व्यवस्था ढह जाएगी। और इसी बीच वर्श 1952 में आम चुनाव होने वाले थे। भारत वर्ष में एक बड़ा वर्ग इस बिल का विरोध कर रहा था। कांग्रेस जन विरोध को लेकर चुनाव नहीं लड़ना चाहती थी। कांग्रेस के टालमटोल रवैये के कारण 25 सितम्बर 1952 को इसे वापस ले लिया गया। इसी दिन बाबा साहब ने मंत्री मंडल से इस्तीफा दे दिया।

बाबा साहब भारत के संविधान से भी हिन्दू कोड बिल को उपयुक्त मानते थे। इस बिल से हिन्दू समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आते ऐसा उनका मानना था। समानता और स्वतन्त्रता के मूल तत्त्व सामाजिक स्तर पर क्रियान्वित होते। सबसे पहले इस बिल में हिन्दू की व्याख्या की गयी। हिन्दूओं में सिखों, बोद्धों और जैनों का समावेश किया गया था। बाबा साहब हिन्दू कोड बिल के सुधारों का समर्थन करते थे। उन्होनें उस समय मनुस्मृति, अर्थशास्त्र, पाराशर–स्मृति का हवाला दिया। इसी बिल के निमित्त डॉ. बाबासाहब ने समान नागरिक कानून की भी चर्चा की। जो आज भारतीय राजनीति का एक ज्वलंत मुद्दा हैं। सनातनियों ने इस बिल के ऐवज में समान नागरिक कानून की मांग की। इसका जबाब डॉ॰ बाबासाहब ने बड़े तर्क से दिया। सभी धर्मो के अलग–अलग कानून होते हुए भी समान नागरिक कानून बनाने का एक ही तरीका हो सकता है ऐसा कानून पहले बहुसंख्यक पर लागू हो। फिर उसे ही व्यापक स्तर पर लागू किया जाए। यदि मेरे पास हिन्दू कोड बिल होता तो मैं मुसलमान मित्र के पास जाकर कह सकता हूँ कि यह हमारी व्यवस्था हैं और यह तुम्हारी। दोनों कानूनों के बीच का रास्ता निकाला जा सकता है क्या ? इसीलिए हिन्दू लॉ का संहिताकरण इतना आव यक हैं कि उसके बिना समान नागरिक कानून का लक्ष्य प्राप्त करना मुश्किल हैं।

हिन्दू कोड बिल रद्द हो गया। उसके चार अलग कानूने अस्तित्व में आए।

- दि हिन्दू मैरिज एक्ट, 1955
- दि हिन्दू सक्सेशन एक्ट 1956
- दि हिन्दू मायनॉरिटी एण्ड गार्जियनशिप एक्ट 1956
- दि हिन्दू एडॉप्शन एण्ड मेन्टेनेन्स एक्ट 1956

हिन्दू कोड बिल रद्द हुआ फिर बाबा साहब द्वारा विधिमंत्री के रूप में इस्तीफा दे दिया गया। यदि हिन्दू कोड बिल पास होता तो आज समान सिविल संहिता मुद्दा भी हल हो गया होता। सामाजिक समरसता के लिए उनके द्वारा किया गया प्रयास सफल होता।

इसी वर्ष एक ऐसे ही मुद्दे या यों कहें कि एक सामाजिक कुरीति पर चर्चा व राजनीति हुई। फिर यह मुद्दा सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँचा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 22 अगस्त, 2017 को एक ऐतिहासिक व दूरगामी सामाजिक महत्त्व के फैसले के तहत् मुस्लिमों में ''तलाक–ए–बिद्दत'' एक बार में तीन तलाक की प्रथा को असंवैधानिक करार दिया और इसे निरस्त कर दिया। अलग–अलग धर्मो के पाँच न्यायधीशों की संविधान पीठ ने 3–2 के बहुमत से शरियत कानून तीन तलाक को असंवैधानिक माना। पाँच न्यायधीशों की इस पीठ में मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति जे.एस.खेहर व न्यायमुर्ति अब्दुल नजीर ने इसे असंवैधानिक कहने से इनकार किया था।

जबकि न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ, न्यायमूर्ति आर.एफ. नरीमन और न्यायमूर्ति यू.यू.ललित ने इस प्रथा को संविधान का उल्लंघन करने वाला करार दिया। जो दो न्यायाधीश इस प्रथा के विरोध में थे वे भी तीन तलाक की प्रथा को समाप्त करने के पक्ष में थे, किन्तु वे चाहते थे कि इस मामले में सरकार पहले कानून बनाए। अनेक स्थानों पर मुस्लिम महिलाओं ने इसे दूसरी आजादी करार देते हुए प्रसन्नता व्यक्त की। भारतीय संविधान में भी उल्लेखित अनु॰ 14 व अनु॰ 15 की सही अभिव्यक्ति इस तीन तलाक बैन के माध्यम से हुई। संविधान के अनुसार जाति, लिंग, भाशा और धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता हैं।

ज्ञात रहे कि 1929 में 7.70 करोड़ से ज्यादा मुस्लिम जनसंख्याँ वाला देश मिस्र तीन तलाक बैन करने वाला पहला देश था। हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश और कई अन्य मुस्लिम देशों टर्की, अल्जीरिया, इराक, सऊदी अरब, यू.ए.ई., कतर, मलेशिया आदि देशों में भी तीन तलाक बैन हैं। भारत विश्व में 22वां ऐसा देश हैं जिसने तीन तलाक की प्रथा पर रोक लगाई हैं। सर्वाधिक मुस्लिम जनसंख्याँ वाले देश इंडोनेशिया में केवल न्यायालय के जरिए ही तलाक दिया जा सकता हैं।

यदि हिन्दू कोड बिल उस समय पास हो गया होता, तो आज तक ऐसे कई मद्दे (विवाह, तलाक, उत्तराधिकार) हल हो गया होते। पूरे भारत में समान सिविल संहिता लागू हो गई होती। एक समरस समाज की स्थापना में हिन्दू कोड बिल एक मिल का पत्थर साबित होता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पतंगे रमेश, 'संघर्ष महामानव का', भोपाल, अर्चना प्रकाशन, 2012.*
2. *पतंगे रमेश, 'सामाजिक न्याय एवं डॉ॰ बाबा साहब अम्बेडकर', मुंबई, हिन्दुस्तान प्रकाशन संस्था–हिन्दी विवके, 2015.*
3. *नरवाल डॉ॰ प्रेमकुमार, 'डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेडकरः संविधान निर्माण में भूमिका एवं राजनीतिक दर्शन', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2007.*
4. *दैनिक भास्कर*
5. *राजस्थान पत्रिका*

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चिकित्सा पद्धति

डॉ. सुनिता मीना
व्याख्याता, शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय, सवाई माधोपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अर्थशास्त्र में चिकित्सा एवं औषधि निर्माण पर विस्तार से लिखा गया है। इससे तन्त्र–मंत्र, वशीकरण, आयु, वृद्धि एवं सौन्दर्य वृद्धि के उपाय, विष परीक्षण, तेजस्वी संतान प्राप्ति के उपाय, नपुंसकता का उपचार, विष एवं विषकन्या की पहचान व उससे रक्षा के उपाय, मंत्र व विष का शत्रु पर प्रयोग, आशुमृतक परीक्षण, आयुर्वेद के माध्यम से व्याधि चिकित्सा, औषधि एवं मंत्र के द्वारा भूख–प्यास नष्ट करने तथा मनुष्य व पशुओं में महामारी फैलने पर औषधिय उपचार व शांतिकर्म इत्यादि चिकित्सकीय विषयों पर महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इस में चिकित्सा में संबंधित ऐसा कोई विषय नहीं है जिसकी जानकारी हमें इससे प्राप्त न होती हो यद्यपि अर्थशास्त्र में चिकित्सा से संबंधित विभिन्न भेषज प्रयोग पूर्ववर्ती वैदिक साहित्य एवं आयुर्वेद पर आधारित है। तथापित अर्थशास्त्र ने चिकित्सा विज्ञान एवं भेषज के क्षेत्र में आने वाली पीढ़ियों के लिये एक महत्वपूर्ण सेतू का कार्य किया है।

संकेताक्षरः *वशीकरण, औषधि, जांगली विषभिषक, अनुष्ठान, संक्रामक, शांतिकर्म, कण्टक शोधन, परघातप्रयोग, उच्चिदिंग, भैषज्यमंत्र।*

कौटिल्य का अर्थशास्त्र मूल रुप से शासन विधि अथवा शासन विज्ञान का ग्रंन्थ है। ''कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधि : कृतः ''इन शब्दों से स्पष्ट है कि आचार्य ने इसकी रचना राजनीति–शास्त्र के ग्रन्थ के रूप में की किन्तु राज्य, राजा एवं प्रजा के कल्याण के लिये कौटिल्य ने इसमें विविध विषयों का समावेश किया और इन्ही विषयों में से एक महत्वपूर्ण विषय है चिकित्सा। अर्थशास्त्र में चिकित्सा एवं औषधि निर्माण पर विस्तार से लिखा गया है। इससे तन्त्र–मंत्र, वशीकरण, आयु, वृद्धि एवं सौन्दर्य वृद्धि के उपाय, विष परीक्षण, तेजस्वी संतान प्राप्ति के उपाय, नपुंसकता का उपचार, विष एवं विषकन्या की पहचान व उससे रक्षा के उपाय, मंत्र व विष का शत्रु पर प्रयोग, आशुमृतक परीक्षण, आयुर्वेद के माध्यम से व्याधि चिकित्सा, औषधि एवं मंत्र के द्वारा भूख– प्यास नष्ट करने तथा मनुष्य व पशुओं में महामारी फैलने पर औषधीय उपचार व शांतिकर्म इत्यादि चिकित्सकीय विषयों पर महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।[1]

अर्थशास्त्र में उल्लेख आता है कि राजा को अपने पास कुलीन, स्नेही, विद्धान, चतुर तथा आयुर्वेद के आठो अंगो में निपुण वैध को रखना चाहिये। युद्ध के समय चिकित्सकों की नियुक्ति का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है। चिकित्सक को चाहिये कि वह राजा को खिलाई जाने वाली प्रत्येक औषधि का स्वयं खाकर परीक्षण करे।[2] राजा भोजन स्वयं ग्रहण करने से पूर्व पक्षियों और अग्नि के माध्यम से उसका परीक्षण करे।[3] इसी प्रकार प्रयोग किये जाने वाले वस्त्रो, सोना–चाँदी आदि वस्तुओं तथा स्फटिक इत्यादि मणियों से बनी वस्तुऐं विषयुक्त होने पर मैली कीचड़ जैसी हो जाती है, इनकी स्निग्धता, कांति, भारीपन, प्रभाव, स्पर्श आदि गुणों का नाश हो जाता है। अर्थशास्त्र में कालकूट, वत्सनाश, हालाहल मेषश्रृंगी, मुस्ता, कुष्ठ महाविष, वैल्लिंतक, गौरार्द्र आदि विषों का उल्लेख आता है।[4] विष प्रयोग का एक रूप विषकन्या भी है जिसका प्रयोग चाणक्य ने पर्वतेश्वर को मारने के लिये किया था। इसलिये कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि

अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्री परिशुदां देवी पश्येत न कांचिदभिगच्देत।।

अर्थात् अंतःपुर में जाकर राजा अपने निवास स्थान पर ही वृद्ध परिचारिका द्वारा परीक्षा दी गयी राजमहिषी के साथ ही रहे। किसी अन्य रानी को लक्ष्य करके स्वयं ही उसके स्थान पर नहीं जाये।[5] अर्थशास्त्र में उल्लेख आता है कि ऋण, शत्रु और रोग को जड़ से समाप्त कर देना चाहिए।[6] विभिन्न व्याधियों के सम्बन्ध में वे बताते है कि परिमित भोजन करना ही स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण है।[7] बदहजमी होने पर रोगी को कुछ भी नहीं खाना चाहिए।[8] इसी प्रकार वृद्धजनों की चिकित्सा में भी देर नहीं करनी चाहिये।[9]

कौटिल्य ने विष चिकित्सा करने वाले वैध को जांगली विषभिषक है। अर्थशास्त्र में कौटिल्य लिखते है कि अकृत्रिम बीमारियों को भिषक, चिकित्सा द्वारा और सिद्ध एवं तवस्वी यज्ञ, हवन, व्रत उपवास इत्यादि अनुष्ठानों से दूर करे। हैजा, प्लेग, चेचक इत्यादि संक्रामक रोगों को दूर करने के लिए भी इसी प्रकार के उपाय करने चाहिये। इसके अतिरिक्त गंगास्नान, समुद्रपूजन, श्मशान में गायों का दोहन, चावल तथा सत्तू से बने पुतले का श्मशान में दाह और रात्रि जागरण करके ग्राम देवता की पूजा आदि उपाय किये जाने चाहिए। साथ ही पशुओं में बीमारी या महामारी फैल जाए तो रोग को समाप्त करने के लिए शांतिकर्म करवाने चाहिए। अलग-अलग पशुओं के लिए उनके निर्धारित पशु देवता की पूजा की जानी चाहिए। उदाहरण के लिये हाथी के लिये सुब्रह्मण्य, घोड़े के लिये अश्विनी गाय के लिये पशुपति शिव, भैंस के लिये वरूण तथा बकरी के लिए अग्नि की पूजा की जानी चाहिये।[10]

सांप से रक्षा मंत्र तथा जड़ी-बूटियों के ज्ञाता विष वैधों को चाहिये कि वे सर्प भय का प्रतीकार करें। अथर्ववेद के ज्ञाता अभिचार क्रियाओं द्वारा सांपो को मार डालें। सर्पभय से बचने के लिये पर्व, तिथियों पर उनकी पूजा की जानी चाहिये। अर्थशास्त्र के कण्टक शोधन नामक चतुर्थ अधिकरण में गूढ़जीविको की रक्षा नामक चौथे अध्याय में वर्णन है कि विष के निर्माता, क्रेता, विक्रेता तथा औषधियों एवं भोज्य सामग्री का व्यापार करने वाले किसी व्यक्ति पर यदि किसी को विष देने का संदेह हो जाए तो मंत्री उससे सच्चाई जानने के लिए कहे कि ' अमुक पुरूष मेरा शत्रु है आप उसे विष देकर मार डालिए और बदले में मुंह मांगा धन ले लीजिए। यदि वह पुरूष ऐसा ही करे तो उसे विष देने के अभियोग में बंदी बना लिया जाना चाहिये।[11]

अर्थशास्त्र के कण्टक शोधन नामक चतुर्थ अधिकरण में आशुमृतक परीक्षा नामक सातवे अध्याय के अन्तर्गत उल्लेख आता है कि शव का परीक्षणकरके किसी व्यक्ति की मृत्यु के कारणों का कैसे पता लगाया जा सकता है।

- यदि किसी की बिना किसी बीमारी या घाव के अचानक ही मृत्यु हो जाए तो तेल में डालकर उसकी परीक्षा की जानी चाहिये।
- यदि मृतक की बांहे और टांगे सिकुड़ी हुई हों तो समझना चाहिए की उसको फांसी पर लटका कर मारा गया है।
- जो खून से लथपथ हो जिसका शरीर जगह-जगह से टूट गया हो तो समझना चाहिये कि उसको लाठियों या कोड़ों से मारा गया है।
- जिसका शरीर स्थान-स्थान से फट गया हो उसको समझना चाहिये कि मकान से गिरा कर मारा गया है।[12]
- जिसके हाथ पैर, नाखून काले पड़ गये हों, मांस रोयें तथा खाल ढीले पड़ गये हो और मुख से झाग निकलता हो तो समझना चाहिये कि उसको जहर देकर मारा गया है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में औपनिविदिक नामक 14वें अधिकरण में परघातप्रयोग नामक पहले अध्याय में शत्रु का वध करने के अनेक प्रयोगों का उल्लेख किया गया है।

- यदि अमलतास की जड़ की भिलावे के पुष्पचूर्ण के साथ मिलाकर उसमें पूर्वोक्त किसी तपे हुए कीड़े का योग कर दिया जाए तो उसका प्रयोग एक माह में किसी व्यक्ति के प्राण हर लेता है।[13]
- शतावरी कर्दम (अगर, तगर, केसर, कस्तूरी, कुंकुम और कपूर का पिसा हुआ लेप) उच्चिर्दिंग (बिच्छू) कनेर, कड़वी, तुंबी और मछली का धुआं अथवा धतूरा और धान के पुआल के साथ धुंआ किया जाए और उसको तेज हवा में रख दिया जाए तो वह जहां तक जाएगा वहां तक के प्राणियों के प्राण हर लेगा।
- चकोतरा कूट, नरसल और शतावरी इन चीजों की जड़ का या सांप, मोर की पूंछ, जंगली तीतर और कूट नामक वृक्ष के पांचों अंग को धनिया, पलाश और पुआल के साथ मिलाकर इससे जो धुंआ बनाया जाता है वह अंधा कर देता है। इसका प्रयोग शत्रु सेना पर किया जा सकता है। इसलिए युद्ध करते समय या किले को घेरते समय ऐसा धुंआ करने से पूर्व अंजन जल से अपनी आंखों को बचाने का प्रबंध करना चाहिए अन्यथा स्वयं भी अंधे होने का खतरा होता है।[14]

- जौ (यव) धान (शाली) इन दोनों की जड़ तथा मैनफल, चमेली, जावित्री और आदमी का पेशाब, इन सब चीजों को मिलाकर फिर उसमें लाख देने वाले पीपल तथा बिदारी की जड़ों का योग कर दिया जाए अथवा गंदे पानी में उगे गूलर, धतूरा और कोदो के क्वाथ का योग कर दिया जाए या धनिया तथा पलाख के क्वाथ का योग कर दिया जाए तो मदनरस तैयार हो जाता है जो कि मनुष्य को पागल या मूर्छित कर देता है।[15]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मनुष्य को अद्‌भुत शक्ति प्रदान करने वाले विभिन्न औषधिय योगों का भी वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए प्रकरण 178 में लिखा है कि

- सिरण (शिरष) गूलर और शमी इन तीनों के चूर्ण को घी के साथ मिलाकर खाने से 15 दिन तक भूख नहीं लगती है।
- कसेरू, कमल की जड़, गन्ने की जड़, कमल डंडी, दूब, दूध, धी और मांड इन सबको एक साथ मिलाकर खाने से एक महीने तक भूख नहीं लगती है।
- उडद, जौ, कुलथी और कुशा की जड़ इन सबको दूध, घी के साथ मिलाकर पीने से एक मास तक भूखा रहा जा सकता है अथवा अलमोद, दूध और धी को बराबर मिलाकर पीने पर भी एक महिने तक भूख नहीं लगती है।[16]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के औपनिषदिक नामक 14वें अधिकरण में भैषज्यमंत्र- प्रयोग नामक तीसरे अध्याय के **अनुसार-**

रात में घूमने वाले जीव जैसे बिल्ली, उंट, भेड़िया, साही, कौआ और उल्लू अथवा रात्रि कें विचरण करने वाले इसी प्रकार के दूसरे प्राणियों में से दो या दो से अधिक की दोनो आंखो को निकाल कर उनका अलग-अलग चूर्ण बनाकर बांई आंख से बना चूर्ण, दांई आंख पर और दांई आंख से बना चूर्ण बांई आंख पर अंजन कर देने से मनुष्य भी रात के समय घोर अंधकार में प्रत्येक वस्तु को देख सकता है।[17]

अर्थशास्त्र में चिकित्सा में संबंधित ऐसा कोई विषय नहीं है जिसकी जानकारी हमें इससे प्राप्त न होती हो, उपर उल्लेखित विषयों के अतिरिक्त मुंह व नाक बंद का प्रयोग, पाखाना रोकने का प्रयोग, शत्रु को अंधा करने का प्रयोग शत्रु को नष्ट करने का प्रयोग, जन-धन नष्ट करने का प्रयोग, तत्काल मृत्यु प्रयोग, नपुंसक बना देने का प्रयोग, पडौसी का मक्खन अपने घड़े में लाने का प्रयोग इत्यादि विषयों पर भी हमें महत्वपूर्ण नुस्खे प्राप्त होते है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में न केवल राजनीतिक व्यवस्था, समाज शिक्षा व सांस्कृतिक व्यवस्था, के विषय में जानकारी दी है अपितु चिकित्सा के क्षेत्र में भी भारतीय समाज को अपना अमुल्य ज्ञान प्रदान किया है। यद्यपि अर्थशास्त्र में चिकित्सा से संबंधित विभिन्न भेषज प्रयोग पूर्ववर्ती वैदिक साहित्य एवं आयुर्वेद पर आधारित है। तथापित अर्थशास्त्र ने चिकित्सा विज्ञान एवं भेषज के क्षेत्र में आने वाली पीढ़ियों के लिये एक महत्वपूर्ण सेतू का कार्य किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *गोयल, श्रीराममगध-सातवाहन-कुषाण साम्राज्यों का युग, मेरठ 1988 पृ.208*
2. *विद्यालंकार, अत्रिदेव - आयुर्वेद का वृहत इतिहास पृ. 129*
3. *उरोक्त - पृ.140*
4. *शास्त्री, उदयवीर - अर्थशास्त्र पृ.101*
5. *विद्यालंकार, अत्रिदेव - आयुर्वेद का वृहत इतिहास पृ. 137*
6. *चाणक्य - प्रणीत सूत्र पृ. 481*
7. *उपरोक्त पृ. 218*
8. *उपरोक्त पृ. 219*
9. *उपरोक्त पृ. 221*
10. *कौटिलीयम अर्थशास्त्र, प्रकरण 78, अध्याय 3*
11. *कौटिलीयम अर्थशास्त्र, प्रकरण 79, अध्याय 4*
12. *कौटिलीयम अर्थशास्त्र, प्रकरण 82, अध्याय 7*
13. *कौटिलीयम अर्थशास्त्र, प्रकरण 177, अध्याय 1*
14. *गैरोला, वाचस्पति (व्याख्याकार) कौटिलियम अर्थशास्त्रम वाराणसी, 2006 पृ.739*
15. *गैरोला, वाचस्पति (व्याख्याकार) कौटिलियम अर्थशास्त्रम वाराणसी, 2006 पृ.740*
16. *कौटिलीयम अर्थशास्त्र, प्रकरण 178, अध्याय 2*
17. *कौटिलीयम अर्थशास्त्र, प्रकरण 178, अध्याय 3*

कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप : तन्त्र शास्त्र की दृष्टि से

प्रीति सिंह
पोस्ट डॉक्टरल फैलो, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

कुण्डलिनी वास्तव में शक्ति का ही रूप है। विश्व के सभी क्रिया व्यापार शक्ति के ही अधीन हैं। कुण्डलिनी प्राण शक्ति के रूप में शरीर को धारण करती है, वहीं इच्छा ज्ञान और क्रिया रूप में समस्त कार्यों का संचालन करती है। शंकराचार्य के मत में यदि इसको ''आवरण शक्ति'' के रूप में स्वीकार करें तो ब्रह्म के यर्थात् स्वरूप का बोध भी यही कराती है। आगम मत में शिव और शक्ति में अद्वयभाव है। परतत्व क्रियाशील होने पर ही शक्ति और क्रियाशून्य होन पर शिव कहलाता है। अतः शिव स्वरूपतः शक्ति रूप ही है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि वस्तु को क्रिया करने के लिए आधार की आवश्यकता होती है। शक्ति स्वयं को दो रूपों मे विभक्त करती है, एक तो स्थिर शक्ति दूसरी क्रिया शक्ति। इसमें स्थिर शक्ति कुण्डलिनी और क्रिया शक्ति को ''प्राण'' शक्ति कह सकते हैं। इस रूप में कुण्डलिनी शरीर की आधारशक्ति सिद्ध होती है वास्तव में मूल चित्ति शक्ति ही अपने को विविध रूपों में प्रकट कर विभिन्न नाम धारण करती है। शिवलिंग को घेरे हुए कुण्डलिनी का स्वयप आधुनिक परमाणु की संरचना को व्यंजित करता है। परमाणुओं मे ''इलेक्ट्रान'', ''प्रोटोन'' और ''न्यूट्रान'' नामक तीन अवयव रहते हैं, जो केन्द्र के चारों और चक्कर काटते रहते हैं। कुण्डलिनी भी वलयाकार है, जो शिवलिंग रूप केन्द्र से लिपटी रहती है। इसके तीन गुणों के वैषम्य से ही सृष्टि और संहार क्रियाएं होती हैं।

संकेतक्षारः *तन्त्र शास्त्र, कुण्डलिनी शक्ति, शंकराचार्य, आवरक शक्ति, परमशिव।*

तांत्रिक परम्परा में कुण्डलिनी शक्ति का विशेष महत्व है। कुण्डलिनी का जागरण तांत्रिक साधना का लक्ष्य है। कुण्डलिनी शक्ति का विशेष वर्णन हठयोग के ग्रन्थों में भी मिलता है। इनमें कुण्डलिनी द्वारा षट्चक्रों में भेदन की प्रक्रिया बतलाई गई है किन्तु तन्त्रमार्ग और हठयोग में किंचित अन्तर है। हठयोग में आसनों का विशेष स्थान है, जिनके द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत कर उर्ध्वमुखी किया जाता है जबकि तन्त्रयोग में आसनादि का महत्व होने पर भी सब कुछ गुरुकृपा पर निर्भर करता है। अतः यहां गुरु का विशेष महत्व है। यदि गुरु की कृपा दृष्टि है तो वह आसनादि का अभ्यास न करने वाले व्यक्ति की भी कुण्डलिनी जाग्रत कर देता है जिसे तांत्रिक शब्दावली में ''शक्तिपात'' कहते हैं। इसके बाद आसन एवं मुद्राऐं अनायास होने लगती हैं। सौन्दर्यलहरी में यद्यपि कुण्डलिनी का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं होता है तथापि जो कुछ उपलब्ध है वह तन्त्रों के अनुरूप है। इसके प्रथम खण्ड आनन्दलहरी में भगवती की कुण्डलिनी के रूप में चर्चा की गई है। कुण्डलिनी के रूप में यहां देवी का सूक्ष्म ध्यान वर्णित है। कुण्डलिनी शक्ति द्वारा शरीरस्थ षट्चक्रों का संधान निरूपति हैं। कुण्डलिनी शरीर के भीतर शक्ति के रूप में अवस्थित है जो उर्ध्वगामिनी होती हुई इन षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्त्रार में स्थिर बिन्दु रूपी परमशिव से सामरस्य प्राप्त करती है। यह योगसाधना की चरमावस्था है, जिसे अद्वैत की परम स्थिति कहते हैं।

कुण्डलिनी पर निर्वचन

''कुण्डले अस्याः स्त'' इति कुण्डलिनी अर्थात् जिसके दो कुण्डल है; वह कुण्डलिनी है। ये दो कुण्डल इड़ा और पिंगला नाड़ियां हैं, इन दोनों नाड़ियों के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी अवस्थित है। इस सुषुम्ना नाड़ी के भीतर भी कई नाडियाँ हैं, जिनमें चित्रिणी नाड़ी में होकर कुण्डलिनी का मार्ग है। अतः सुषुम्ना नाड़ी के दोनों ओर स्थित इड़ा और पिंगला नाड़ियां ही इसके दो कुण्डल हैं।

कुण्डलिनी चिद् शक्ति का ही रूप है इसे ''आत्मशक्ति'' और ''परमदेवता'' भी कहा गया है यही ''मूलविद्या'' है।

कुण्डलिनी के लिए पिण्ड पद का भी व्यवहार किया गया है ''पिण्ड कुण्डलिनी''।

कुण्डलिनी की शरीर में स्थिति एवं स्वरूप

हठयोग एवं तंत्र के ग्रंन्थों में कुण्डलिनी की मूलाधार के नीचे ''त्रिकोण'' में स्थिति मानी गई हैं। इसे ही ''कुलकुण्ड'' भी कहते हैं। आचार्य शंकर ने भी उसे ''कुलकुण्ड'' में ही स्थित माना है। यहां इसे ''तडिल्लेखा'' के समान पतली और सूर्यचन्द्राग्निरूपा कहा गया है–

''तडिल्लेखा तन्वी तपनशशिवैश्वानरमयी''

''ललितात्रिंशती'' भाष्य में भी ''कामेश्वर प्राणनाड़ी'' पद की व्याख्या करते हुए इसे बिसतन्तुतनीयसी कुण्डलिन्यधोमुखा–वरणशक्तिः निद्राति'' कहा गया है।

यहाँ कुण्डलिनी को आवरण शक्ति कहना उनके अद्वैत वेदान्त और तन्त्र मार्ग के समन्वय को ही व्यक्त करता है। यह कुण्डलिनी प्रपंच का कारण है। अतः इसे शब्द ब्रह्म रूप कहा गया है। यही काम, अग्नि नाद्तार और ओंकार रूप है। कुछ उसे शक्ति कहते हैं और कुछ परमात्मा।

यह सूर्य के समान ''कुण्डली'' मारे रहती है। कुण्डलिनी के इस आकार के कारण ही इसे सर्यवत् भुजंगी अथवा नागिनी शक्ति आदि कहते हैं। इसकी तिर्यक् गति के कारण भी इसे सर्पाकार या वलयकार कहते हैं। यह साढ़े तीन घेरे में अपने को लपेट कर अपनी पूंछ को मुख में दबाकर ब्रह्मद्वार का मुख बन्द करके ''स्वयंभू लिंग'' पर स्थित है। यह मृणालतन्तु के समान अत्यन्त सूक्ष्म है। षट्चक्र निरूपण में इसका जगन्मोहिनी स्वरूप वर्णित है। साथ ही यह विद्युत के समान कही गई है। विद्युत से इसके प्रकाश रूप का बोध होता है।

''सर्प'' तथा ''विद्युत'' दोनों का तिर्यक् गमन प्रत्यक्ष सिद्ध है। मैडम बलैवेट्स्की का मत है कि कुण्डलिनी की गति प्रकाश की गति की अपेक्षा अधिक तीव्र है।

देवी पुराण में कुण्डलिनी को सिंघाड़े के आकार का कहा गया है–

''यतः श्रृंगाटकाकारा कुण्डलिन्युच्यते तत :''।

सिंघाडा त्रिकोण के आकार का होता है। त्रिकोण इच्छा, ज्ञान और क्रिया– इन तीन शक्तियों का प्रतीक है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप अवस्थात्रय प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, सत्व, रज और तम इत्यादि ''त्रिक्'' भी त्रिकोण के अन्तर्गत हैं।

कुण्डलिनी को अष्ट प्रकृति रूपा भी कहा गया है। कुण्डलिनी की ये अष्ट प्रकृतियां भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार रूप है।

मूलाधार में कुण्डलिनी की स्थिति उसके आधार शक्ति के स्वरूप में प्रदर्शित करती है। वह भी पदार्थों को आश्रय देती हुयी उनकी, मूल सत्ता के रूप में विद्यमान है। यह कुण्डलिनी शक्ति चैतन्य सम्पादन करने के कारण निरालम्ब होकर शुद्ध चित्तस्वरूप में स्थित हो जाती है। यदि यह अधार शून्य हो जायेगी तो संसार की वस्तुएँ भी आधारहीन हो नष्ट हो जायेंगी। हठ्योगप्रदीपिकाकार के अनुसार जिस प्रकार पर्वतों तथा वनों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी का आधार शेषनाग है, उसी प्रकार सभी योग का आधार ''कुण्डलिनी'' है। गुरु के प्रसाद से जब यह प्रसुप्त कुण्डलिनी जाग जाती है, तब सभी पद्म (मूलाधारादि चक्र) तथा सभी ग्रन्थियां खुल जाती हैं।

कुण्डलिनी शक्ति से ही निखिल विश्व का स्फुरण होता है, जिससे इसका विश्व जननी रूप अभिव्यक्त होता है। यह सृजन शक्ति का स्थिर रूप है, जो समस्त ऊर्जा का स्त्रोत् है।

कुण्डलिनी शरीर में शब्दब्रह्म स्वरूप है। यह चिद्रूप है। लघुस्तव में शक्ति को विश्वजननी कहना इसी भाव का सूचक है–

''शक्ति कुण्डलिनीति विश्वजननी व्यापारबद्धोद्यता''

मातृकाएँ मातृभाव की व्यंजक हैं। इस रूप में ''कुण्डलिनी'' और ''परावाक्'' एक ही तत्व हैं। पश्यन्ती मध्यमा और वैश्वरी इसकी तीन अवस्थाएँ हैं।

शारदातिलक में वर्णित है कि परबिन्दु से अव्यक्त ''ख'' उत्पन्न होता है। वही शब्द ब्रह्म प्राणियों में कुण्डलिनी के रूप में अक्षरात्मा बनकर प्रकट होता है। उसी अक्षर स्वरूप से गद्य और पद्य आदि प्रकट होते हैं। कुण्डलिनी के द्वारा ही वर्णमाला का विकास होता है।

कुण्डलिनी का मदमस्त भ्रमरों के समान गुज्जार वेखरी वाक् को व्यक्त करता है। यही जीव में प्राण शक्ति के रूप में शरीर धारण करती है।

कुण्डलिनी के शब्दब्रह्म रूप होने के कारण प्रणव उसका वाचक है। वाचक और वाच्य में अभेद होने से कुण्डलिनी प्रणव स्वरूप है। कुण्डलिनी के साढ़े तीन घेरे ''अकार'', ''उकार'' और ''मकार'' के तथा आधा घेरा ''अर्धमात्रा'' का प्रतीक है। ''ओंकार'' और ''उमा'' दोनों में समान वर्ण हैं। अतः उमा ओंकार और कुण्डलिनी मूलतः एक ही तत्त्व है।

उमा को देवी प्रणव की संज्ञा प्राप्त है। लिंग पुराण में परमशिव का भगवती के प्रति कथन है कि मेरे प्रणव में क्रमशः अकर, उकार और मकार वर्ण हैं और तुम्हारे प्रणव मे उकार, मकार और अकार वर्ण हैं।

मंत्रों की रचना मातृकाओं द्वारा होती है, ये मातृकाऐं नाद रूप है। पंचदशीमंत्र त्रिखण्डात्मक होता है। इस त्रिखण्डात्मक मंत्र से सम्बद्ध होने के कारण ही कुण्डलिनी को मूलधारा में अग्नि कुण्डालिनी, हृदय का स्थान मूलाधार के नीचे स्थित वाग्भव त्रिकोण में है। इस वर्गीकरण से ऊर्ध्वमुखी कुण्डलिनी की तीन अवस्थाएं प्राप्त होती हैं, जिसका स्पष्टीकरण कुण्डलिनी योग के क्रिया द्वारा होता है। अरूणोपनिषद् में वर्णित कुण्डलिनी की कुमारी, योषित् और पतिव्रता–ये तीन अवस्थाऐं उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करती हैं।

वाग्भव बीज को भी ''कुण्डलिनी'' कहते हैं। वाग्भव बीज है– ''ऐं''। यह भी त्रिकोणाकार है। इसके अतिरिक्त ''ऐं'' शिव शक्ति से सामरस्य का भी बोधक है। तन्त्र शास्त्र की मान्यता के अनुसार ''अ'' शिव है और ''ई'' शक्ति का वाचक है अ+ई–''ऐं''। बिन्दु द्वारा उसके पर रूप की अभिव्यक्ति होती है।

कुण्डलिनी प्रधानतया क्रिया शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। स्वामी विवेकानन्द का मानना है कि कर्मों की जो शक्ति कुण्डलित होकर रहती है वही कुण्डलित होने के कारण ''कुण्डली'' कहलाती है। ''श्री कुण्डलिनी साधना'' में भी इसी भाव को व्यक्त किया गया है–

विषय के अभिघात से पैदा हुई स्नावीय गतियाँ शरीर के किसी न किसी स्थान में कुण्डलीकृत होकर रहती हैं और उनके आविधात के फल से स्वाप्निक अनुभूति रूप मृदु प्रतिक्रिया का उद्भव होता है। जिस केन्द्र मे विषाभिघात जनित गति प्रवाहों का अपशिष्टांश या संस्कार समष्टि संचित रहते हैं, उसको मूलाधार कहते हैं और उस कुण्डलीश्त किया शक्ति को कुण्डलिनी कहते हैं। मूलाधर सुषुम्ना नाड़ी के नीचे कुण्डलिनी का आधारभूत पद्म अवस्थित है। योगियों का करना है कि वह त्रिकोणाकार है। वर्तमान शरीर विधान शास्त्र के मत में भी वह त्रिकोणाकार है।

कुण्डलिनी काम शक्ति का भी प्रतीक है। यह सर्पाकार है। पाश्चात्य दर्शन में सर्प को काम वासना का भी प्रतीक माना गया है। डॉ. कमलाकार मिश्र इसे चिद् शक्ति और काम शक्ति दोनों रूपों मे स्वीकार करते हैं। इस मत में कोई विरोध भी नहीं है, क्योंकि एक ही शक्ति विविध रूपों में प्रकट होती है। ललितासहस्त्रनाम में परिगणित देवी के सहस्त्र नामों में उसकी उतने ही रूपों में अभिव्यक्ति होती है। सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो दुःख का कारण विषय वासनाएं ही हैं। यह विषय प्राणी को इस प्रकार आवृत किए रहते हैं कि वह अपने शुद्ध प्रकाश रूप को पहचान नहीं पाता है। यह वासनाएं मनुष्य को नाग की भांति डसती रहती है, अतः कुण्डलिनी को ''काम'' का प्रतीक मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इसके साथ ही यह बात भी ध्यान रखने की है कि ''काम'' पद मात्र ''सैक्स'' का पर्यायवाची नहीं है। काम का अर्थ है ''इच्छा'' शक्ति ही कार्य करती हैं। अतः काम को यहां व्यापक अर्थ में ग्रहण करना अभिमत है।

तन्त्र में भोग और मोक्ष दोनों को स्वीकार किया गया है। भगवती त्रिपुरासुन्दरी की ''कामेश्वरी'' कहा गया है। अर्थात् जो काम कि अधिष्ठानी है। भगवती का यह रूप उनके, विश्व जननी रूप को प्रकट करता है। तांत्रिक साधना वासनाओं को दबाने में नहीं अपितु उनके उदान्तीकरण में विश्वास रखती है। यह प्रक्रिया मनोविज्ञान के निकट है। वैज्ञानिकों का यह निश्चित मत है कि इच्छाओं का दमन करने से वे कुंठाओं का रूप धारण कर व्यक्ति को रोगी बना देती हैं। किन्तु उसका अभिप्राय यह नहीं कि व्यक्ति अत्यधिक भोग विलासी हो। आवश्यकता है विलासिता के नियन्त्रण की।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मूलधारे आत्मशक्तिः कुण्डलिनी परमदेवता।*
   शायिता भुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता।। – घेरण्डसंहिता, 3.4.9
2. *मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम्। – ज्ञानार्णवतन्त्र, 3.2*
3. *योगिनीहृदयम्, पृ. 59*
4. *स्वात्मान त्वा स्वापिषि कुलकुण्डे कुहरिणी।। – सौन्दर्यलहरी, श्लोक 10*
5. *सौ.ल. श्लोक 29*
6. *ललितात्रिंशती शांकरभाष्य, पृ. 93*
7. *प्रपंचसारतन्त्रम्, 2.51,53,54*
8. *कुण्डलिनी कुटिलाकारसर्पवत् परिकीर्तिता। – हठयोग प्रदीपिका, 3.97*

9. कल्याण, योगांक, पृ. 403 (योग और कुण्डलिनी, श्री हीरेन्द्रनाथ दत्त)

10. सौन्दर्यलहरी लक्ष्मीधरा टीका, श्लोक 10

11. तस्योर्ध्वे बिसन्तन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा ....। – षट्चक्रनिरूपण, श्लोक 10

12. Light Travels at the rate of.....

– कल्याण, योगांक, पृ. 403 (योग और कुण्डलिनी–श्री हरेन्द्रनाथ दत्त)

13. सौभाग्यभास्कर, पृ. 173

14. मेयमातृप्रमामानप्रसरैः संकुचत्प्रभम्।

शृंगाटरूपमापन्नमिच्छाज्ञानक्रियात्मक।। – योगिनीहृदयम्, 1.51

15. सशैलवन धात्रीणां यथाधारो हि नायकः।

सर्वेषां योगतन्त्राणां ..... ।। – ह.यो.प्र. 3.1.2

16. Kundalini is the static from the creative energy in bodies, which is the source of all energies, including prana. - The Serphant power, p. 15

17. लघुस्तुति, 2

18. प्रशतिनिश्चला परावाग्रूपिणी परप्रणवात्मिका कुण्डलिनी शक्तिः।

– प्रपंचसारतन्त्रम्, पृ. 318

19. तत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।

वर्णात्मनाऽऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः।। – शारदातिलकम् 1.15

20. षट्चक्रनिरूपण, श्लोक 11

21. अतएवास्य पदस्य देवीप्रणव इति संज्ञेति रहस्यविदः। उक्तं च लैगे भगवती प्रति परमशिवेनैव ....। – मंत्र और मातृकाओं का रहस्य, पृ. 68

22. मंत्र और मातृकाओं का रहस्य, पृ. 67

23. वाग्भवबीजस्य कुण्डलिनी संज्ञा। – सौभाग्यभास्कर, पृ. 175

24. The Centre where all residual sen-tions are, as it were, stored up in, called muladhara-chakra..... – कल्याण, शक्ति, अंक, पृ. 473

25. कुण्डलिनी साधना, पृ. 23

26. Significance of the Tantric Tradition, p. 148

उत्तराखण्ड की सामरिक स्थितिः चीन व नेपाल के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. सुरेन्द्र सिंह कुंवर
पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, हे. न. ब. ग. (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

उत्तराखण्ड राज्य को सामरिक दृष्टि से अत्यन्त संवदेनशील क्षेत्र माना जाता है, इस राज्य की सीमा दो राष्ट्र चीन व नेपाल से लगती है। जो सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्तराखण्ड की पूर्वी सीमा काली नदी, पश्चिमी सीमा टौंस नदी व उत्तरी सीमा महाहिमालय द्वारा बनती है। उत्तराखण्ड की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा चमोली में नीति–माणा र्दरा, उत्तरकाशी में नेलांग–जाढ़ुंग दरा, तथा पिथौरागढ़ में लिपुलेख व कुंगरी–विगरी दर्रे द्वारा बनती है। इन दर्रो से भारत व चीन के मध्य व्यापारिक सम्पर्क एवं सैन्य संघर्ष प्राचीन काल से होते आ रहे हैं। उत्तराखण्ड के नेपाल सीमा पर कालापानी क्षेत्र स्थित है। 1815 में अंग्रेज सरकार ने कालापानी से निकलने वाली नदी को ही कुमाऊँ–नेपाल सीमा माना है। कालापानी से निकलने वाली नदी को ही महाकाली नदी कहा गया है। उत्तराखण्ड नेपाल सीमा पर आवागमन सुलभ होने के कारण नेपाल से राष्ट्र विरोधी तत्वों के देश के अन्दर छुपने की सम्भावना निरन्तर बनी हुई है। आज उत्तराखण्ड का कोई शहर, बाजार व गांव ऐसा नहीं है। जो फेरी लगाने वाले मदारियों तथा अन्य व्यापार करने वालों से अछूता हो, लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है, कि इन लोगों में अधिकांशतः मुस्लिम व नेपाली ही होते है साथ ही क्षेत्र में रात्रि हो जाने पर ये वहीं शरण ले लेते है। ऐसे लोगों के प्रति सहानुभूति दिखाना मूर्खता होगी। क्योंकि आज राष्ट्र के दुश्मनों की रणनीतियां बदल रही है। इसलिए किसी अपरिचित व्यक्ति पर भरोसा करना उचित नहीं है। आज आई.एस.आई. के एजेन्ट नेपाल के रास्ते उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार व दिल्ली तक घुस कर यहां से हथियारों, नशीले पदार्थो व जाली मुद्रा की तस्करी कर अपने संगठन तक पहुँचाते हैं। जो हमारे लिए एक चुनौती का विषय है।

संकेताक्षरः *सामरिकी स्थिति, प्राकृतिक आपदा, सीमा विवाद, तस्करी।*

उत्तराखण्ड राज्य उत्तर–पूर्व के मध्य में स्थित है। यह 28°43'' से 31°27'' उत्तरी अक्षांश तथा 77°34'' से 81°02'' पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित है। इसके पूर्व में नेपाल, उत्तर में तिब्बत (चीन) पश्चिम में हिमालच प्रदेश व हरियाणा तथा दक्षिण में उत्तर प्रदेश स्थित है। प्राकृतिक सीमा बनाने का कार्य उत्तर में तिब्बत हिमालय,पश्चिम में टोंस नदी, पूर्व में काली नदी तथा दक्षिण पश्चिम में शिवालिक श्रेणियां द्वारा बनती है।[1]

उत्तराखण्ड़ भारत का वह अभिन्न भू–भाग है जो भौगोलिक दृष्टि से हिमालय पर्वत श्रृंखला के मध्य में स्थित है उत्तराखण्ड की भू–संरचना में 8000 मीटर से भी ऊँची चोटियों से सुशोभित उच्च हिमालय सुरम्य घाटियों से घिरा मध्य एंव लघु हिमालय तथा उपजाऊ तराई–भावर का मैदान स्थित है।[2] उत्तराखण्ड का सर्वेक्षण अध्ययन सात प्रमुख प्राकृतिक भू–खण्ड़ों को आधार मानकर किया गया है। अध्ययन का प्रमुख केन्द्र बिन्दु उपेक्षित, अपवंचित और साधनविहीन निर्बल ग्रामीण हैं। समग्र अध्ययन को चार प्रमुख खण्ड़ों में विभक्त किया गया है।

(क)उत्पादन प्रभाग– इसमे प्रमुख रूप से तीन भाग सम्मिलित हैं– कृषि, सामान्य उद्योग और लघु उद्योग।

(ख)आर्थिक आधारभूत ढ़ांचा– इसमें यातायात, संचार एवं ऊर्जा विपणन सुविधाएं, सिंचाई, बैंकिंग, भ्रमण सुविधाएं, वित्तीय सुविधाएं और सहकारिता अवस्थापना आदि सुविधाएं विकास कार्यक्रम की रीढ़ हैं।

(ग)सामाजिक सेवाओं का ढ़ांचा– शिक्षा, स्वास्थ्य, जल–आपूर्ति एवं पशु चिकित्सा सुविधाएं आदि।

(घ)समन्वयक विभाग– गृह, राजस्व, वित्त एवं नियोजन विभाग।[3]

9 नवम्बर 2000 को उत्तराखण्ड राज्य बनकर अस्तित्व में आया। भौगोलिक विशिष्टता की दृष्टि से यह राज्य अति प्राचीन काल से ही भारत के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रुप में प्रख्यात रहा है। इस राज्य की सीमांये उत्तर में चीन व पूर्व में नेपाल से लगती है। इसका लगभग 63 प्रतिशत भू–भाग वनाच्छेदित है। प्रशासनिक दृष्टि से यह राज्य 13 जनपदों, 49 तहसीलों, 95 विकासखण्ड़ों तथा 16414 गॉवों से मिलकर बना है। उत्तराखण्ड में सम्पूर्ण जनसंख्या का 78 प्रतिशत भाग गॉवों में तथा 22 प्रतिशत भाग शहरों में निवास करती है।[4]

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तराखण्ड राज्य की आबादी 1,00,86,292 है। 2001 के जनगणना के मुताबिक यह वृद्धि दर 19.17 प्रतिशत की है। यहॉ पुरुषों और महिलाओं का अनुपात 1000:963 है। इस राज्य का जनसंख्या घनत्व 189 प्रति वर्ग किलोमीटर है। राज्य की साक्षरता दर 79.63 प्रतिशत है। राज्य की सीमाएं नेपाल, तिब्बत, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के मैदानी इलाकों से जुड़ी हुई है। उत्तराखण्ड की अस्थायी राजधानी देहरादून है। देश की राजधानी दिल्ली से मात्र 240 किमी0 की दूरी पर स्थित है।[5]

उत्तराखण्ड़ राज्य की भू–आकृतिक गुरिल्ला युद्ध के लिए बहुत उपयुक्त है। अतः इस क्षेत्र में चीन तथा नेपाल द्वारा गुरिल्ला स्त्रॉतेजी का प्रयोग कभी भी किसी भी वक्त किये जाने से इन्कार नहीं किया जा सकता है।[6]

उत्तराखण्ड राज्य के चमोली, उत्तरकाशी, पिथौरागढ़, चम्पावत और ऊधम सिंह नगर तिब्बत (चीन) एंव नेपाल से अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का निर्धारण करती है। उत्तराखण्ड की नेपाल से लगभग 275 किमी0 सीमा रेखा है जो काली नदी द्वारा निर्धारित होती है साथ ही साथ चीन की भी 350 किमी0 सीमा रेखा उत्तराखण्ड राज्य से लगती है।[7]

सन्1962 के भारत एंव चीन युद्ध के बाद यह क्षेत्र सामरिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण माने जाने लगा है। दूसरी तरफ उत्तराखण्ड़ के पूर्व में स्थित नेपाल जिसके सम्बन्ध चीन व पाक से प्रगाढ़ नजर आते दिख रहे है। जिससे उत्तराखण्ड़ का सामरिक महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। जो राष्ट्रीय रक्षा का अभिन्न अंग बन चुका है।[8]

उत्तराखण्ड़ के सामरिक महत्व के प्रमुख दर्रे–

जिला–चमोली	जिला–उत्तरकाशी	जिला–पिथौरागढ़
1–नीति से तिब्बत	1–नेलांग से तिब्बत	1–लिपुलेख से तिब्बत
2–माणा से तिब्बत	2–जादुंग से तिब्बत	2–वाल्वादुर्रा से तिब्बत
3–बाराहोती से तिब्बत	3–थांगला से तिब्बत	3–दरमा से तिब्बत
4–तुनजुल से तिब्बत	4–मुंलिगला से तिब्बत	4–किओगाद से तिब्बत
		5–घाटगिलाधुरा से तिब्बत
		6–कुकरी–बिंगरी से तिब्बत[9]

1962 से पहले हिमालय पर्वत को दृढ़ प्रहरी माना जाता था। लेकिन अब स्थितियां बदल चुकी है आधुनिक युग में कुछ भी असम्भव नहीं रहा। आज विश्व ने विज्ञान की आधुनिक तकनीकि से अभेध्य रास्तो को आसान रास्तो में बदल दिया है जिससे कि युद्ध किसी भी समय और कहीं भी लड़ा जा सकता है। चाहे वे पर्वतीय राज्य हो या मैदानी सभी जगह युद्ध आज आसानी से लड़े जा रहे है। जबकि चीन ने तमाम अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण कर पाकिस्तान और नेपाल को भी यौद्धिक स्तर पर काफी मजबूती प्रदान की है। वर्तमान समय में नेपाल के दार्चुला जिले से लगे उत्तराखण्ड राज्य के पिथैरागढ़ जिले के धारचुला विलोक से अवैध व्यापार की तस्करी हो रही है। जबकि भारत और नेपाल के मध्य खुली सीमा होने के कारण बिना पासपोर्ट आगमन की सुविधा की आड़ में बड़ी संख्या में घुसपैठ हो

रही है। साथ ही साथ चीन चमोली के बड़ाहोती से आय दिन घुसपैठ करके अशान्ति फैलाकर तनाव का माहौल बना रहा है, वहीं दूसरी तरफ चीन द्वारा नेपाल को आर्थिक सहायता दी जा रही है। जिसके बलबूते पर नेपाल भारत विरोधी स्वर को बढ़ावा दे रहा है।[10]

आज केन्द्र सरकार की बेरुखी ने उत्तराखण्ड़ सरकार की चिंताये बढ़ा दी है, जबकि आज राज्य सरकार के पुलिस अधिकारी सब कुछ सामान्य होने का दावा कर रहे हैं लेकिन सीमाओं पर असामाजिक तत्वों की घुसपैठ अपनी तस्वीर को उजागर कर रही है। उत्तराखण्ड़ के सीमान्त क्षेत्रों में सुरक्षा चौकियां स्थापित होने के बावजूद सीमाओं पर घुसपैठ व तस्करी थमती नजर नहीं आ रही है। अभी हाल ही में पाकिस्तान की खूफिया एजेन्सी (आई.एस. आई.) के एजेन्टों के पकड़े जाने से राज्य में अराजक तत्वों की आवाजावी का खुलासा हो चुका है। यद्यपि अधिकारी इसे सामान्य बात बताते हैं लेकिन खूफिया विभागों की रिपोर्टो पर नजर डाली जाय तो सुरक्षा के लिहाजा से इसे चिंता जनक माना जा रहा है राज्य गठन के बाद से उत्तराखण्ड़ सरकार सीमाओं की सुरक्षा व्यवस्था को लेकर काफी चिंतित है।[11]

सन् 1999 के कारगिल संघर्ष में हुई पहली घुसपैठ की सूचना बार्डर के समीप रहने वाले गडरियों ने दी थी, तब जाकर हमारी सेना और खूफिया विभाग हरकत में आई थी। आज उत्तराखण्ड़ से लगी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर स्थित नीति, माणा, मलारी, गमशाली, बम्पा, मिलम, पाछू, गनघर, मापा, विल्जू, बुर्फूल्वा, मरतोली, रिलकोट, कुटी, रौंगकौंग, नाभी, गुन्जी, नपलच्यू, गर्ब्याग और बन्दी गांव से पलायन की जो स्थिति है उससे तो यही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि अगर दुश्मन द्वारा सीमान्त क्षेत्रों में घुसपैठ की जाय तो हमें पता भी नही चलेगा कि कब दुश्मन हमारे घरो में बैठ जाय। चीन से लगी उत्तराखण्ड़ की सरहद का बहुत बड़ा हिस्सा मानव समुदाय रहित है, जिससे चीन आये दिन बाड़ाहोती में घुसपैठ कर रहा है साथ ही साथ नेपाल के रास्ते चीन के साथ ही पाकिस्तान की खूफिया एजेन्सी आई.एस.आई भी भारत को नुकसान पहुंचाने की फिराक में है इसी तरह नेपाल में परिवहन सेवा को बेहतर बनाने के लिए चीन दिल खोल कर मदद कर रहा है।

सन् 1962 के युद्ध के बाद चीन- पाकिस्तान द्वारा उत्तराखण्ड़ में शान्ति व्यवस्था में दखल देने का प्रयास किया जा रहा है। हमारी सरकार को यह समझ में नहीं आ रहा है कि हमारे सरहद के गांव वीरान पड़े हुए है आम आदमी तक वहां नहीं है। सीमान्त क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं के अभाव में साल दर साल चमोली, उत्तरकाशी और पिथौरागढ़ जनपद के दर्जनों गांव दिन प्रति दिन खाली होते जा रहें हैं।[12]

नेपाल के साथ भारत की लगभग 1752 किमी0सीमा रेखा लगती है। जिसमें 275 किमी0 उत्तराखण्ड से लगती है, इस सीमा से नेपाल में प्रवेश के चार अधिकृत रास्ते हैं जहॉ से नेपाल में बेख्रौफ आवागमन जारी है। भारत और नेपाल के बीच खटास पैदा करने के लिए पाक खूफिया ऐजेन्सी आई.एस.आई. की लगातार बढ़ती कोशिश के कारण भारत में आतंकवाद और माओवाद खूब फल-फूल रहा है। जबकि नेपाल में आई.एस.आई. की घुसपैठ का समय 1996 माना जा सकता है।[13]

गृह मंत्रालय के पास उपलब्ध आंकड़ों के मुताबिक भारत के सीमान्त राज्यों में भारत-नेपाल सीमा पर मदरसों की संख्या में दिन प्रति बढ़ोत्तरी हो रही है। इस खबर के अनुसार आई.एस.आई. ने भारत के 5 राज्य के 9 जिलों की 800 किमी0 लम्बी सीमा पर मदरसों का निर्माण कराया। जहां से देश में घृणा फैलाने का काम जारी है। राज्य के इन सीमांत जिलों में मुसलमानों की जनसंख्या वृद्धि 32.76 प्रतिशत है जो राष्ट्रीय औसत से ज्यादा है, कुछ जिलों में मुस्लिम जनसंख्या वृद्धि दर 50 फीसदी से आधिक है। भारत-नेपाल सीमा पर भारतीय क्षेत्र में 343 मस्जिदें और 330 मदरसें हैं, जबकि नेपाल क्षेत्र में 282 मस्जिदें और181मदरसें हैं जो भारत विरोधी गतिविधियों में शामिल हैं।[14]

उत्तराखण से नेपाल जाने के रास्ते

उत्तराखण्ड से नेपाल जाने के लिए भारत सरकार और नेपाल सरकार द्वारा महत्वपूर्ण स्थानों पर झूलापुल लगाये गये हैं। जिनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी एस.एस.बी. ने संभाल रखी है। इन झूला पुलों के अतिरिक्त नेपाल जाने के कई अन्य मार्ग भी है जहॉ पर सुरक्षा का कोई बन्दोबस्त नहीं है। बनबसा ही एक ऐसा पुल है जहॉ से दोनों देशों की गाड़िया एक दूसरे राष्ट्र से सम्पर्क स्थापित करती है। रोटी-बेटी के आपसी रिश्ते व व्यापार परागमन संधि के कारण भारत-नेपाल के मध्य प्रतिदिन इन पुलों का व्यापक इस्तेमाल होता है।

1-टनकपुर

2-जौलजीवी

3-बलुवाकोट

4-बनबसा

5-झूलाघाट

6–धारचूला

7–धोती नाला तिगरमा पुल द्धनिमार्णाधीनऋ है।[15]

नेपाल से लगी सीमा की सुरक्षा का जिम्मा मुख्य रुप से सीमा सशस्त्र बल (एस.एस.बी.) का है इस क्षेत्र में 20 बॉर्डर आउटपोस्ट (बी.ओ.पी.) के जरिए हिफाजत होती है इसमें से धारचुला, जौलजीवी, बगौटी, गुरेली खायकोट तल्ला, खायकोट मल्ला, बिबिल, चौडाढेक, मढुंवा कायल, मटियानी, उचौली गोठ, देवीपुरा तामली, गुदमी, चूना भट्टा, चंदनी, खेत गांव, भजनपुर बनबसा, टनकपुर, झुला घाट, बुलाकोट, विचपुरी, नगला तराई, आलवृद्धि, पचौरिया, छिनकी, ब्रहम देव, दमगड़ा, सिसैया, घिघरानी, ओलतड़ी सिलौनी, सावली सेरा, खिटकिड़ी, जोग्यूड़ा, तितरी, धारीऐर, सेल तोप, तोली, चामी रौतेला बूम, सिरकुड़ सीम, चूका खेत, आमड़ा, आमनी, तरकुली, रौसाल, पंचे वर वाले हिस्से नेपाल के काफी करीब है। इन क्षेत्रों में नदी पार करने वाले लोगों की निगरानी के लिए नाइटविजन के अलावा अन्य कोई बदोबस्त नहीं है। न ही पुलिस एंव (एस.एस.बी.) के पास प्रशिक्षित तैराक है। जो काली नदी की सुरक्षा व्यवस्था कर सके। नवम्बर 2010 में पुलिस महानिरीक्षक राम सिंह मीणा ने कहा कि दोनों देशों के बीच नदी क्षेत्र की सुरक्षा के लिए कदम उठाने की जरुरत है।[16]

हाल ही में (एस.एस.बी.) के प्रमुख प्रणव सहाय ने बताया कि मौजूद समय में भारत–नेपाल सीमा पर 450 सीमा चौकिया है। एक चौकी से दूसरी चौकी की बीच की दूरी औसतन 4.5 किमी. है जहां से मादक पदार्थो व जाली मुद्रा की तस्करी जोरो से हो रही है, पहाड़ी रास्तो घने जंगलो तथा भौगोलिक दृष्टि से टनकपुर से बहराइच तक की सीमा तस्करों के लिए रामवाण साबित हो रही है जिससे की तस्करो पर लगाम नहीं लग पा रहा है।[17]

वर्तमान समय में चीन ने उत्तराखण्ड़ से लगी सीमा पर रेलमार्ग, सड़क मार्ग, हवाई पट्टियां और दूर संचार माध्यम के साधनों को पूर्व रुप से विकसित कर लिया है।, जबकि दूसरी तरफ उत्तराखण्ड के अन्तिम सीमा क्षेत्र तक पहॅुचने के लिए तीन से चार दिन तक का पैदल सफर तय करना पड़ता है। जबकि पिछले पांच वर्षो में चीन के गश्ती दलों द्वारा कम से कम भारतीय सीमा में 37 बार घुसपैठ की है। उत्तराखण्ड़ सरकार में मुख्यमन्त्री रहे बहुगुणा जी ने बैठक में यह मुद्दा उठाते हुए कहा कि सीमान्त क्षेत्रों में बिजली, पानी, स्कूल स्वास्थ्य सेवायें, सड़क, परिवहन, दूर संचार माध्यम के साधन आदि जरुरी सुविधाओं को बढ़ाना चाहिए, साथ ही साथ पूर्वोत्तर राज्यों की तर्ज पर उत्तराखण्ड़ को धन देने की मांग की है और ये भी कहा कि उत्तराखण्ड़ की आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं है। जिससे कि सीमा से आये दिन तस्करी और घुसपैठ की वारदातायें हो रही है।[18]

आज पाकिस्तान नेपाल में आई.एस.आई. का अड्डा बना रहा है। जिससे हमारी सुरक्षा व्यवस्था पूर्ण रुप से खतरे में पड़ सकती है। क्योकि पाकिस्तान एक ओर भारत के क मीर राज्य में आतंकवादी गतिविधियां बरकरार किये हुए हैं दूसरी ओर नेपाल ने रास्ते भारत के सीमावर्ती राज्यों में घुसपैठ को अंजाम दे रहा है।[19]

केन्द सरकार और राज्य सरकार दोनों को आपस मिलकर सीमावर्ती क्षेत्रों को मूलभूत सुविधाओं से जोड़ने के लिए अपने विकास कार्यक्रम को मजबूत करने व नयी योजनाओं को धरातल पर लाने के लिए सीमान्त क्षेत्रों में अपनी सुरक्षा के पुख्ता इन्तजाम जुटाने चाहिए। ताकि विशम परिस्थिति में दुश्मन को मुंहतोड़ जवाब दिया जा सके।[20]

निष्कर्षत

चीन और नेपाल की सीमा से लगे उत्तराखण्ड राज्य के चमोली, उत्तरकाशी, पिथौरागढ, चम्पावत और ऊधमसिंह नगर सीमावर्ती जनपद होने के बावजूद सरकार द्वारा अनदेखा रुख अपनाया जा रहा है। जबकि दूसरी ओर अरूणाचल प्रदेश व हिमांचल प्रदेश से लगी सीमाओं पर भारत सरकार द्वारा सुरक्षा की दृष्टि से सर्वांगीण विकास किया जा रहा है जबकि भौगोलिक दृष्टि से हिमांचल व अरूणांचल प्रदेश पठारी क्षेत्र है व युद्ध की अवस्था में छुपाव की स्थितियां उपयुक्त नहीं हैं। जबकि उत्तराखण्ड की सीमाओं पर छुपाव हेतु गुरिल्ला युद्ध के लिए उपयुक्त भौगोलिक स्थान है। सरकार द्वारा अपनाया जा रहा अनदेखा रुख इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि 16–17 जून 2013 को उत्तराखण्ड में आयी भीषण आपदा से चीन से लगी चमोली, उत्तरकाशी व पिथौरागढ़ जनपद की सीमा तक यातायात का संचालन तीन माह तक नहीं हो पाया था। इसके विपरीत चीन ने अपने सीमान्त क्षेत्रों तक टू लेन वे सड़कों व रेलमार्ग का निर्माण कर लिया है।

यदि इन अवसरों का लाभ उठाकर चीन इन व्यापारिक दर्रो से होकर भारतीय क्षेत्र में प्रवेश करता है तो ऐसी स्थिति में वहां पर स्थित भारतीय थल सेना व अर्द्ध सैनिक बलों तक खाध्य एवं रसद सामाग्री पहॅुचाने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। जिस प्रकार भारतीय सरकार द्वारा इन सीमावर्ती क्षेत्रों में हवाई मार्गो का विकल्प तलाशा जा रहा है। उसी प्रकार वैकल्पिक सड़क मार्गो का भी विकास किया जाना चाहिए, ताकि कि राष्ट्रीय राजमार्गो के

अवरूद्ध होने की स्थिति मे उन वैकल्पिक मार्गो का प्रयोग कर सीमन्त क्षेत्रों तक यातायात का संचालन किया जा सके।

आज नेपाल में आई.एस.आई. के सक्रिय होने से उत्तराखण्ड राज्य की सीमा सुरिक्षित नहीं है। क्योंकि नेपाल और उत्तराखण्ड की सीमा दोनों ओर से खुली होने से यहॉ पर सुरक्षा व्यवस्था ना के बराबर है। कयी जगह पर नेपाल और हमारी सीमा 10–50 मीटर की दूरी पर है इसलिए इन क्षेत्रो से नशीले पदार्थ, जाली मुद्रा और अवैध हथियारों की तक्करी हो रही है। जिसे रोकने में हमारी सरकार नाकाम साबित हो रही है। जो वर्तमान समय में गम्भीर चुनौति के रुप में उभर कर राष्ट्र के सम्मुख खड़ी है। जो एक चिन्ताजनक विषय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *www.uttarakhand.com*
2. *उत्तराचंल में उधमिता का विकास–डा0 अरुण कुकसाल, संस्करण–2004, पेज–26*
3. *उत्तरांचल की खोज–डॉ0 आर0 पी0 ध्यानी, पेज–54,55*
4. *हमारा उत्तरांचल–प्रो0 हरिमोहन, संस्करण–2002, पेज–22*
5. *www.uttarakhand.com*
6. *अमर उजाला 25 मार्च 2001, लेख–देवेन्द्र सत्ती, नेपाल की ओर उत्तराचंल,*
7. *देहरादून का गजेटियर–एच0 जी0 वाल्टन, संस्करण–2006, पेज–5*
8. *अमर उजाला 25 मार्च 2001, लेख–देवेन्द्र सत्ती, नेपाल की ओर उत्तराचंल,*
9. *www.devbhoomimedia.com*
10. *दैनिक जागरण 4 फरवरी 2010*
11. *अमर उजाला 14 अप्रैल 2001, नेपाल में पाक दूतावास की ओर से*
12. *अमर उजाला 17 नवम्बर 2010, लेख–ले0 जनरल मोहन चन्द्र भण्डारी*
13. *इण्डिया टुडे, 7 जनवरी 2001, पेज–11*
14. *सम्पूर्ण समाचार पाक्षिक :प्रथम प्रवक्ता 1 मार्च 2002 पेज–11*
15. *पंजाब केसरी 10 सितम्बर 2016,*
16. *अमर उजाला 15 नवम्बर 2010, लेख–राम सिंह मीणा पुलिस (महानिरीक्षक)*
17. *अमर उजाला 18 दिसम्बर 2011, लेख–प्रणय सहाय, (एस.एस.बी.) प्रमुख*
18. *अमर उजाला 17 अप्रैल 2012 अमर उजाला ब्योरो*
19. *रक्षार्थ– ''नेपाल और भारतीय सुरक्षा'' जून–2003, पेज–84*
20. *सहारा समय 22 जुलाई 2016,*

Women as Catalysts of Change in The Social Stratification in Ancient India (With Special Reference to The Sudra Women)

Dr. Manorama Upadhyaya
Principal, Mahila P.G. Mahavidhalaya, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The dominant discourse of women in early Indian society has remained confined to women within the house-hold. As a daughter, wife, mother and in other capacities, women constitute practically an undifferentiated group, with a fixed set of norms and duties they are seen to have adhered to. The historical perspective in these discourses is in tracing their fall from an ideal exalted position in the Vedic times reflected in their participatory scholarly and ritual status, to stages of decline of the status. A major aspect of social-stratification in India is the Jati or the caste- system. This complex social strata was a result of absorption of the Tribals and Harappan cultures in the Aryan fold . In this patiarchical social structure women seen to have become "Trigger Mechanism" for social class/caste division or stratification, through Anuloma (hypergamous) and the pratiloma (hypogamous) marriages. Children born of such marriages have been termed as varnasankara or mixed Varna and their position in the society was not considered that much respectable as the pure - blooded progeny. Those devoid of varna were identified with a Jati or Caste (a Spanish word which means - breed, race, strain or complex of hereditary qualities). It is a striking fact that the responsibility of the degeneration of varna and formation of caste was laid on the shoulders of women as Matridosha .

Keywords: *Women, catalysts, social stratification, Sudra women.*

The dominant discourse of women in early Indian society has remained confined to women within the house-hold. As a daughter, wife, mother and in other capacities, women constitute practically an undifferentiated group, with a fixed set of norms and duties they are seen to have adhered to. The historical perspective in these discourses is in tracing their fall from an ideal exalted position in the Vedic times reflected in their participatory scholarly and ritual status, to stages of decline of the status. (Nearly all nationalist writers have followed the Altekerian paradigm in this context). As adjuncts, women are neither active agents in societal process, nor do they represent variant profiles. Such studies are also, however limited to the Aryan women. As Uma Carkrabarti[1] raises the question : What ever happened to the Vedic Dasi? A woman in servitude, captured subjugated, and enslaved by the conquering Aryans, but who also represent one aspect of Indian woman hood.

A major aspect of social-stratification in India is the Jati or the caste- system. This complex social strata was a result of absorption of the Tribals and Harappan cultures in the Aryan fold [2]. In this patiarchical

social structure women seen to have become "Trigger Mechanism" for social class/caste division or stratification, through Anuloma (hypergamous) and the pratiloma (hypogamous) marriages. Children born of such marriages have been termed as varnasankara or mixed Varna and their position in the society was not considered that much respectable as the pure - blooded progeny. Those devoid of varna were identified with a Jati or Caste (a Spanish word which means - breed, race, strain or complex of hereditary qualities). It is a striking fact that the responsibility of the degeneration of varna and formation of caste was laid on the shoulders of women as Matridosha [3(a)]

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरूत्पादितान्सुतान्।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्।।

and marrying a sudra women leads to the fall of a man from his varna and the child born is not respected [3(b)]

शूद्रावेदी पतत्यत्रेरू तथ्यतनयस्य च।
शौनकस्य सुतोत्पत्या तदपत्यतया भृगोः।।

It has been again said in the Manusmriti that if higher varna i.e. the Brahmanas, the Kshatriya and the Vaishyas marry a woman of, low Varna (sudra), they fall from their own place and pave way of degeneration for their progeny[4]—

हीन जातिस्त्रियां मोहा दुद्वहन्तो द्विजात्तयः।
कुलान्येन नयन्त्याशु ससंतानानि शूद्रताम्।।

Though, not a positive thought, the truth remains that that the cause of inducting impurity in the race, was the woman. One of the reasons of the evolution of the Jati or the caste-system in ancient India was mixed marriages and the progeny born of such marriages. Whether be it an Anuloma marriage or a Pratiloma marriage, the progeny was called after the Jati of his/ her mother as is clear from Manusmriti, which states:[5]

पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमणोक्त द्विजन्मनाम्।
तानन्तर नाम्नस्तु मातृदोषात्प्रवक्षते।।

I. e. ,sons born of a woman of low caste belong to the caste of their mother. If such was the case, can it be inferred that - some sort of matriliny prevailed in the ancient Indian social structure and woman especially of low caste (Sudra) became the main component in deciding the caste of her progeny. Present paper is an attempt to trace women as catalyst of change in the social structure in these to context and to indicate "whatever happened to the Vedic Dasi".

Jati (Caste) stratification and women

According to M.S. Srinivas (Social Change in Modern India) caste is undoubtedly an all India phenomenon in the sense that there are everywhere endogamous groups which form a hierarchy and that each of these groups had a traditionally association with one or two occupations.

There are several theories regarding the origin of the caste system in ancient India[6]. Prevalent amongst them are : assimilation of Tribal forces in the Larger society[7], and (as a result) mixed marriages[8]. Kangle disagrees with the theory of mixed marriages. He says The theory of four varnas, though, broadly true of ancient society has had to take into account, forms of social organization which had little relation to that system. There were numerous communities in society whose place in the scheme of four varnas could not be easily determined. An attempt is made in the Arthashatra and the Smritis to bring them into some sort of relation with the varnas . This is done by inventing the theory of the mixing of the varnas . This theory is of extreme doubtful validity. There seems little doubt that some of these communities, for example, like Urga and Ksatta seem to have been the warrior clans. Names like Magadha and Vaideha contain an obvious reference to the region from which the communities came, whereas names like Vaina, Kusilave, perhaps Sutta appear to be derived from the profession followed by the community. It is therefore, hardly possible to believe that any

of these communities really came being as a result of mixed marriage among the four varnas.[9]

Mr. Kangle seems to have focused his attention only on one point regarding the rise of caste in ancient India. It seems that assimilation of various aboriginal tribes and communities, warrior clans, regional representations and professional classes in the Aryan fold was the first step towards the formation of varna system. Then, inter-marriages amongst the varnas gave rise to further divisions, called Jatis. And, mixed marriage formed one of the reasons, not the only reason.

I would not go in to the details of the Aryan - non-Aryan rivalries nor in the theories related to the rise of Varna division. But in order to understand the formation of caste stratification, we will have to take into consideration, the process, of assimilation (why and how) of the native population into the Aryan fold. Suffice will be say that the first indication of a stratified society lay in the 'Racist' tendencies of the Aryans who fought and defeated the Dasas or the Dasyus the Dasa in Iranian stood for enemy[10] and the Indo Aryan applied the terms to their enemies in Indian i.e., the native population), did not treat them kindly and enslaved many of them and coined several derogatory terms for them Gradually the varna ceased to have any racial significance. The distinction between Aryan and non-Aryan lost its significance to a certain extent because Dasyus were accepted with in the Aryan fold as Sudras. They were no longer an alien race but a subordiate partner with in the Aryan system [11]. Suvira Jayaswal [12] says that the Dasas or the Dasyus were the Pre- Vedic Aryans who (the first batch) came into contact with the Harappan people and they gradually lost their colour, traditions and significance and became part of the Harappan culture. When another batch of the Indo-Aryan (a larger group) entered the Indus region, the descendants of the first batch were accepted because of the same lineage. R.S. Sharma[13] is of the view the higher strata of the non Aryans was assimilated into the higher class of the Purohits and Warriors of the Aryan clan and the same was the case with the lower strata with the 'VIS'. Two such references have been found which make it clear that the enemies of the Aryans were given a high place in this mixed society. The Rigveda tells us (Rigveda VI 22.10 यया दासान्र्याणि वृत्र करो वज्रिन्त्सुलूका नाहुषाणि) that

Indra converted Dasas into Aryans. According to Sayan they were introduced to the Aryan culture and traditions. Elsewhere it is stated (Rigveda X 49.3 ''अहं शूष्णस्य श्नयिता वधर्यमं न यो आर्य नाम दस्यवे) that Indra deprived the Dasas of their Aryan status.

Pargiter [14] speaks of the existence of some sort of Brahmanic Institution before the Aryans, as Indra has been said to be the slayer of the Brahmanas and his chief enemy was Vratra - a Brahmana. Probably the priestly class (of the non-Aryan community) was absorbed into the higher strata and they also could perform sacrifices and participate in the priestly activities. Sereral references to Black Rrishis (ascetics) and dasa Purohits as Dirghatamas, Devodass etc. have been found in the Rigvedic hyms. Even some vanquished chiefs were given appropriate place in the social structure. References of Dasa Chiefs as Balbutha and Taruksha are found. (They are said to have given gifts to the Aryan Purohits). Similar was the case with the professional class. The widows of the vanquished were also accepted into the fold as Dasis.

All the above inferences make it clear that the native population (which consisted of variety of groups and communities) was initially assimilated in the Aryan structure, without any strict inhibitions, as Dasas. But (Later on) on the basis of differences in interest tendencies i.e. Guna Dharma and Karma, they came to occupy a low position in Aryan social structure as Viratyus and Sudras. The status of the castes was determined by means according to their conduct

and martial and ruling races like Yavanas, Sakas etc, were assigned the status of the Kshatriyas, but as they did not properly follow the usages of Sanatan Dharma, or the Eternal religion, they were called the Vratayas or the degraded Kshatriyas. Similar rule was applied to all other varnas as well. Manu mention may castes, which were formed by the degradation of the original varnas on account of non-observance of sacred rites. Thus, the Vratja Brahmins were known as Bhrijjakantaka, Avantya, Vatadhana, Pushpandha and Saikha, Vratya, Kshatriyas became Jhalla, Malla, Lichchhvi, Neta, Karava, Khasa, Dravida, Paundraka, Orda, Kamboja, Yavana, aka and Parada. Vratya, Vaishyas became Sudhanvan, Acharjiya, Karusha, Vijanman, Maitra, Savatta, Yet, there were no strict class distinctions. The Arthashastra forbids the sale or pledging of a minor belonging to any of the four varnas, adding that Mlechhas may sell or pledge their children, but no Arya shall be made a dasa – आर्य प्रणमप्राप्त व्यवहारं शूद्र विक्रयाधानं नयतः स्वजनस्य द्वादषणोदण्ड..... न त्वेवार्यस्य दासभावं।[15] **Inter marriages were not unknown Dirghatanas and Kashivat (both born of Sudra dasis) Parashar (of Kshvapaka woman) Kapilanjad (of Chandala woman) are examples of the progeny born of Brahmana and Kshatriya fathers and Sudra mothers. It is true that in the beginning there were no rigid restrictions but slowly and gradually the idea of separation stiffened. It was first the ritual and ceremonial purity, which, as time went on, took an exaggerated aspect. The distinction among the four varnas now started appearing as Dvija or Sudra. The inter-varna marriages were rejected on the grounds of cultural and racial purity and it was thought that inter varna marriages lead to the pollution of whole society. As a result, the concepts of Vratya and Vamasamkara came into being and mixed marriages led to the formation of Jati or caste. The Upanishads and the Mahabharata say that other than the four varnas, there were several Jatis, which had formed because of Anuloma and pratiloma marriages[16], as some people inter-married with out any consideration for the purity of Varna [17].**

Similar references are found in the Sutras [18]. Baudhayan uses 'Vratya' for mixed blood progeny. Brihaddharmapurana [19] categorizes the Vamasamkara castes into three divisions (1) Uttam Sankara, which were twenty in numbers (2) Madhyama samakara twelve in number and (3) Adham sankara or Antyaja - nine in number.

This division is important as it points towards the further stratification of castes into sub-castes, probably on the basis of their original status in the Pre-Aryan society. For eg., the ruling and warrior class the priest class, the aboriginals and profess nails formed the first and second category, and those who belonged to lower strata of the pre-Aryan society, formed the third category.

In this entire process of caste stratification, women became the catalyst of change, because whether the marriage was Anuloma (hypergamous) or Pratiloma (hypogamous), the progeny belonged to the Jati of his/her mother, expecially in the case of the male of upper three varnas, marrying, a Sudra women. The Mahabharata [20] states

भार्याच्श्रतस्त्रों विप्रस्य द्वयोरात्मा प्रजायते।
आनुपूर्व्याद द्वयोहीनो मातृतात्यौ प्रसूयतः।।[21]

A Brahman can take wives from all the four varnas. The child begot of the women of the first two varnas, will be called a Brahmana, however, those born of a Vaishya wife or a Sudra wife, fall from their status, are not known by their father's varna, but are considered of the Jati of their mothers. The Manusmriti mentions some fifty seven jatis born as a result a mixed varnas and the offsprings of mixed union and so forth. It is to be noted that Varna Samkara children did not enjoy a respectable position in the society. They have been alloted the duties of serving the higher

strata or lowly works by the Shastrakaras. Further ,inter marriages amongst the castes, lead to the formation of sub castes and a much lower status for the progeny was granted. However, children born of mixed marriages among the sub- castes have been named after the profession they followed it has been stated in the Mahabharata

इत्येते संकरे जाताः पितृमातृव्यतिक्रमात् ।
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्या स्वकर्मभिः ।।

Jatis/Castes born of Anuloma Marriages

- Ambastha: Baudhayana[22] and Smritis [23] speak of Ambastha as a child of a Brahmin father and a Vaishya mother and they practiced medicine Ambastha probably denotes a regional name and was used for the non Aryans.
- Ugra : Children of Vaishya father and Sudra mother have been termed as Ugra by Gautam [24], but Baudhayana speaks of a kshatriya father and similar view has been expressed in the Smritis :
- Nishada : This caste of boatman and fisherman was a result of mixed marriage between a Brahman father and Sudra mother[25].
- Rathakara : A professional class of the Vedic times, the Rathakara occupied a dignified place in society and enjoyed the right of agnihotra. But in the later period their position declined. Baudhyana [26] states them to be a caste born of a Vaishya father and a Sudra mother.
- Parashava : A child born of a Brahman father and Sudra mother has been called parashava [27] or nishada.
- Avrata : Brahamana father and Ugra Mother[28].
- Abhiras : Brahamana father and Ambasta mother [29]. This caste use to reside on riverside areas far from cities and villages. These are also referred to in the Puranas [30] and Hemchanra [31] calls them as Mahasudras.
- Dhigvana : Brahmana father and Aayogave mother[32].
- Murdhavisikhta : Brahmana father and Kshatriya mother.

Jatis/ castes born of Pratiloma Marriages

- Maqadha: Both Mahabharata [33(a)] and Gautama [33(b)] speak of this caste to rise from the inter marriage between a Vaishya male and a kshatriya female. Baudhyana[34] speaks of a combination of a Sudra male and a vaishya female. This was a business caste and have been termed as Shakadvipi kshatriyas in the Vishnupurana [35].
- Vaidehaka : A Sudra male and a kshatriya female were the progenitor of this caste says Gautam.[36] But Mahabharata, Baudhayan and Smritis [37] speak of Vaidehakas as a caste born of a Vaishya father and a Brahamana Mother. These were the keeper's of royal harems.
- Sutta: The sutrakaras and Smritikaras speak of this caste born as a result of inter marriage between a Kshatriya father and a Brahmana Mother. They worked as charioteers.
- Ksatta : A progeny of Sudra father and kshatriya mother.
- Dhivara : Vaisya father and kshatriya Mother[38].
- Chandalas : Sudra father and brahmana mother[39]

Similarly such castes came into being as result of the inter marriages between the varnasamkaras as the Mahabharata[40] says –

ऐतऽपि सदृशान वर्णान् जनयन्ति सवयोनिषु ।
मातृजायाः प्रसूयन्ते ह्यवरा हीन योनिषु ।।

i.e. when the varnasankaras marry among themselves their children are called after their varnas, but if they inter marry a women of a low caste, the progeny belongs to the jati of the mother.

Women as Catalyst It can be inferred from the above list that in anuloma marriages, where the father was of a higher varna, the progeny born (especially from a sudra woman) was not entitled to the father is higher varna and was not accepted in the pure- blooded Aryan division and neither accorded the lineage of their father, so they followed the lineage of their Mothers (as caste in Portuguese means lineage) there by establishing martiliny in the social stratification. Thus the mother became the cause of degeneration in the varna. (It should be borne in mind that a comman term Sudra has been used for all native population . So a Sudra woman could be a nishad, an ambastha, etc. and the progeny was known after the jati of the mother i.e. Sudra (nishada woman's son-nishada). Even in the pratiloma marriages, though the mother belonged to a higher varna, but she introduces impurity by marrying a male of lower caste. The example of shakadvipi kshatriyas can be quoted here. Similar ideas have been expressed regarding the formation of sub- castes or up jatis. Thus, in the case of inter or mixed marriages between the varnas and the castes, women become the catalysts of change in social stratification.

References

1. *Sangari, Kumkum & Vaid Sudesh , ed. Recasting women : Essays in Colonial History p. 28. pub: Zuban, New Delhi 2006*
2. *जायसवाल सुवीरा : जातिवर्ण व्यवस्था, उद्‌भव, प्रकार्य और रूपान्तरण P.54 Pub ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन दिल्ली, 2004*
3. *(a) मनुस्मृति : व्याख्या दर्शनान्द सरस्वती Ch. 10/6*
   (b) Ibid: Ch. 3/16
4. *Ibid : Ch. 3/15*
5. *Ibid : Ch. 10/14*
6. *References can be made for a detailed study to:*
   (i) Ghurye : Caste, class & Occupation in India, p 165- 168,172 Pub : Popular Prakashan, Bombay , 1950 (He writes that caste system is a Brahmanic child of the Indo-Aryan culture cradled in the land of Ganga)
   (ii) Dubois: Hindu manners, customs and ceremonies P. 173
   (iii) Hoccart, Arthur Maurice: Caste, a Comparative study p 11-29 Pub: Methun & Co. Ltd., London, First Pub. 1938
   (iv) Serart, Emile : Caste in India " The facts and system, Translated by E. Devison Ress P. 2, 19-32 Pub. Methuen & Co. Ltd., London, First Pub. 1896.
   (v) Nesfield, J.C : Brief view of the caste system of the North - West Provinces and Oudh, P. 7 Allahabad 1885.
7. *For detailed study see :*
   (I) Kosambi; D.D : An Introduction to the study of History P 25 Pub. Polular Prakashan, Bombay 1956.
   (ii) Habib, Irfan : Interpreting India P. 19
8. *(i) Arthashatra*
   (ii) मनृस्मृति
9. *Kangle, R.P. Kautilya's Arthashastra III P. 146 Pub University of Bombay. 1965*
10. *Ghurye : Op cit P 160-162*
11. *Kumar, Sangeet : Changing role of the caste system : A critique PP 93-96. Pub Rawat Pub New Delhi 2005*
12. *जायसवाल सुवीरा : Op Cit P 147*
13. *शर्मा, रामशरण : शूद्रो का प्राचीन इतिहास P 15-16*
14. *Pargiter: Ancient Indian Historical Tradition PP 306-8*
15. *Arthashastra : 3/13/1-4*
16. *(I) Chhandogya Upanishad : 5/10/7*
    (ii) Mahabharatha : 296-59
17. *Mahabharata Vanaparva : 80/31-33*
18. *Gautam dharmasutra, 216/10, 18/24, 4/14 : Baudhayana. 1/9/3, Apasthamba 1,2,4,9,5*
19. *Brihaddharmapurana Uttarkanda PP 33-48*
20. *Mahabharata : Anusasana Chap 48/4*
21. *Ibid : Anusasana Chap 48/29*
22. *Baudhayania Dharma sutra, 1/93*
23. *Yajnavalla smriti, 1/19 Manusmriti 10/8*

24. *Gautama Dharmasutra : 4/14*
25. *Baudhayana Dharma Sutra : 1/9*
26. *Baudhayana Dharma Sutra : 1/96*
27. *Mamusmriti : 10/8*
28. *Mamusmriti : 10/15*
29. *Mamusmriti : 10/15*
30. *Vayu Purana 99/296; Matsya Purana 50/76*
31. *Shadanusasana 2/4/54*
32. *Mamusmriti : 10/15*
33. *(a) Mahabharata : Anusasana 4/12*
    (b) Gautam Dharma Sutra 4/15.16
34. *Baudhayana Dharma Sutra 1/9/4*
35. *Vishnupurana 2/3/16*
36. *Gautam Dharma Sutra 1/4/15.16*
37. *(i) Mahabharata : Anusasana 48/10*
    (ii) Baudhayana Dharma Sutra 1/9/8
    (iii) Yajnavalpya : 1/93 & Manu 10/47
38. *Gautam Dharma Sutra 4/17*
39. *Manusmriti : 10/12*
40. *Mahabharata : Anusasana 48/14*

Post Modernist Artifice in The Novels of Namita Gokhale

Rasmi Agrawal
Lecturer, Govt. P.G. Sanskrit College, Kota

shodhshree@gmail.com

Abstract

Namita Gokhale has received wide critical acclaim as an unconneventional story teller. A wide spectrum of concerns, specially related to women, have been inflected by her through postmodernist aesthetics. The postmodern spirit lies coiled within her literature in the form of alienation from reasoning, cause and effect phenomenon, society and in the intense consciousness of self. Her novels are a manifestation of a new paradigm of mind and culture where she refrains from any form of totalization and celebrates indeterminacy and unfinalizability of meaning, truth and reality. Namita's oeuvre is best defined by her ability to apply postmodernist plurality to produce new and unusual insights into the depth of human nature and needs.

Keywords : *Postmodern spirit, self, alienation, plurality.*

Contemporary literature is a witness to modern man's anti-illusionist sense of isolation and his quest to redefine his identity by raising consciousness and evaluating the existing dilemnas and mental turmoils. As a contemporary post modernist writer, Namita portrays the triumph of the uncanny and subverts the notion of ultimate meaning of anything. Her humanistic concerns are displayed by her powerful presentation of the innate longings and cravings of a woman lifting the veil of secrecy from female sexuality never discussed before, so boldly in public. The hidden unexplored sexual aspects of a woman's psyche, have been discussed in her novels in an outrageous manner. The Postmodernist genre of writing suits her as she undermines the commonly held notion of things and provides new and unusual solutions to the problems of the protagonists.

Paro : Dreams of Passion, the debut novel of Gokhale challenges the trends and values of the conventional patriarchal society and raised much controversy in the literary and social circles due to the writer's audacious approach. It exposes the inherent hypocrisy and double standards of society. Paro, the protagonist, being a postmodern woman defies the uniform pattern of leading a life chalked by the society and unsettles people by her unusual ideas and actions. She signifies real passion, spontaniet, natural charm and revels in the art of how to tame the needs of men around her. She is liberal and independent as compared to her counterparts and is a touchstone of a postmodern woman who leads life by her own choice. Paro has no inhibitions in seducing men, even if they are older or younger to her or her friends' husbands. Refusing to get tied down to the humdrum monotony of being a house-wife, she moves boldly and freely in society and repulses the idea of clinging to the traditional image of a

'homemaker'. Paro, in the beginning of the novel, is married to BR, a sewing machine business tycoon. But one night she finds her husband screwing the neighbour's daughter in her bedroom. Her husband's infidelity deeply hurt her and she tried to wound herself with a knife. When B.R. saw this, he did not pay much heed, instead he laughed at Paro. This faithlessness and promiscuty of her husband struck Paro deeply. She accepted that good and evil are a part of the universe and you can't stand outside the universe. Great promises and ethics do not exist in reality. To take revenge from B.R., she also chooses the path of plurality. Namita, here presents the belief that a wife is not husband's bond-slave. But his companion and equal partner in all his joys and sorrows. She, as a human being, is also free to choose her own path. She does not aim to make her novels accurate representations of life but simply portrays how her character's confront life without any attempt at reasoning or justifying their acts, Paro, thus separates from her husband and feels herself free. She does not search for a stable meaning in life but wishes for temporary satiety. Just for the namesake of security in marriage she does not make any compromise. Shattering the established codes of morality, she moves from one relationship to another, from B.R. to Bucky Bhandpur, a test cricketer to Avinendra, the son of Minister of State of Industry and then to a politician Shambu Nath Mishra. She displays a wonderful potential of making a virtue of necessity. Namita does not advocate the ideal of self-sacrifice for woman but through the narrative device of irony she lays bare the complex ideology of exploiting stereotypical feminine image and her role in society. Demeaning the normative pattern, Paro follows her urge. However, Namita does not recommend or criticise any mode of living. Every relation of Paro is based upon her desire to get physical satisfaction and ends in hatred, vice and sin eventually. In the end, she commits suicide. Being a postmodernist writer to the core, Namita leaves her novels open-ended. The readers are free to decipher their own meaning and articulate their opinions.

A similar postmodern firelight is encountered in Namita's *Gods, Graves and Grandmother*, where the author has traced the female development through its formative stages – childhood, youth and sexual initiation. She describes, through the central character Gudiya, how the suppressive forces of society at every rung of ladder result in a growing lava within a female's consciousness, which bursts out at the peak of disaster breaking the threads of guilt, monotony and resentment. Gudiya is a teenage girl, who lives with her grandmother and has nobody to depend on except Ammi, her sole caretaker. Ammi, the grandmother, is a prostitute turned saint who resorts to spirituality as a means of livelihood. From an old haveli full of servants. Ammi and Gudiya shift to a temple for their survival. Gudiya yearns for meaningful communication which she is unable to get. With Ammi's increasing detachment for Gudiya, the teenager starts romanticizing the institution of marriage. She aspires for love and harmony in wedlock. Dissatisfied and frustrated she daydreams of a prince charming who would relieve her of her restricted spaces. Her fantasy is further fired by Pandit Kailash Shastry, a devotee of her grandmother, who assures her that the void in her life would he filled by the coming of an avatar, Kalki on a pale horse. With a hope to change her present and future, Gudiya clings to her romanticism. Resultantly, when she sees a young, handsome, orphan 'bandwallah', she assumes him to be no other than Kalki and gets infatuated to him. Being with him relieves Gudiya of her irksome domesticity and isolation. In Kalki she finds her liberator. But all this soon turns out to be pardoxical calculatedness. Kalki is a self-seeking and self-absorbed individual who is obvious of Guidya's needs and happiness. His love is inconstant and is in conflict with Gudiya's concept of love and marriage, who considers them as her chief destiny. Their union becomes a process of romantic misjudgement and leads Gudiya towards the quest of self learning. Kalki,

as a typical male, treats her badly since their engagement and maintains a considerable distance from her. Gudiya desperately tries to please Kalki by changing her appearance and looks but fails miserably. Kalki's habit of drinking and gambling and his neglecting behaviour frustrates her. However with the help of Phoolwati, her friend and guide, she realises that a bond of symbiosis between her and Kalki is impossible. She rejects the time honoured archetype of womanhood that demand losing one's self for mate, children and family. Gudiya refuses to assume the role of a waste. She displays sense, and respecting their fundamental differences, she frees Kalki of his responsibilities and allows him to go to Bombay to pursue his career and ambitions. Namita's views about marriage and female identity can be explicitly supported by D.H. Morgan's words :*"While it is true that marriage, the home and the family form the major areas of a woman's life (and hence should form the major areas for change), it is also true that the role of a woman in modern society is not simply the role of a wife plus the role of a mother plus the role of a daughter – and so on. In other words her identity is not simply a sum of domestic based identities."*

Namita, here projects the belief that the cage of being a woman-wife-mother is not inescapable. Women in her novels are not helpless creatures but are more than just an aggravate of their various domestic roles contenting that true identity can be obtained only when a woman evolves a role for herself in the wider canvas of life. She does not suggest an annihilation of all values or codes of conduct but as a postmodernist writer, Namita attempts to follow the subtle, powerful effects of differences already at work within the illusion of a dazzling harmony.

Shakuntala : *The Play of Memory* also presents the postmodern emotional impairment and alienation in a powerful narrative style. Without any garb of moralising or respectability, the psychological dilemnas and insecurities of the agonised soul of Shakuntala have been delineated in the novel. The novel is a journey of a woman who is introduced as a girl child of five and by the end of the story she matures into a strong, experienced and mature woman. Shakuntala is a carefree and high-spirited daughter of a widowed mother who is too authoritative and represses the freedom of Shankuntala at every point. She cherishes the desire to escape the emptiness and passive complicity of her maternal home and thus become eager to be married. Unbearable staleness of her childhood lead her to marry Srijan, chief of fourteen villages and a widower. Her marriage is just an agreement and not a blissful event, settled by her mother. Shakuntala is his third wife. In the beginning, she enjoys the freedom given to her by srijan but the incompatibility in their temperaments snuffs out the spirits of Shakuntala. Srijan starts imposing code of conduct upon Shakuntala. He teaches her the importance of conformity and fidelity of a woman. He believes the self-effaciveness of a wife to be an important virtue. But Shankuntla finds it difficult to accept marriage as an oppressive remnant of patriarchy and is unable to devitalize her spirits. She further becomes restless when Srijan brings home another woman, Kamalini. Unable to give birth to Srijan's child and the presence of the other woman, Shakuntala suffers from deep anguish, insecurity, fear, hopelessness and identity crisis. She rejects the stereotypical image of a marginalised wife who is supposed to work out an ethic of sacrifice and accommodation. She is not a meek woman. On the contrary, the rejection and disapproval she faces strengthen her from within and she emerges as a self-asserting woman who batters through the pretentions and hypocrasies of society to establish her voice and identity. With a determined perception of her own needs, she elopes with another man, Nearchus. Freed of any marital obligations, she is happy with young and well-built Nearchus but even this illusion does not last long. This relationship too turns out to be emotion -

draining. It is Shakuntala's ill fate that both the men with whom she is associated become instruments of her dissatisfaction and unhappiness. Grappling with meaninglessness, she does not give up, and leaves Nearchus too to find her spiritual self along with her unborn child. At this juncture, we are reminded of the expression of Shashi Deshpande in *The Darks Holds No Terrors*.

"Human beings….. they're going to fail you. But because there's just us, because there's no one else, we have to go on trying. If we can't believe in ourselves, we're sunk."

Namita Gokhale too advocates unshackling of all constraints. She nowhere demeans the institution of marriage but derides the claustrophobic role-playing as a wife and mother in a traditional marriage. Being postmodern writing her novels jeopardise the conventional equations and renegotiate the established sex roles.

In the postmodern era, with the growth of new perceptions and attitudinal changes in society, it has been recognised that decoding of established representational pattern is necessary. The three fictions of Namita discussed under study, attempt to deconstruct the 'binary opposition' between sexes and dignify the innate differences among human beings, irrespective of their gender. Delivering her characters from reason, the author support their instinctive nature given to the immediate fulfillment of every mental and physical impulses. Namita believes that the ideals of losing one's self and that of a quasi-sexless, tangentially platonic and utterly romantic relationships are just erected to safeguard power politics. She reveals the ambiguity and shallowness of marital relations and instead of portraying her protagonists as relics of an old culture and bygone era, the major issue for her is to be able to exist and quench their hunger for identity. As a postmodernist Namita believes that a man is free to cast himself as he wants and thus resists from passing any value judgements respecting the existential authenticity of each individual.

References

1. *Deshpande, Shashi. The Dark Holds No Terror. New Delhi : Vikas Publishing House, 1980. 200. Print.*
2. *Morgan, D.H.J. Social Theory and the Family. London : Routledge & Kegan Paul, 1975. 148. Print.*
3. *Gokhale, Namita. Paro : Dreams of Passion. U.K. : The Hogarth Press, 1984. Print.*
4. *--- Gods, Graves and Grandmother, India : Penguin Books. 1991. Print.*
5. *--- Shakuntala : The Play of Memory. India : Penguin Books, 2005. Print.*
6. *Woods, Tim. Beginning Post Modernism. Manchester and New York : Manchester University Press, 1999. Print.*

Ramacharitmanas in Multiple Garbs

Dr. Charulata Verma
Associate Professor, Dr. Bhim Rao Ambedkar Govt. College, Shriganganagar

Dr. Dinesh Kumar Charan
Associate Professor, Govt. Lohiya College, Churu

shodhshree@gmail.com

Abstract

The Rāmacharitmānas is a unique epic like of which are seldom met with in the annals of any literature. It has exercised so powerful influence on the culture and literature of the country that it has become an inalienable part of its consciousness. The present article is focused on highlighting the translations of this epic in different languages including Sanskrit, French, Chinese and English that it has evoked over the years. The translations are not symbolize the greatness of the epic and the profound regards in which it is held by the society across the world.

Keywords: *Rāmacharitmānas, Adhyātma Rāmāyana, epic, Translation, Samartulhayat .*

The *Rāmacharitmānas* (*RCM*) by Tulsidas, widely known as 'the Bible of the Hindus', is a remarkable epic of India. At a time when the traditional scholarly community took unkindly to a composition in *Bhā ā* (Hindi), Tulsidas made bold to write an epic of amazing excellence in Avadhi, a dialect of Hindi, which evoked instant approbation and thereby vindicated his intellectual vigour and poetic prowess. Notwithstanding the linguistic coup, the *RCM* is firmly wedded to the tradition. Whatever was relevant to his epic in the vast corpus of earlier Sanskrit literature, he incorporated it in the poem, as such or with due alteration, in the garb of sweet Avadhi, though it would be unfair to run it down as 'a gallery of translation' on that count. Tulsidas has drawn upon as many as 266 earlier texts for the slew of episodes, thoughts, mannerisms, descriptions and wise-sayings, the *subhā itās*, though the touch of his genius has imparted them a new flavor. However, the *Adhyātma Rāmāya a* is the one text that has, more than anything else, shaped the texture and genius of the *RCM*. That indeed forms Tulsi's major source, though he is indebted to the *Bhushundi Rāmāya a* in no small measure. To be sure, the RCM, like the *Adhyātma Rāmāyana*, is a composition of a devout heart. Ram, to them both, is the highest (*parātpara*) Brahma and Sita an embodiment of the eternal mother. It is under its impact that Tulsi has given a new orientation to the *Uttarkā a*, which shorn of Sita's fire-ordeal and banishment, has come to assume a new aura. To the faithful, the *RCM* is an inalienable part of his being that has sustained him through the unending saga of joys and sorrows. There is no other single work in the domain of Indian literature that has exercised so powerful an influence on the social, cultural and religious consciousness of the country.

It was natural for such a significant writing to be translated in major languages of the world. Despite the

pitfalls inherent in it, translation is the only reliable medium to imbibe the wisdom enshrined in other literatures. That the *RCM* was translated is not at all surprising, the languages in which it has been translated, however, arouse curiosity. It is nothing short of a paradox that the *RCM* was first translated into Sanskrit whose proponents virtually looked down upon the works in *Bhā ā*. That it was done during the life-time of Tulsidas is all the more interesting. Ramu Dwivedi's *Prem Rāmāya a* purports to be both a versified translation of the *RCM* and a perceptive gloss on it. Why Ramu felt encouraged to undertake the arduous task shortly after the *RCM* was composed, is not hard to define. It appears that it evoked such a favourable response from the literary class as well as the masses at large that the Sanskritists got rather impatient to imbibe, albeit in their own language, its poetic and cultural majesty. Ramu Dwivedi's translation aptly quenched their curiosity.

The subsequent Sanskritists happily kept up the tradition of translating Tulsi's epic with some vigour. Besides Ramu Dwivedi's *Prem Rāmāya a*, five Sanskrit translations of the *RCM* are known to exist. Written in V.S. 1850 (1793A.D.), Annarayan Acharya's translation is the oldest of them. Unfortunately only the two books –the *Aranyakā a* and the *Sundarakā a*—of the translation have survived vagaries of time. It was followed by Sudhakar Dwivedi's translation which was serially issued in *Mānasa*, the journal of the Nagari Pracharini Sabha. The translation by Janardan Gangadhar Ratate, *Mānasabhārati*, was published some fifty years ago. Of Nalini Sadhale Paradkar's translation, only the *Bālakā a* has come to light. This is rather a free rendering of the original. The versified translation by Shiv Kumar Shukla is perhaps the last known translation in Sanskrit of the *RCM*.

It would be unfair to dismiss the Sanskrit translations as merely a cerebral exercise. They vouch for the high popularity and the widespread cultural impact of the *RCM* across the country. It is a pleasant surprise that the *RCM* claimed a translation in Persian as well. Popularly known as *Samartulhayat*, it was done by Bhola Nath Nadan in 1802, some two hundred years after Tulsidas, during the regime of the Mughal emperor Shah Alam. The *Samartulhayat* is rated fairly high in merit, though its author himself is an obscure figure. The respective books (*kandas*) of the original are called *Lamhas* in translation.

The French translation of the *Mānasa* is no less significant. Although Gardi d Tasi rendered only the *Sundarakanda* into French, the translation is invested with quite some importance. It was this French translation that first introduced Tulsi's epic to Europe. While Peter Varannikov's translation in Russian is well known, it was rendered into Chinese also by one Prof. Chinhan.

Of the English translations of the *RCM*, the one by Adalt Khan was prompted by the practical need of apprising the officials of the East India Company with the great epic of India. Adalt Khan rendered into English prose only the *Ayodhyākānda* of the *RCM*. Since it was done to serve a limited purpose, it is shorn of literary flavour. The translator has added explanatory notes for the convenience of the English officials, and gave in the Introduction a summary of the epic to enable them to have a broad understanding of the contours of the Rāma-story. It has no love for poetic niceties but retains its interest as the first English translation of the epic.

With F.S. Growse rests the credit for rendering the entire *RCM* into English prose, which is happily free from the ruggedness of Adalt Khan's translation. He has occasionally taken up cudgels against Adalt on one count or the other, though his translation too failed to meet the approbation of the connoisseur. The third translation of the *RCM* in English prose was done by Douglas P. Hills. He has bestowed special thought on the validity of the variant readings met with in different manuscripts of the *Mānasa*.

The first translation of the RCM was in English

verse was done by A.G. Atkins. He took pains to imbibe the poetic excellence of the epic and enclothe it in appropriate phraseology. Atkin's deep reverence for the *Mānasa* has imparted a pleasing aura to his translation. It is indeed distinguished by manifold virtues which ensure it a high place in the galaxy of translations of the *RCM*. Of the English translations by the Indian authors, those by S.P. Bahadur and C.L. Dhodhi lack smoothness. R.C. Prasad has acquitted himself better, but he chose in his wisdom to take great liberty with the text.

This corpus of the translations of the in diverse languages is a sure proof of its extraordinary popularity and serene majesty.

References

1. *Aurobindo, Sri. Life- Literature-Yoga. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram, 1972.*
2. *Bulcke, Camille. Ramkatha. Allahabad: Hindu Parisad Prakashan, (1950) 2009.*
3. *Doniger, Wendy. The Hindus: An Alternative History. New Delhi: Penguin Books, 2009.*
4. *Iyengar, K.R.Srinivasa, ed. Asian Variations in Ramayana. New Delhi: Sahitya Akademi, 1983.*
5. *Richman, Paula, ed. Many Ramayanas: The Diversity of a Narrative Tradition in South Asia. India: Oxford University Press, 2012.*

Impact of Quality of Services in Brand Image in Banking Industry

Dr. Asha Sharma
Post Doctoral Fellow, U.G.C., Delhi

shodhshree@gmail.com

Abstract

In today's highly competitive business environment, when identical products with identical properties, qualities and characteristics are available, the consumer is primarily guided by the brand image of the product. Powerful brands make such a lasting impact on the consumer that it is almost impossible to change his preferences, even if cheaper and alternative products are available in the market. Branding as a concept has been around for many years now. Brands help identify and differentiate the goods and services of one organization from those of another. While there has been much research on Branding and Brand Equity in recent years, relatively little has been published on Brand Valuation, despite it being a key managerial issue. So, the basic aim of this research endeavour was to find out what service quality dimensions can promote brand image of Banking Industry in India. Empathy, responsiveness and reliability, perceptions, assurance and tangibles were instrumental applied in nurturing brand image of banks.

Keywords: *Service Quality, Brand Image, Brand value, Banking Industry.*

Branding as a concept has been around for many years now. Brands help identify and differentiate the goods and services of one organization from those of another. From a customer`s point of view, brands simplify shopping, aid in the processing of information about products, and makes them feel confident of their purchase decision. Managers have also become aware of the fact that the brand has become an important company asset, and focus is needed on the creation of brand equity.

In service sector, banking industry is considered as most representative. The banking industry of India faced numerous challenges recently. Recession is a global phenomenon and India was no exception so the total growth in revenue sloped downwards to 45% and the rest was done by the continuing poor security turmoil.

Literature Review

Brand image is a set of associations with the brand, revealing both association and image represented perceptions of either objective or subjective reality (Aaker, 1991). Keller (1993) clarifies the concept, defining it as "perceptions about a brand as reflected by the brand association held in memory". Brand image management is significant in deciding whether or not the employee is connected with the

organization by influencing the strength of an individual's identification, and the evolving trend of brand image is noted in strategic importance (Dutton, Dukerich, & Harquail, 1994; Gray & Smeltzer, 1985). Keller, (2003) treated the concept of brand image the reasoned or emotional perceptions of the customers which they associate with a particular brand. Therefore, brand image is one of the key components that enable hotel companies to gain a superior advantage among others. Some scholars viewed brand image to be "directly related to the product category within which the brand is marketed" (Martinez, Chernatony, 2004).

The financial treatment of brands has traditionally stemmed from the recognition of brands on the balance sheet (Barwise et.al., 1989, Oldroyd, 1994, 1998), which presents problems to the accounting profession due to the uncertainty of dealing with the future nature of the benefits associated with brands, and hence the reliability of the information presented. Tollington (1989) has debated the distinction between goodwill and intangible brand assets. Simon and Sullivan (1993) developed a technique for measuring brand equity, based on the financial market estimates of profits attributable to brands. The co-dependency of the marketing and accounting professions in providing joint assessments of the valuation of brands has been recognized by Calderon et al (1997) and Cravens and Guilding (1999). They provide useful alternatives to the traditional marketing perspectives of brands (Aaker, 1991; Kapferer, 1997; Keller, 1998; Aaker & Joachimsthaler, 2000).

On the other hand, Martı´nez and de Chernatony (2004) found out that there was no agreeable consensus in literature for the empirical measurement of brand image and the basic reason for this is the multi-dimensionality of the concept. More or less same were the findings of Dobni and Zinkhan (1990) who claimed that because of the confusing variety of work on defining the concept of brand image, at first it may result to ambiguity in selecting the best scale for its measurement. To exemplify its multi-dimensionality, brand image has also been taken as an element of brand personality (Hosany, Ekinci, & Uysal, 2006) and there are examples in which literature significantly relates it to customers' self-concepts (Belk, 1988; Aaker, 1996; de Chernatony & Dall'Olmo Riley, 1998; Solomon, 1999).

A very interesting study of Pitt, Opoku, Hultman, Abratt, and Spyropoulou (2007) maintained the notion that even branding is itself is entirely the process of creating and building a brand image. And according to them, 'creating a brand image means' an effort that "engages the hearts and minds of customers". GrÖnroos (1984) emphasized the extreme importance of brand image for service firms because when the customers use service, they see the firm and its resources by their judgment of the interaction between them and their service providers. His findings depicted that the customers formulate image as they see the components of the firm and develop their perceptions. The definition by Kurtz and Clow (1998), "the overall or global opinion customers have of a firm or organization" depicts threat customers show high tendency of patronizing the firm if they develop high perceptions of its image.

Service serves as the most salient phenomenon that customers can experience and perceive. Hence, quality of firm's service mainly builds up the image of that particular brand. Similarly, Nguyen and LeBlanc (1998) explained that overall brand image of the company is formed by the combined perceptions of service quality as a result of frequent service experiences. Many researchers (e.g. Gummesson and Grönroos, 1988) reported brand image to be the key factor in the evaluation of overall service quality. Keller (1993) studied brand image as a perception, held in consumer memory, of an

organization which serves as a filter to influence the perceptions related to operational aspects of the organization. In his study of airline service, Ostrowski et al. (1993) argued, "positive experience over time (following several good experiences) will ultimately lead to positive image". Kim and Kim (2005) observed that "brand image and service quality perceptions share too many features". Aydin and Ozer (2005) found that perceived service quality directly determines the perception of brand image. Therefore the following proposed relationship may be expected:

Methodology

This study is carried out to estimate the status and importance of tourism industry in the state. The study focuses on extensive study based on secondary data. The data has been collected with help of e-books magazines, newspapers, research article, research journal, e-journals,

The research will be conducted with objective to find out the extent of relationship between brand and service quality. The study will be based on questionnaire. The required data will be collected from both secondary and primary sources. After multiple follow-ups, 200 questionnaires were successfully retrieved and 130 were considered fit for statistical analysis. For testing the hypothesized relationship, the main concepts measured in this study included service quality dimensions namely tangibles, assurance, reliability, empathy, responsiveness. Brand image was measured by using 20 questions. The 5-point Likert scale was employed. ANNOVA regression analysis was employed to test the research hypothesis.

Objectives

- To assess service quality of banks.
- To understand the factor influence the service quality of banks
- To assess the brand image of banks
- To find correlation between service quality and brand image of banks

Hypothesis

H01: Service quality will result into improve brand image of bank in India

H11: Service quality will not result into improve brand image of bank in India

Analysis and Interpretation

The demographic profile of four and five star hotel customers is given hereunder: Gender: male customers' proportion was 70% and female represented only 30%. Profession: 30% were serving in private companies, 25% were students, 15% housewives and 30% were from government sector.

Table 1 Descriptive Analysis

	Tangibles	Assurance	Reliability	Empathy	Responsiveness
Mean	1.452381	1.146341	1.652893	1.279661	2.960317
Standard Error	0.058126	0.032	0.09441	0.053672	0.124671
Median	1	1	1	1	4
Mode	1	1	1	1	4
Standard Deviation	0.652468	0.354894	1.038515	0.583031	1.399433
Sample Variance	0.425714	0.12595	1.078512	0.339925	1.958413
Kurtosis	0.150047	2.139121	0.456888	7.338939	-1.51429
Skewness	1.144754	2.025981	1.375576	2.502838	-0.64023

Range		1	3	3	4
Minimum	1	1	1	1	1
Maximum	3	2	4	4	5
Sum	183	141	200	151	373
Count	126	123	121	118	126
Largest(1)	3	2	4	4	5
Smallest(1)	1	1	1	1	1
Confidence Level(95.0%)	0.115039	0.063347	0.186926	0.106295	0.24674

Table 2 Correlations

		VAR00001	VAR00002	VAR00003	VAR00004	VAR00005
VAR00001	Pearson Correlation	1	.164	.046	.279**	-.199*
	Sig. (2-tailed)		.070	.616	.002	.025
	N	126	123	121	118	126
VAR00002	Pearson Correlation	.164	1	.325**	.075	.101
	Sig. (2-tailed)	.070		.000	.426	.265
	N	123	123	119	115	123
VAR00003	Pearson Correlation	.046	.325**	1	.056	.169
	Sig. (2-tailed)	.616	.000		.557	.064
	N	121	119	121	113	121
VAR00004	Pearson Correlation	.279**	.075	.056	1	-.062
	Sig. (2-tailed)	.002	.426	.557		.506
	N	118	115	113	118	118
VAR00005	Pearson Correlation	-.199*	.101	.169	-.062	1
	Sig. (2-tailed)	.025	.265	.064	.506	
	N	126	123	121	118	126

**. Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).

*. Correlation is significant at the 0.05 level (2-tailed).

Table 3 ANOVA

		Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
VAR00001	Between Groups	16.503	27	.611	1.632	.043
	Within Groups	36.711	98	.375		
	Total	53.214	125			
VAR00002	Between Groups	4.061	27	.150	1.264	.203
	Within Groups	11.304	95	.119		
	Total	15.366	122			

VAR00003	Between Groups	30.830	27	1.142	1.077	.383
	Within Groups	98.591	93	1.060		
	Total	129.421	120			
VAR00004	Between Groups	13.653	25	.546	1.924	.013
	Within Groups	26.118	92	.284		
	Total	39.771	117			
VAR00005	Between Groups	56.141	27	2.079	1.080	.378
	Within Groups	188.660	98	1.925		
	Total	244.802	125			

Table 3 shows ANOVA that Tangibles improve brand image positively i.e. ($F_{27,98}$= 1.632, p < .043) of the model suggesting its appropriateness for explaining variance in brand image. Likewise F value for assurance 1.264, reliability 1.077, empathy 1.924 and responsiveness1.080 which is positively prove the hypothesis. So, it can be said that various service quality has improve the brand image of banks.

Conclusion

The main goal of current research was to ascertain the impact of service quality on brand image of banks in India. According to results, it can be concluded that empathy, assurance and tangibles, responsiveness and reliability perceptions were drivers to building hotel brand image. These services contributed a significant role in nurturing brand image. So, banks should build up brand image conception and strengthen brand consciousness; pay attention to reliable factors and establish customer credit; regard reliability factors and enhance employee accomplishment; tangibilize the intangible and create core advantage; improve responsiveness factors and increase working efficiency; resort to empathy factors and add additional value and extend brand awareness.

References

1. *Aaker, D.A. (1991), Managing Brand Value: Capitalizing on the Value of a Brand Name, The Free Press, New York.*
2. *Aaker, D.A. (1996a), Building Strong Brands, the Free Press, New York.*
3. *Aaker, D.A. (1996b), "Measuring Brand Equity across products and markets", California Management Review, Vol 38, No. 3, pp 102-20*
4. *Aaker, D.A., Jacobson, R. (1994): "The Financial Information Content of Perceived Quality," Journal of Marketing Research, Vol. 31, Issue 2, pp 191-202.*
5. *Aaker, D.A. Joachimsthaler, F. (2000), Brand Leadership: Building Assets in the Information Society, New York, The Free Press.*
6. *Barwise, P., Higson, C., Likierman, and A., Marsh, P. (1989), Accounting for Brands, The London Business School and The Institute of Chartered Accountants in England and Wales, London.*
7. *Bodie, Z. Kane, A. and Marcus, A.J., (1999), Investments, 4th edition, McGraw Hill, Singapore*
8. *Calderón, H., Cervera, A., and Mollá, A. (1997): "Brand Assessment : a Key Element of Marketing Strategy", Journal of Product & Brand Management, Vol. 6, No. 5, pp 293-304.*
9. *Cravens, K.S., and Guilding, C. (1999), "Strategic Brand Valuation : A Cross-Functional Perspective", Business Horizons, July-August, pp 53-62.*
10. *Damodaran, A., (1996), Investment Valuation: Tools and Techniques for determining the value of any asset, John Wiley & Son, New York.*
11. *Drucker, P. (1998), "The Coming of the New Organisation". In Harvard Business Review on Knowledge Management, Harvard Business School Press, Boston*
12. *Jones, J.P. (Ed), (1999), "How to use Advertising to Build Strong Brands, Sage Publications, Thousand Oaks, California.*

13. Kamakura, W.A., and Russell, G.J., (1993), "Measuring Brand Value with Scanner Data", International Journal of Research in Marketing, Vol 10 March, pp 9-22.

14. Kapferer, J.A., (1997), Strategic Brand Management: Creating and sustaining brand equity long term, Second Edition, Kogan Page, and London.

15. Keller, K.L. (1993), "Conceptualizing, Measuring and Managing Customer-Based Brand Equity", Journal of Marketing, Vol 57, January, pp 1-22.

16. Keller, K.L., (1998), Strategic brand management: building, measuring, and managing brand equity, Prentice Hall, New Jersey.

17. Kerin, R.A., and Sethuraman, R. (1998): "Exploring the Brand Value-Shareholder Value Nexus for Consumer Goods Companies", Journal of Academy of Marketing Science, Vol 26, No 4, pp 260-273.

18. Lassar, W., Mittal, B., and Sharma, A., (1995), "Measuring Customer-Based Brand Equity", Journal of Consumer Marketing, Vol 12, No 4, pp 11-19

19. Malhotra, N.K., Peterson, M., and Kleiser, S.B., "Marketing Research: A State-of-the-Art Review and Directions for the Twenty-First Century" Journal of the Academy of Marketing Science, Vol 27, No 2, pp 160-183

20. Michael Birkin, John Murphy, ' Valuation of Trademarks and Brand Names' in the book Brand Valuation by Business Books Limited, London.

21. Montameni, R., and Shahrokhi, M. (1998): "Brand Equity Valuation: A Global Perspective", Journal of Product Brand Management, Vol 7, No 4, pp 275-290.

22. Oldroyd, D. (1994), "Accounting and Marketing Rationale: The Juxtaposition within Brands", International Marketing Review, Vol 11, No 2, pp 33-46.

23. Oldroyd, D. (1998), "Formulating an Accounting Standard for brand in the 'Market for Excuses'", The Journal of Brand Management, Vol 5, No 4, pp 263-271.

24. Park, C.W., Jun, S.Y., and Shocker, A.D. (1996), "Composite Branding Alliances : An Investigation of Extension and Feedback Effects", Journal of Marketing Research, Vol 22, Nov, pp 453-366.

25. Perrier, R. (Ed) (1997), Brand Valuation, 3rd Ed, Premier Books, London.

26. Raghubir, P., and Corfman, K. (1999), "When do Price Promotions affect Pretrial Brand Evaluations?", Journal of Marketing Research, Vol 36, May, pp 211-222.

27. Reilly, R.F., and Schweihs, R.P. (1999), Valuing Intangible Assets, McGraw Hill, New York

28. Robbin, A.C., (1991), The Potential Value of Brand Accounting, Unpublished MBA Research Report, University of the Witwatersrand, Johannesburg.

29. Sheth, J.D., and Sisoda, R.S. (2000), "Improving Marketing Productivity", Strategic Marketing Management, pp 237

30. Simon, C.J., and Sullivan, M.J., (1993), The measurement and determinants of Brand Equity: A Financial Approach, Marketing Science, Vol. 12, No 1, pg 28-52.

31. Tollington, T. (1998), "Separating the brand asset from the goodwill asset", Journal of Product & Brand Management, Vol 7, No 4, pp 291-3

Regional Planning in Rajasthan: A Micro Level Study of Deoli Tehsil

Dr. Sandeep Yadav
Lecturer, Government College, Bundi

Nikita Mangal
Research Scholar, Government College, Bundi

shodhshree@gmail.com

Abstract

The present study is an attempt to analyse the socio economic development of Deoli Tehsil of Tonk district of Rajasthan. An in-depth study and detailed analysis of existing pattern of physical, cultural environment and local rural resources has been undertaken to seek a balanced and speedy development for the Deoli Tehsil through optimum utilization of available resources. Attainment of aforesaid purpose is attempted by identification of existing urban hierarchy, network linkages, service centres and by proposing new ones which can fill in the functional gaps and have the potential of becoming the nuclei for future development.

Keywords: *Centrality, Hierarchy, Weightage, service center*

Today every nation of the world, whatever its political social and economic system, favours a policy of balanced economic, social political and regional development. Planning and development as it exists today at micro level in the Indian context, does not seem to have any specific or special consideration, it operates within the mainstream of national and state planning principles, without a proper analysis of the problems, prospects, potentialities and requirements of the people and the economy concern of the sub region. The present study is an effort to find out effective solution of different problems under micro level planning plan.

Objectives of the study

The present research work aims to seek the balanced development of the relatively smaller area such as the Deoli tehsil. This aim can be achieved by sound micro regional planning of the Deoli tehsil by using following objectives;

- To test the value for each central function.
- Present study attempts to find the existing transport linkage in different production and market centres.
- To find out the existing potential of economic opportunities and to provide encouragement to possible industries which depend directly or indirectly on agriculture so that avenues for employment may be opened in the tehsil.
- To find the gaps and problems in sectoral and spatial regions.

Methodology

In the present study different methods have been employed from sister disciplines such as economics, statistics and other sciences. It is based on field survey. The information was later analysed by various quantitative methods.

The Study Area

Deoli tehsil predominantly lies in the Southern portion of Tonk district. The study area extends from 25^0 44'N to 25^0 58' N Latitudes and from 75° 10' E to 75° 52' E Longitudes. It is bounded in the North by Todaraisingh tehsil in the East by Hindoli tehsil and in the West by Kekri tehsil and Jahazpur tehsils in the South.

Deoli tehsil has a total area of 1228.35 sq.km. with a population of 214408 persons. The tehsil has its headquarters at Deoli. There are 186 villages and one urban centre in the tehsil. Out of the 186 villages only 169 are inhabited.

The Concept of Central Functions

Central functions are those which by their nature are available in a few settlements but are availed of by a number of settlements. The central place theory, therefore, has classified central functions as higher and lower order functions. According to detailed observation of the study area, we have considered here those functions which have influenced the social and economic status of people such as education, medical, postal, marketing, banking and other aspects of their day to day life have been chosen as shown in Table 1.

Table 1

Population size of settlements with their functional distribution

Pop. Size	No. of Settl.	Pr.Sc	Upp Pri Sch.	High Sch.	H.Se Sch.	Heal th Cent	Disp.	Hosp.	Ferti.	Rati on	Bank	Who Mar k	Vete.	Bus serv.
0-199	16	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	1
200-499	45	24	2	-	-	-	-	-	1	1	-	-	-	2
500-1999	88	90	38	16	2	-	-	-	19	46	-	-	1	38
2000-4999	13	18	14	12	6	2	5	-	12	13	7	13	2	9
5000-above	8	33	17	11	9	5	8	3	8	8	8	8	7	8
Total	170	141	69	39	17	7	13	3	40	68	15	21	10	58

Clustering of Central Functions and Sub-Functions

Clustering of functions is directly influenced by the population of the centres. Therefore, the settlements have been categorized according to their population size in the table 2.

Total number of functions considered here are

1.Education, 2.Medical, 3.Drinking water, 4.Electricity, 5.Public Distribution System 6.RestHouses,7.Banking,8.Entertainment,9.Telecommunications,10.Cooperatives, 11.Administrative,12. Fertilizer,13. Veterinary, 14. Transportations and 15.Market.

Size of Settlements (Population)	Total No. of Settlements	Total No. of functions available in individual settlements															
		Nil	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
0-199	16	1	14	1	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
200-499	45	-	2	21	19	2	-	-	1	-	-	-	-	-	-	-	-
500-1999	88	-	-	-	-	8	21	22	10	6	6	8	5	2	-	-	-
2000-4999	13	-	-	-	-	-	-	-	1	-	1	1	2	4	2	2	-
5000-above	8	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	4	4
Total	170	1	16	22	19	10	21	22	12	6	7	9	7	6	2	6	4

The following observation can be made here

(a) Higher functions and sub-functions like education up to higher secondary, hospitals, post office, banks, veterinary hospitals, entertainment institutions and police facility are found in those settlements with population above 2000 persons. It is a remarkable point to note that there is a wide gap in the distribution of functions on the basis of population size of settlements. There are few settlements with population 500-1999 having any of the above facilities.

(b) Settlements below 500 populations are lacking in the functions and services. Some of these settlements are decorated with a telegraph, electricity, bus services.

(c) Settlements between 500-1999 population sizes are decorated further with education, primary health sub center, internet café, bus services, veterinary services, drinking water, electricity public distribution system and panchayat centres.

Functional Hierarchy

The term settlement hierarchy denotes a ranking of settlements into successive groups on the basis of their population or functions. In the present study central places, hierarchy and their classification have been determined on the basis of central functions. In this exercise the weights to different sub-functions are assigned according to their distribution among all the settlements, on the basis of the principle, the fewer the settlements having a particular function the greater importance in terms of centrality and therefore higher the weightage. The weightage of functions/sub functions has been determined on the basis of Bhat's formula i.e. $Wi = \frac{N}{Fi}$ *Where*

Wi = Weightage to the ith sub-function.

Fi = Number of settlements haying the function/sub function

N = Total number of settlements.

Table 3.
Weight scores for the Variables

S.No	Functions & sub functions	No. of settlements where they occur	Weightage
1.	EducationaI		
	i) Primary school	108	1.5
	ii) Middle school	56	3.03

	iii) High school	36	4.7
	iv) Higher secondary school	14	12.1
	v) College	3	56.6
2.	Medical		
	i) Health centers	7	24.2
	ii) Primary Health center	11	15.4
	iii) Medical dispensary	13	13.07
	iv) Medical hospitals	3	56.6
3.	Veterinary hospitals	9	18.8
4.	Public utility services		
	i) Drinking water	35	4.8
	ii) Electricity	163	1.04
	iii.) Ration shops	68	2.5
	iv) Lodging facility	7	24.2
5.	Banking	15	11.3
6.	Entertainment		
	i.) Dish antennas	52	3.2
	ii) Cinema houses	9	18.8
	iii) Library	8	21.2
7.	Fertilizer and seed shop	40	4.2
8.	Administration		
	(a) Tehsil headquarter	1	170
	(b) Panchayat headquarter	39	4.3
9.	Markets		
	i) Retail markets	154	1.1
	ii) Wholesale markets	21	8.09
10.	Transportations	58	2.9
11.	Communications		
	i) Post offices	5	34
	ii) Couriers	5	34

Determination of Centrality

The centrality of settlements has been calculated with the help of the following formula.

$$Cj = \sum_{i=1}^{k} wiXij$$

Where, Cj = Composite value for that function for jth settlement.

k= total number of sub functions under a given function.

Wi = Weightage to the ith sub function.

Xij= Value of ith sub function in jth settlement

HierarchicalOrder

After having calculated the centrality of all the settlements, they are plotted on a double log graph because as the settlements vary in population size from 16 (Narsinghpura) to 22065 (Deoli town) and centrality vary from 1.0 (Thali etc.) to 1050.72 (Deoli town).

Functional Centrality and Population Size

The centrality score and population size have a positive high correlation (r =0.94) in the study area which has been worked out with the help of Karl Pearson's method. The area under study has 170 inhabited settlements including one urban settlement. These settlements have been categorized into five groups on the basis of functional gaps of double log graph. The following table shows the number of settlements with their levels according to their centrality score.

Table 4.
Number of settlement according to Hierarchical Order

Hierarchical level	Centrality score	No.of settlements	Percent of total
I	More than 500	2	1.18
II	200-500	7	4.11
III	50-200	14	8.23
IV	25-50	22	12.94
V	Less than 25	125	73.54
Total		170	100.00

It is evident from table 4 that with the increase in the order of hierarchy, the number of settlements shows decline in number. The maximum number of settlements comes in the fifth category, which includes 125 settlements. Most of these settlements have either of any one or two functions. The fourth category is formed by large villages, which by virtue of central location in their respective regions have become important service centres. The third category of hierarchy includes only 14 settlements. The second hierarchical level includes seven settlements. The first category of hierarchy includes only two settlements i.e., Deoli town and Dooni with 1050.72 and 543.46 centrality scores respectively.

Final ranking and Hierarchy of Settlements on the basis of Composite Indices

The final hierarchy of settlements has been determined on the basis of composite centrality of the settlements of the Deoli tehsil. The composite centrality is calculated by adding the centrality values of functions and occupation.

This study reveals that the hierarchy of settlements on above basis has lead to confusing

conclusions. Small size settlements, based on population hierarchy do not give the correct level. It is because most of the non-primary workers, employed in a large central place, come daily from the near by villages. So hierarchy based on population is not so much helpful in making the plan for regional development. The hierarchy of settlements based on functions obtained from direct sources gives a right level of hierarchy and the results derived from this functional data are therefore useful for the regional planning and development.

Areas of Functional Deficiency

For simplification of study the functions have been divided into 3 groups according to accessibility the higher services (radius 8km), medium services (radius 5km) and lower services (radius 3km).

Deficiency areas of higher Services

The study reveals that only the areas around major centres are of functional adequacy while other parts of the tehsil form the deficiency areas. This is due to concentration of major services at regional centres viz. Deoli town and Dooni. All these centres are situated along the metalled road.

Deficiency Areas of Medium Services

It is clear from the study that deficient areas are more in comparison to the areas of adequate services in Deoli tehsil. It means that the spatial distribution of such services is highly unbalanced which has revealed the maximum deficient areas.

Proposals for Spatio Functional Planning

Functional hierarchy of service centres in the tehsil consists of five orders (Map1). After a careful examination of functions, we find that few of the areas are highly developed whereas others are less developed. It has been decided that the service centres should be distributed according to the various orders, their serving capacity and served area. The table 5. shows the average spacing, proposed, existing and required number of service centres according to their hierarchical order. The Deoli tehsil will have 56 proposed service centres to fill up the areas of functional gaps, on the basis of above considerations. Out of these 14 centres are existing centres. So 42 new centres will be required (Map2).

map-1

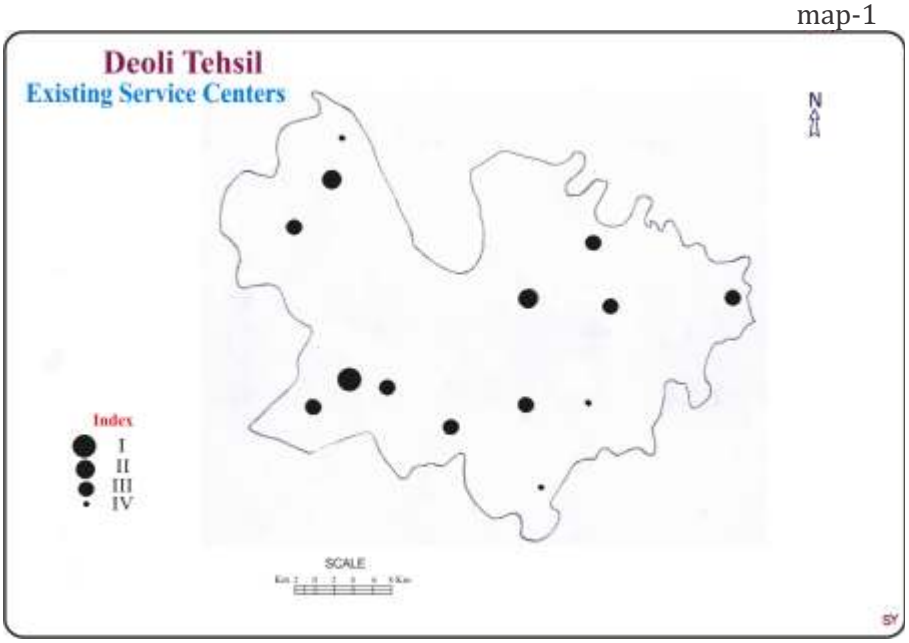

map-1

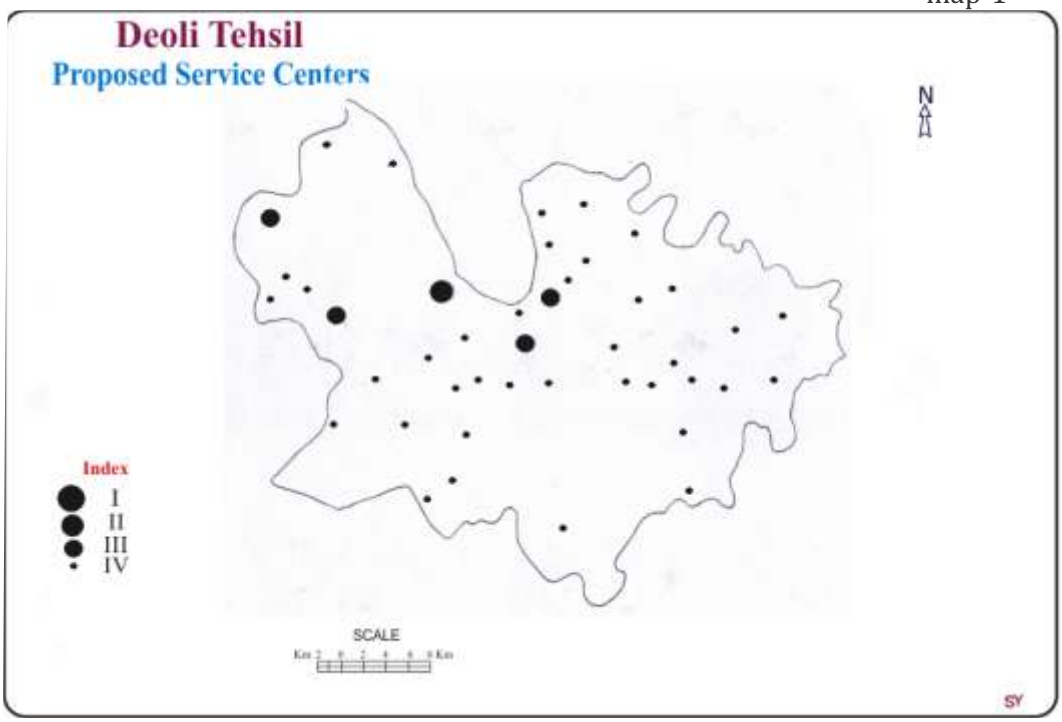

Table 5
Proposed, Existing and Required Number of Service centres

Hierarchical Order	Centres	Proposed Centres	Existing Centres
I	Regional capital	1	1
II	Reg. service centres	3	2
III	Service centres	12	8
IV	Central villages	40	3
V	Dependent villages	114	156

Conclusion

The existence of settlement hierarchy and distribution of service centres in any region depends to a large extent upon physical, economic and cultural factors. We find that in the region under study, physical and socio-economic constraints have suppressed economic development. The region is backward in all respects. Agriculture, being the main occupation and base of economy, needs special plans for development in terms of more land for cultivation and increase in inputs like hybrid seeds, fertilisers, irrigation and mechanization.

Agro based industries can form the basis of

industrial development. Special attention needs to be paid to provision of better social and infrastructure services like education, health, drinking water, electricity and entertainment. All this would be possible only when transport network is enhanced and improved. To conclude all the above steps would be fruitful and optimum results of balanced development of a micro region like Deoli would be attained only by a planned and balanced distribution of rural and urban settlements and provision of adequate organisational facilities.

References

1. *Animal Census, 1986, Revenue Board Ajmer.*
2. *Basu, S.C. 'Intensive Rural Development in Selected Areas', Yojana (1 March 1973)*
3. *Bhat, L.S. 'Micro Level Planning: A case study of Karnal Area' India 1976.*
4. *Budhraja, J.C. 'Micro Level Development Planning' (Rural Growth Centre Strategy) Common wealth publishers, Delhi, 1987.*
5. *Berry, BJL & WL Garrison - 'The functional Bases of Central Place Hierarchy, Economic Geography, 34, 1953, PP 145-154*
6. *Bracey, H.E., "Towns as Rural service Centre" , Trans. Institute of British Geographers, 19, 1953, PP 95-105*
7. *District Gazetteer, Tonk 1971.*
8. *District Census, Tonk, 2011*
9. *Mishra, H.N., - Contributions to Indian Geography*
10. *Mandal, R.B., Sinha, VN.P. - Recent Trends & Concepts in Geog Vol. III Concept Publishing Company New Delhi.*
11. *Negi, D.S. 'Functional Analysis and Hierarchy of service centres in District Bijnor' an unpublished Ph.D. Thesis, Meerut, 1974.*

Understanding Community Policing: Community Mobilization For Crime Prevention in India

Dr. Shalini Chaturvedi
Associate Professor, Kanoria P.G. Mahila Mahavidyalaya, Jaipur

Rahul Verma
Research Scholar,University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Community policing or citizens' oriented policing, is a strategy of policing that focuses on police building ties and working closely with members of the communities. Community policing is builds on fundamental policing practices with an emphasis on crime prevention and lasting solutions to problems. It requires new resolve from citizens and new thinking from police officers. Community policing reduces crime and fear while restoring a sense of order. But it also can rebuild the bond between citizens and government. Police officers, as public servants who interact with citizens on a daily basis, have a unique opportunity to demonstrate the importance of citizen involvement in the community. In turn, they realize that their authority and effectiveness are linked directly to the support they receive from citizens. When fully embraced, community policing is democracy at its best.

***Keywords**: Beat officer, Collectorate, Rule of Law, Transparency, Panchayat, Community Liaison Groups, Law Enforcemet, Decentralization, India Penal Code.*

The police is the foremost agency responsible for creating an ambience of peace, safety and social harmony. To achieve this goal, the police need to prevent and investigate crime, prosecute criminals and maintain law and order. Since these onerous tasks entail people's cooperation, the police cannot achieve the desired results without people's help and support. Community policing as a concept has its roots in ancient Indian history. Community policing has goal of crime prevention and restoring sense of security among residents of society. Prevention of crimes and subsequently breeding sense of safety among citizens is the main objective of community. This article takes a review of the concept as it was visualized in the past and how it has changed over a period of time.

Understanding Community Policing

The concept of 'Community Policing' means, citizens taking lead in identifying the issues of crime and order in their area with police playing the role of facilitators for enabling the citizens to attend to those issues. Besides being a philosophy it is an effective tool and is being tried by police all over the world. Fortunately for Indian police, it started these initiatives in sync with rest of the world and many of projects have successfully brought the citizens and police together. Law enforcement being the state subject, there has not been any one initiative from the top i.e. the Central Government level but many at the local police station, district and state level ones. The downside of this bottom up approach is lack of

adequate documentation at field level. The benefit however is that the concept and the strategy are taking roots at the ground level and not being imposed from the top or outside. This trial and error at the field may in the end lead to a sound and well rounded tool where the stakeholders have owned the end product before its formal launch.

Definition of Community Policing

Bureau of Police Research and Development (BPR&D) While recommending a model for community policing during 2003, has referred to it as "normal policing of a society in consultation, cooperation and partnership with the community at large". Objectives of community policing as per the Bureau are "To minimize the gap between policemen and citizens to such an extent that the policemen become an integrated part of the community they serve and they earn the acceptance and trust of the community, leading to spontaneous co-operation from people in crime prevention and security in local area and resulting in a lasting partnership between the police and the community".

As for the mission of community policing the Bureau recommends "To prevent and detect crime, maintain order and ensure safety and security of the community in partnership with the people and to provide the community efficient, transparent and responsive law-enforcement machinery which perpetuates the rule of law"

Characteristics of Community Policing Following are some special features of community policing.

Decentralization of decision making as community policing empowers field level officer to identify the problem with the help of local citizens, devise and execute a strategy to solve the same. He thus takes on the spot decision without waiting for instruction from the top. Tackling of issues at local level leads to speed and efficiency. Field officers welcome the decentralized system that empowers them and the local residents.

Citizens' participation is the most valuable content in community policing. In-fact they decide the issues they want to take on, priorities them and the police officer is either a catalyst or facilitator. It is pertinent that community policing is an inclusive concept and involves citizens from all strata and walks of life in dialogue and problem solving. It is a broad concept and gives space to the weaker sections of the society including women, youth, and senior citizens. Community policing projects that are not inclusive in their approach remain limited in their output.

Problem solving is at the heart of this approach. Police and citizens meet not for simple interaction but with the specific purpose to delineate the problematic issues and resolve the same. Initially most community policing initiatives are rambling exercises till a clear pattern of problem solving emerges. Forums which fail to have this approach slowly fade away. Thus problem solving is essential to community policing.

Consultation is the process adopted for community policing; a police officer is not expected to decide the issues unilaterally, nor is it expected to be so on the part of citizens. The earlier semi military models of law enforcement had no place for consultation with citizens that is the basic ingredient of modern day policing.

Transparency is an essential characteristic for the success of any community policing project or citizens tend to lose faith it. Identification of local threats and the process to tackle them are to be debated and discussed in open forums before embarking on a particular strategy. Consultative process by definition is expected to be transparent.

Historical Review

India has been prominently a feudal society with some tradition of associating citizens in governance during the ancient times. Creation of a police organization and specific powers of law enforcement, with preventive, investigative and prosecuting duties can be traced back to

Kautilya. Subsequently during the time of Mughals, police was given secondary importance, with military and collection of revenue being the focused areas. Citizens shut themselves in their community life where they became self sufficient and the orders of the rulers were obeyed without resistance as they dealt mainly with the collection of revenue and not with good governance as such. This wedge between the rulers and the ruled continued during the time of the Mughals and the British. Latter in due course replaced the semi military model of policing with civil police system. Castes being self-sufficient, each with a specific task, meeting the overall needs of the agrarian society; citizens were however not involved in the affairs of governance either during the Mughal or British periods. Being peaceful by nature, policing was in any case not a major issue in the agriculture dominated Indian society. What ever the needs, were met at local levels through various forums such as Panchayats. It was only during the spate of violent crime like dacoities and robberies which increased during the British rule that a need for creation of formal police force in India was felt. Initially the policing was carried out in a rudimentary and later in a more developed form.

Important landmarks in the development of a formal police system in India

Introduction of a police system in Sindh 1843- It was similar to royal Irish Constabulary. Three Collectorates of Sindh viz. Hyderabad, Karachi and Shikarpur were each placed under a British military officer with a European sub-collector under them. These officers performed both revenue and police functions and tried minor criminal cases. At the district level police was under the command of a European lieutenant directly responsible to the Provincial Police Chief and through him to the Chief Commissioner. Serious offences were tried by a military commission.

Extension of the above in **Bombay** was undertaken by Governor Clerk in 1848. He proposed the office of Commissioner of Police for Mumbai and Superintendents of Police in-charge of police at the district level, working under the district magistrate. He also revived rural policing and most of his suggestions were introduced between 1852 and 1855.

Police Commission of 1860 that recommended a homogenous police system with far reaching effects. It abolished the military police and recommended civil constabulary with district based police system. Inspector General was to be the overall in-charge of the province with district superintendents who were to work under the general control and supervision of the district magistrates. Post of Inspectors, Head constable, Sergeants and Constables were created. Retention of village police was another important feature.

Indian Penal Code 1860 was introduced with precise definition of each crime, leading to an efficient criminal justice system in the country.

Police Act 1861 was based on the recommendations of Police Commission 1860. Inspector general of police was made responsible for the working, discipline and efficient running of police in the state. The para-military structure gave way to district police units with uniformity all over the country. Posts of Head constable, Sergeants and Constables were established. Police lines for staff and funds for their uniforms too were introduced. The organization and system proved to be effective in controlling violent crime like robberies and dacoities.

Second Police Commission of 1902- It created Criminal Investigation Department (CID) and the posts of Range Deputy Inspector Generals (DIGs) by dividing the province into ranges. The Commission further created Railway Police, the cadre of Sub Inspectors and Armed Police at each district head quarter. The system continued till Independence.

Independence of India in 1947 and proclamation of the constitution 1950 are major landmarks in the journey of Indian police.

Protection of Fundamental Rights became the most important duty of Indian police. This shift from foreign rulers to democracy changed the atmosphere completely. Law enforcement considered to be a tool for suppressing the local populace became accountable to public.

The appointment of the Kerala Police Re-Organization Committee in 1949 was followed by a succession of Police Commissions appointed by different State Governments, mainly during sixties and seventies. Local Acts, compilation of State Police Manuals also continued, law enforcement being the state subject.

Criminal Procedure Code 1973 was another major attempt to streamline the investigative and court trial procedures. It brought uniformity and clearly laid down the restriction on state vis-a-vis rights of citizens.

The National Police Commission 1977- the first after Independence headed by Sh. Dharam Vira, produced eight reports and recommended overhauling of police functioning. The Commission aimed at professionalizing police department and suggested measures that would reduce political interference, bring transparency and accountability to police working. However certain key recommendations have not been implemented.

Present Scenario

A new era began for the people in India with independence in 1947. A constitution, which aims to secure to all citizens social, economic and political justice, liberty of thought and expression and opportunity would certainly result in heightened expectations of a hitherto exploited and suppressed population. For a long time the police were used as an effective tool to strengthen the hands of the rulers and to quell various rebellions. It was only after independence that serious thought was given to police as a service and not a tool to exploit the citizens, though even today the service element is many times conspicuously absent. Despite putting in unusually long hours of work for any government department, citizens' satisfaction with police is way below the expected levels. This has caused a serious 'you' versus 'us' divide, unhealthy for any social system. There have been some attempts to salvage the situation, a few meaningful, others superficial. Political leadership after independence has mainly used police for its own ends and not made systematic efforts to strengthen the institution of law enforcement; it has been shortsighted, unable to get out of the temptation to use police for its immediate ends at tremendous long term cost to the society. Police leadership to be equally held accountable for the current has low image of police in India however carried out some experiments to bring professional content and service element in law enforcement. It has not introduced any far reaching reforms that are needed but has tinkered with the system and tried to introduce citizens' participation. One such experiment has been community policing projects introduced by different officers; sometimes backed by the state at other times purely local police leadership initiatives. Some of them received popular support and media attention causing rippling effect. While many community policing projects are pure public relation exercises a few have been genuine attempts to involve citizens in policing themselves. The police department in India has of late been facing serious resource crunch in manpower and equipment. It has perforce been made to seek community collaboration in attending to its increasingly vast duties. Citizens' participation in law enforcement is thus observed across the country especially as the issues of internal security have caused serious strain on the existing over stretched and rickety machinery of law enforcement.

Community mobilization for crime prevention in india

Community policing is nothing but normal policing of a society in consultation, cooperation and parternership with the community at large. The essence of community policing is to minimise the gap between policemen and

citizens to such an extent that the policemen become an integrated part of the community they serve. Crimes in India have shown a steady increase over the last couple of years and needless to say to engage with the police and to find ways of building better communications between the people and the police in order to tackle the situation, civil society groups in India have taken initiatives in building synergies between police and civil society for better governance. Further, the police reflect the social setting in which they operate.

Communities vary tremendously in their ability to solve problems independently and to form partnerships with police and other agencies. Community Policing can help in bringing major changes in policing strategies and introduced the concept of community participation and subsequently the traditional policing strategy of crime control transformed in to crime prevention. Impact of community policing on crime prevention broadly depends on level of community participation by encouraging individuals and organizations to take responsibility for crime prevention in community. Community policing acts as a crime prevention tool when police facilitates problem solving of crime risk factors which are located by community members and there should also be healthy community partnership, and police works on improving it's 'style of duty' and become more legitimate in eyes of public.

Going further from acquiring public confidence and cooperation, the police open up wide opportunities to gather community based intelligence. increased flow of information (about potential offence and offender) occurs by promoting better understanding and boosting motto of 'working in collaboration' towards same goal of safer society. The gathered intelligence information will not only deter offenders, increases community cohesion but also enhances police effectiveness of Intervention.

Here are some examples of community policing practiced in India:

"Friends of Police"- Community Policing initiative in Tamil Nadu

The Friends of Police is a holistic and pro-active concept that lends a psychological approach to policing. It is a true example of police public partnership where citizens have been empowered along with the police. 'Friends of police' provides opportunities for ordinary citizens to effectively contribute to the prevention and detection of crime. Any member of the public, male or female who is not involved in civil or criminal case can become a member of FOP. The members of FOP can provide useful information leading to solving of crimes. FOP members can also prevent any abuse of police power because of easy accessibility to the station house officer and other senior personnel.

Trichy Community Policing- Before community policing was initiatived in Trichy, the crime rate was very high. There were racial and religious conflicts, rioting, murder, mayhem and other anti-social activities. The police not only had to challenge forces of fundamentalism and lawlessness, but also had to instill a sense of confidence amongst the people. To achieve this, Mr. Tripathy, an IPS officer introduced the following community policing strategies.

- Beat Officers System
- Complaint/Suggestion Box System
- Help line for Women in Distress
- Slum Adoption Programme

***PRAHARI:* The Community Policing Initiative in Assam**

Community Policing in Assam was started when a meeting of the citizens under Panbazar Police Station in Guwahati was convened by the city S.P. Shri Kuladhar Saikia, to discuss the concept of neighbourhood watch scheme and promote community participation in policing. The community policing initiative was also aimed at changing the attitude of the average policeman at the police stations towards the public, to make

them people friendly and to improve their living and working conditions. The goal of *PRAHARI* was to tackle social problems and bring the police and community closer. The Project was first launched in a remote village of Thaikarguri in Kokrajhar District where five innocent persons had been brutally murdered by the villagers. In all *PRAHARI* villages, the police have taken an initiative and formed Community Management Groups (CMG) or Community Liaison Groups. These groups are formed at the state, district and PS level where eminent and non-political persons from the society come together and meet the police on a regular basis.

"Sahayata": **A Community Policing Initiative in Nadia District, West-Bengal** Sahayata is a Bengali word meaning assistance. It is an experiment that has been conceived as a service delivery platform to resolve, through counseling, disputes within family and also between neighbours. In this experiment the police is an active agent in resolving disputes and that too through an inexpensive and prompt system.

The main objectives of this project are:

- Involving people in the resolution of disputes.
- Ensuring speedy delivery of justice in a cost-effective manner.
- Ensuring reconciliation for aggrieved parties looking for a long term solution.
- Develop a sense of belonging with the State, with an ultimate bearing on national integrity.

Conclusion

Community policing in the Indian scenario as well as internationally, involves cultural change as in most of the countries semi-military and highly hierarchical model of policing has been prevalent. It involves intensive training and sensitization of policemen to accept the equal role of citizens. There is no denying the fact that the police is created and maintained for curbing criminal activities. It is the bounden duty of the police to protect person and property of the people and create a safe environment for smooth functioning of the civil society. But the police cannot be omnipresent and omniscient; they need help, support and cooperation of the people to accomplish these onerous tasks. Police as a service provider and directly accountable to citizens is an alien concept and needs cultural change at the organizational level and attitudinal change at the personal level for policemen. It also means training the citizens for meaningful participation and change in their thinking as most of the time community 'looks up' to law enforcement instead of engaging itself in the process of decision making as partners.

References

1. *Bharati, Dalbir (2006) "Police and People - Role and Responsibilities", New Delhi, A.P.H. Publishing Corporation.*
2. *Mishra, Veerendra (2011), "Community Policing: Misnomer or Fact?" New Delhi, Sage publication.*
3. *Raghwan R. K. (1989) Indian Police: Problems, Planning, and Perspectives. New Delhi: Manohar Publications.*
4. *Sen, Shankar (2000) Police in Democratic Societies, New Delhi, Gyan Book Pvt Ltd.*
5. *Srivastava Aparna, (1999) Role of Police in a Changing Society, New Delhi, A. P. H. Publishing Corporation.*
6. *Umranikar J. Y, (2009), Police Reforms in India, Pune, Ameya Prakashan.*
7. *Verma Arvind and Das K. Dilip, (2012) Global Community Policing Problems and Challenges, New Delhi, Taylor & Francis Group publication.*

Articles published in Journals

- *Chakraborty, Tapan (2003) "Prospect of Community Policing: An Indian Approach" The Indian Journal of Political Science Vol. 64, No. 3/4 (July-December, 2003).*
- *Patel, Hasmukh (2007) "Community Policing: A Case Study" The Academy Journal of Sardar Vallabhbhai Patal National Police Academy, Vol. 59, No. 1 (January – December, 2007).*

- *Sen, Sanker (2007) "Community Policing: Concepts and Elements" The Academy Journal of Sardar Vallabhbhai Patal National Police Academy, Vol. 59, No. 1 (January – December, 2007).*
- *Somerville, Peter (2009) "Understanding community policing", Policing: An International Journal of Police Strategies & Management, Vol. 32.*
- *Thakur, Vivek; Sharma, R.K. and Budhiraja, Bhagwan Dass (2012) "Community Policing: An Indian Experiment With Thikri Pehra" South Asian Academic Research Journals, Volume 2, Issue 7.*

Newspapers

- *Mohan, Vishwa, "Centre explores Kerala model of community policing for students", Times of India (New Delhi), April 25, 2013.*
- *Is community policing need of the hour? (2013, January 23), Express News Service (Bangalore).*

Internet Sources

- *Australia New Zealand Policing Advisory Agency (ANZPAA). (2008), Directions in Australia New Zealand policing. Retrieved from*

  publications/anzpaacorporate- publications.
- *Community policing defined- Retrieved fromhttp://www.cops.usdoj.gov/Publications/e030917193-CP-Defined.pdf*
- *Community policing, Retrieved from http://articles.baltimoresun.com/keyword/community-policing*
- *Community Policing: A Journal of Policy and Practice - Retrieved from http://policing.oxfordjournals.org/content/1/2/129.extract*
- *Fleming, J. (2010). Community policing: The Australian connection. Research and Public Policy Series: Australian Institute of Criminology Press. Retrieved from Policing website of Australian government.*

Population Density: Types & Models in The Cities of Rajasthan

Dr. Jaya Bhandari
Assistant Professor, Jai Narain Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Density of population is the number of persons per square kilometer. It indicates the man land ratio. This is calculated by dividing the number of persons of a country or region by the number of person of a country or region by the total land area. Density depends upon many natural and human factors such as soil, raia1l, climate, economic resources, the stage of economic growth and so on. Density measures the degree of population concentration in a particular area. There are many types of density of population like Airthrnetic density, Economic density, Critical density etc. Few important density of models are clark Density - Distance model, Revision of clark's model by Berry, Simmon and Tennant, Bush investigation of Indian cities etc. Clark's derivation of the distance decay function model gave a satisfactory explanation for not only population density variations within urban areas but also for several socio-economic attributes of the community. After twelve years of clark's formulation of the negative exponential law, Berry and his colleagues contributed an important paper relating to urban population densities. To provide a sound theoretical base Berry selected several variables i.e., land use pattern land value, per unit residential house holds, front foot value of land etc., which directly or indirectly influenced The density gradient patterns. With regard to distributional patterns of population in cities, Brush after his country wide personal investigation of some major Indian cities, contributed a most interesting paper in 1960 which he further elaborated in 1972. The principal of objectives of the paper was to analyses the intra-urban spatial patterns of population and its change through time. In modem times, many cities are expanding in size as a result of large industrial establishment at the margin of the city and as such these have essentially influenced the patterns of population in India, because the circumstances in which urban centers in India grew are not easy to explain. To be precise, the Indian cities because of a number of social, economic and cultural contrasts have very complex internal structure.

keywords*: Population, density, climate, economic, cultural, social, agriculture.*

Meaning of density The term 'Density of population' refers to the number of Persons per square kilometer. In other words, density of population indicates the man land ratio. This is calculated by dividing the number of person of a country or region by the total land area.

$$\text{i.e Density} = \frac{\text{Poputation}}{\text{Area}}$$

In case the land area is small for a given population, the Density will, be high; but if the land area is large, then the density will be low. Density depends on many natural and human factors such as soil, rainfall, climate, economic resources, the stage of economic growth and so on. Since these factors differ in many places, density will also differ. Density measures the degree of population concentration in a particular area.

Significance of Density

If the density of population is very high, these would be abnormal pressure on land, and if the land area is not sufficient by productive, overpopulation will result. A country having higher man - land ratio, at the early stage of development, will have unemployment, underemployment and disguised unemployment.

A higher density will indicate a lower standard of living and less mobility of labour. It will result in congestion, slums, air pollution, scarcity in accommodation, etc. But if the natural resources are fully exploited and productivity is increased, a higher density may not lead to lower standard of living. Generally, a country having higher density is more prosperous. Higher density may be the result of advanced industrialisation. Easter Boserup has shown that when the density of population is very high, agricultural development becomes urgent and possible.

Types of Density

1 Arithmetic Density

The number of persons per square kilometer is known as simple arithmetic density. In other words, arithmetic density is nothing but the man land ratio. In the year 1955, the man land ratio of the world was 20 (per square kilometer). However, this type of density does not speak about the real density because it does not take into account the fact that over 70 percent of the earth's surface is water. If only the land areas of the earth are considered, the population density becomes nearly 45 persons per square mile or kilometer. However, in order to get the real picture, one should have the idea of pattern of distribution of population. If people are dispersed widely and evenly over an area, the estimated figure for density becomes highly significant. Arithmetic density is too crude a method for measuring the concentration of life.

2 Economic Density

While calculating the economic density of population, one has to keep in mind the productivity of the area under consideration. The index of population density can be realistic if it can be considered with respect to per square kilometer of productive land of a region. The productivity of land depends on soil, vegetation, mineral resources, climate and configuration. A piece of fertile land can support more people than hilly track. If the productive capacity is substituted for square kilometer, we get a better estimate of density. This type of estimate is known as economic density. But in reality, it is very difficult to estimate the productive capacity of an area. Economic density (ED) may be expressed by the following formula:

$$\text{Economic Density} = X100\frac{PO}{PR}$$

Where Po means the index of population and P_R is the index of production.

3 **Agrricultura1 Density**

Agricultural density means the number of agricultural people per unit of cultivable land. The agricultural density of India is approximately 435 persons per square kilometer of cultivable land. The agricultural density of Japan is 1800, of Italy 234, of Germany 125, of Great Britain 49, of France 177, and of Denmark 99 Persons per Square Kilometer. Agricultural density varies from region to region in a country because of the difference in the availability of cultivable land.

4 **Physiological (Nutritional) Density**

Physiological density substitutes arable land for total area in the manland ratio. It omits the unproductive land from consideration. Physiological density takes into account all types

of population, whereas agricultural density takes into account only the agricultural population India's physiological density per square kilometer of arable land is 630. The physiological density of Holland is 2,500, Japan 4,000, USA 77, Africa 35, and France 470 person per square kilomile of arable land.

5 Critical Density

This density proposed by Allen. He defines it as "the human carrying capacity of an area in relation to a given land use system, expressed in terms of population per square unit of area. It is the maximum population density that a system is capable of supporting permanently in a given environmentally without danger to land." It can be expressed by the following formula:X

$$\text{Critical Density} = 100 \frac{C}{F} X \frac{A}{L}$$

Where C is the extent of cultivated area, F is the extent of fallow land, A is per capita acreage planted, and L is the percentage of land cultivable by traditional methods.

All the above types of density are subject of criticism. Firstly, the ratios are simply the averages and may not express the real picture when a broad area is taken in to account. Secondly, sometimes, the required data are not available for different political and administrative units. Thus, international comparison is almost impossible. Thirdly, the population data are available for administrative units and not for areas having homogeneous population distribution.

Because of the above limitations, the different methods can not used scientifically for the purpose of analysis. But still, the concept is very useful and revealing. Despite of limitations of Arithmetic density we have used the same for our study.

Density Models

The spatial variation of population within urban areas does not occur at random, instead, like other social laws, it should follow a definite empirical regularity. Every city tends to conform to a common pattern of internal population distribution, although a variety of local disturbing factor may in individual city severely modify it.[1] Not a single city has so far been observed which is so free from these as to exhibit exactly the standard pattern We give below few important density models.

Clark Density - Distance Model

The fundamental law of decline of population density with the increase of distance from the centre of urban area was discovered first by Bleicher in 1892 but like Mendal's law, it was not taken up and had to wait for rediscovery by clark in 1951.[2] Clark's derivation of the distance decay function model gave a satisfactory explanation for not only population density variations with in urban areas but also for several socio-economic attributes of the community. He produced evidences in support of his argument that regardless of time or place, the spatial distribution of population densities with in cities appears to conform to a single empirically desired expression.

$$dx=do^{e-bx}$$

Where dx is population density d at distance x from city centre, do is the central density as extrapolated, and b is the density gradient, indicating the rate of diminution of density with distance.

This is supposed to be an important landmark in the field of urban economics and other social sciences. In Chicago, Winsborough[3] found the pattern to hold for every census year from 1860 to 1950 Muth and Weiss[4] found that the patterns are quite favorable for all large U.S.A. cities studied in 1950. In Asian countries also, observations have proved Clark's negative exponential decline patterns to be good fit. Kar's[5] study of Calcutta has shown that negative decline of density existed in 1881, 1901, 1921 and 1951, Tanner and Sharratt[6] for the first time intending to modify the model, suggested that urban population densities decline, exponentially as square of distance. The density profile observed, is thus, a half bell curve. Their formulation is, however, still inadequate as a general rule and

does not find much support at the intra urban scale. Newling provided an alternative hypothesis of spatial variation of urban population densities which like Sharratt also follows quadratic exponential decline of densities. He stated that large cities having very extensive Central Business District with largely non-residential uses of land will have in the density profile a central density crater with a crest bordering the CBD. Beyond this crest, the curve falls away to the suburb. In a later study, Clark also discussed the worldwide phenomenon of outward movement of population from cities to suburb and presented evidence that the density gradient in Poona decline between 1881 and 1953 which he interpreted to mean that dispersion had occurred.[7]

Revision of clark's model by berry, simmon and tennant

After twelve years of clark's formulation of the negative exponential law, Berry and his colleagues[8] contributed an important paper relating to urban population densities. The primary objective of the paper was to review and elaborated Clark's work especially in the light of the recent related contributions of Muth, Weiss, Stewart, Alonso, Winsborough, Beckman and others. Berry and his associates also found the rule to hold a good fit for all time and all places, but one thing that Clark had not done, was to provide a theoretical base for his formula His observations of thirty-six cases hardly enable one to assert complete universality of the law In addition to their own observation of about hundred examples from different parts of the world, they also examined the works of a number of social scientists and found that no evidence had so far been discovered to counter clark's assertion of the universal applicability of the equation.

To provide a sound theoretical base Berry et al.[9], selected several variables, i.e., land use patterns, land value, Per unit residential households, front foot value of residential land etc., which directly or indirectly influenced the density gradient patterns.

The intensity of all these parameters diminishes sharply outward with the increase of distance from the city centre. From these and many others, it appears that a negative exponential decline of densities must hold and the equation of clark is a logical outcome of urban land use theory. The most remarkable feature of their finding is that they developed numerous equations for different sets of cities, as for instance, the equation illustrate that as the population of a city increases, the density gradient diminishes or that smaller cities are more compact than larger cities by virtue of their steeper density gradients. Finally, they observed that the density gradient changes with the change in city size and also presented sharp. Contrasting patterns between western and non western cities. 'As western cities grow through time, they experience steady decrease in density gradients and, therefore, in degree of compactness, where central densities first increase and later decrease, to the contrary, in non western cities, central density increased steadily but the urbanised area relatively did expand little and hence, density gradient remained constant.[10]

This leads us to postulate that density gradient is a function of the size of a city, shape distortion and proportion of manufacturing outside the central city. In short, it may be noted that at any point in time the empirical regularity to be observed is the same, but through time the patterns differ.

Brush's investiga tion of indian cities

With regard to distributional patterns of population in cities, Brush after his countrywide personal investigation of some major Indian cities, contributed a. most interesting paper in 1968[11] which he further elaborated in 1972. The principal objectives of the paper was to analyses the intra-urban spatial patterns of population and its change through time. Interpreting the density distance relationship, Brush found that

Indian cities must take account of the exiting models of urban structure, i.e., a downward gradient from the greatest concentration in the centre towards the periphery. The model observed is in conformance with the negative exponential rule proposed by **Bleicher** and Clark, and later justified by Berry, Simmon and Tennant.

Although the density-distance relationship have statistical significance and generally conform to the existing model, Brush remarked, "Indian cities because of complexity in internal structure (social, economic and cultural) show certain departure from the basic norm." The fist and the most common pattern occurs in cities where the highest density of population is found in a compact central area situated in or adjacent to an indigenous bazar. Within one or two miles from the city centre, the gradient slopes sharply downward to the periphery. Another set of patterns resembling that western cities has been observed in British built port cities where the CBD is principally occupied by offices, banks, commercial activities, etc., and where the density gradient is relatively low. With in a mile and a half it may reach an extremely high level and beyond that it declines gradually. A third configuration is found in cities having two distinct nodes of population concentration - one around the old traditional and indigenous bazar and the other around the former British developed centre, which may be a little distance away. The fourth pattern is found in the western planned cities, which are characterized by low population density all over the town in general and in the central area in particular.

While making a critical analysis of Brush's derivation of density-distance model it appeared that he has given due importance to the history of origin and process of growth of cities which are supposed to be the most fundamental controlling factors of the central density and density gradients with in cities He distinctly classified Indian cities into four different group based on the history of origin such as Pre-British, planned and cities developed under western influence. His findings are the direct outcome of ecological process of growth operating through time and area, therefore, scientific and realistic. But is would be unwise to presume that the above four models observed can explain population density gradient patterns for all categories of cities in India. Administration, as a matter of fact, is the backbone. Indian urbanisation and administrative set up has been innovating as a important nucleus of urban growth around which large suburban sprawl have taken place. Most of the large cities in India are of predominantly administrative functional character, which has considerable impact on flattening of density gradient beyond the central city. Similarly, there are transport cities where transport like railway forms the nucleus of urban growth and where settlements have grown around it, the density curve shows an entirely different pattern from that observed by Brush.

In modern times, many cities are expanding in size as a result of large industrial establishments at the margin of the city and as such these have essentially influenced the patterns of population density. The observations of Brush are therefore, that sufficient for detailed intra-urban spatial variations of population in India, because the circumstances in which urban centres in India grew are not easy to explain. To be precise, the Indian cities because of a number of social, economic and cultural contrasts have very complex internal structure.

References

1. *Steward, Q.J. and wamts W., Physics of population Distribution in spatial Analysis : A Reader in statistical Geography, Ed. by Berry J.L. Brian and Marble F. Dune, Prentice - Hall Englewood cliff, New Jersey, 1968, P. 130*
2. *Clark Cohn, population Growth and land use, Maemillan, Landon, 1967, P. 341.*
3. *Quoted by Brain J.L., Berry et al., Urban population Densities: Structure and Change; graphical Review, Vol. 53, 1963. P.389-90*
4. *Ibid*

5. *Kar, N.R., Growth, Distribution and Dynamics of the population load in Calcutta, 1962 (memeographed).*
6. *Quoted by Burce, E. Newling, the Spatial variation of urban population Densities, by Geographical Review, Vol. 59, 1969, P.243.*
7. *Clark. Op. Cit. P.349.*
8. *Ibid, P. 389-405*
9. *Ibid, P. 395*
10. *Ibid, P. 40*
11. *Brush, J.E., Applications of model to the Analysis of Population Distribution in Indian cities (Ed. by R.L. Singh), urban Geography in Developing Countries, N.G.S.T., Varanasi, 1973. P. 28-29.*

Role of Panchayati Raj Institutions in Education and Development of Rural India

Dr. Meenkashi Yadav
Lecturer,Govt. Arts Girls College, Kota

shodhshree@gmail.com

Abstract

"A child without education is like a bird without wings."

It is only education which gives a human being the power to discriminate between right and wrong, good and bad. India is a land of villages. It is said that real India lives in villages. For development of any nation it is a must that its masses progress. After independence in 1947, very soon our policy makers realized that our country can progress only when rural India develops. Rural development is a progressive term. It is multi-dimensional process which not only includes socio-economic development but also ensures people's active participation for complete utilization of physical and human resources.

***Keywords**: Panchayati Raj Institutions (PRI), sustainable development, primary education, administration, awareness, rural management.*

In India, according to census 2011, still 69% of our population resides in villages. It is impossible to develop without rural development. The basic aim of rural development is definitely improvement in socio-economic life through proper education, health care, sanitation, hygiene, basic facilities and infrastructure provided to rural India, especially in the schools of the villages. Therefore, the first and foremost necessity in India is a balanced socio-economic change and development for rural areas. At large, two approaches have been adopted by our government since independence with regards to pattern of development. These two approaches are-(a) the "improvement approach" and (b) the "transformation approach". Latter approach attaches importance to a radical change in existing system in terms of scale of operation, production techniques and socio-legal reforms. The "improvement" approach seeks to bring about agriculture development within existing production system. It attaches importance to the programmes of rural development such as the Community Development Programme, Panchayati Raj Institutions and other programmes and agencies related to development in rural India. Here we will be talking about the role and importance of Panchayati Raj Institutions (PRIs) in the primary education in villages which is definitely the backbone of our development in all aspects of life.

Panchayati raj has been viewed as an attempt to implement the process of democratic decentralization. PRIs are considered the most effective instrument for development of rural India. Panchayats undoubtedly inculcate the sense of care, rural management and rural development for sustainable development. PRIs are an important system in a democratic country like India where about 69% of its population lives in rural areas. It plays a vital role in the development of our country at grass root level.

There are several reasons as to why rural education in India should be imparted efficiently, even in the most remote regions of our country. Education is not just about being literate; it is about making progress and improvement or upliftment of human as an individual and society as a whole. A progressive and well developed society leads to a strong and vibrant nation. In terms of growth of a country whether social or economic, the role of education in the urban and rural areas is very important. Although education in the urban India has progressed rapidly during last few decades, there are still many villages where education is not given sufficient priority in our country-specially for girls.

Coming back to PRIs, they are not only capable of eradicating the problems in villages and giving solutions for the same but they also play a vital role in socio-economic and decision making process for rural development. PRIs play a significant role in national development. They are the prime movers of such development and can change the picture of rural India. They have proved that they have the potential as well as talent to transform our society at grass root level.

In rural India, the two most difficult problems are population growth and lack of education. Without any doubt education is the solution to all the problems which can be solved though systematic education of rural masses. The problems can be solved to a great extent whether it is about hygiene and sanitation, unemployment, gender difference, defining moral values of society, infrastructure, concern for environment, awareness about digital world or improving the basic living standards of rural India. It has been proved that panchayat have made significant contribution in primary education and have provided basic facilities and improved the infrastructure of present system with their limited resources.

As said before, a panchayat plays an important role in the development of rural areas. Actually development is a vast term which includes health, agricultural development, primary education as well as adult education, women and child development, women's participation in local government etc. A nation cannot shine without the shining of rural areas. National development is almost synonymous to rural development. It is true especially in India as our villages are the soul of our country. As Mahatma Gandhi once said *"Just as the whole world is contained in the self, so is India contained in the villages."*Rural development has always been the focal point in the history of India. Rural development before independence can be analysed under two broad heads: (i) development efforts made by British Government, and (ii) efforts made by voluntary organisations. At the time of British, it was started by Spencer Hatch in 1921 and was continued by F.L.Brayne. Seva Gram Ashram established by Gandhiji and V.K.Krishnamachari took concrete steps towards rural development such as sanitation, adult education, promotion of village industries, manual work etc.

Education is fundamental to development and growth. The human mind makes it possible through achievements in various fields whether it is advances in health sector, agricultural innovations, efficient public administration or private sector growth. For countries to reap these benefits fully, they need to unleash the potential of the human mind. And there is no better tool for doing so than education.

Primacy of primary education is universally accepted. In this concern, it is important to mention that in 2010, Government of India enacted the Right To Education Act in order to ensure universal access to elementary education for all the children. In addition, reflecting political commitments for children right, the Ministry of Women and Child Development (MWCD) proposed in 2012 the "National ECCE Policy" (Early Childhood Care and Education). Since 1975, MWCD has been providing free of charge integrated child development services in the areas of health, nutrition and education to

children in rural areas through ECCE centres called "Anganwadi". Panchayats are authorised to keep a check for regularity in functioning of Anganwadi centres. The emphasis is laid on the direct involvement of PRIs to oversee the management of ECCE. ECCE is an indispensable foundation for lifelong learning and development. It has a critical impact on success of education at primary stage. PRIs also ensure the co-ordination with different departments like health, family welfare, and non- formal pre-school education at these centres. By ensuring the distribution of food and health services and improving infrastructure. PRIs have a significant role in every aspect of rural development. PRIs are also playing a crucial role in implementing Sarva Siksha Abhiyan (SSA) successfully. Through Siksha Samiti and Siksha Mitras and other samitis it can change the present scenario of rural India. In this concern, PRIs, through education are trying to stimulate and enrich physical and psychological environment in the early years of a child, living in villages. Attention is to be given in this regard, as at the time of brain development of children, if they are not given due facilities and environment, their full potential is considerably and often irreversibly reduced. PRIs through primary education in villages, are trying their best to develop various skills among the students or young generation to face the challenges of life.

In India, educated rural segments are not only important to remove illiteracy and poverty but it is a must for variety of other cultural, political, economic as well as social reasons. And to this concern, PRIs through education can develop a sense of responsibility among the citizens towards rural development and management for maintaining the sustainable development in all spheres. Education develops the sense of humanity, especially in the younger generation and PRIs are playing a notable role in this concern. They are trying to inculcate the sense of adjustment among the youth to have better adjustment between man and environment. Through education and awareness camps, people living in rural areas are becoming more environment-friendly and are realizing the drawbacks or diverse effects of different kind of pollutions. In this concern people in villages are trying to follow the concept of 'reduce, recycle, reuse'. People living in rural areas are realizing the importance of education in harmonious development, which is not only for the individuals but also for the overall development of the nation i.e. socio-economic, political, cultural, industrial and agricultural.

It is a known fact that building the sense of belongingness and responsibility can be seeded through the unconventional means and modes of education. In this concern, panchayats are making an effort to educate and spread awareness among the villagers through different methods of education. Panchayats through nukkad nataks, folk songs, animated movies, seminars, workshops and awareness camps etc. are trying their best to educate villagers through unconventional mode of education. Such ways of informal teachings develop the sense of responsibility among the people. Sir Ken Robinson has well said that "Creativity is now as important in education as literacy". Above mentioned nukkad nataks, folk songs, awareness camps, workshops etc not only make an impact on younger generation but also on the elders of the village. Campaigns like 'Beti-Padhao, Beti-Bachao' not only help in reducing female foeticide but also in spreading the message of educating them. As it is a well know fact that an educated mother educates the whole family and society as a whole on spiritual and intellectual level.

To promote and spread the literacy level among rural people living in the country, PRIs are playing a crucial role in women education. It has been given great importance due to the new rules regarding women representation in panchayats. Furthermore men are also changing their mindset and are marrying the educated girls without taking dowry. It is a progressive sign in Indian male dominated society, where the

men themselves are playing an important role in eradicating this social evil. Minimum education has been made a must for elections in panchayats in a few states like Rajasthan and Haryana. This is a progressive step. Bihar government has also passed amendments making it mandatory for the candidates contesting panchayat polls to have toilets in their houses. These are definitely landmark steps taken by the State Governments to improve the literacy rate as well as awareness about hygiene and sanitation. It is a big relief for women in villages who daily face problems in this regard. Extremely exclusive criteria of minimum education at village level definitely deserve a great applause. It ensures that candidate with basic education are given responsibility so that they discharge duties which befall with them and their post. Apart from this, educated representatives help to reinforce the issues of gender imbalance, poverty, lack of awareness etc at grass root level in the society. It is a known fact that educated ones have better administrative efficiency and are more effective in implementing the government policies in a better way.

To develop rural areas and sustain development is the biggest challenge which arises in front of PRIs. It is a matter of great concern for state as well as for national government. Answer to this challenge lies in one word-education. Healthy environment and quality education are the foundation for sustainable development in rural areas. Without these two components it is really hard and nearly impossible to achieve and maintain the so called development in villages. Lack of awareness and low level of education restricts them in gathering various information and knowledge. Unfortunately sometimes government policies and plans are not implemented properly due to lack of information and awareness about the guidelines. As a result people living in rural areas cannot communicate effectively to the outside world and they are not even in a position to take full advantage of available facilities provided to them. It is a fact that sometimes due to lack of education and awareness even the representatives are not fully aware about the sources of fund, reservation provisions, welfare schemes, subsidies etc.

Although the formation and functions of panchayats in villages are same but still in different states PRIs have performed differently depending on local initiative. They have made significant contribution in different aspects related directly or indirectly to primary education. They have provided school building, drinking water supply, toilets and kitchen in several villages. These are few worth notable steps taken by panchayats in different states and this proves that panchayat leaders or rural representatives are serious about improving and providing primary education in villages. Apart from that it is indeed the duty of village community to involve itself in running these schools and programmes and assume responsibility. All the participants in education system, be it teachers, students, parents or member of community, all should be aware of quality education and its positive impact on the country and its citizens. The main hope of a nation lies in the proper education of its youth. Education is simply the soul of a society as it passes from one generation to another. We all should be trained to use the power vested within us for better future of our real India which lies in our villages.

India is a land of farmers and even in contemporary India, agriculture is the main occupation. It means India is very much an agriculture based economy. So it's obvious that villages play an important role as segments of the national economy by providing agrarian, industrial and other goods for national as well as international market. To match steps with changing scenario of agriculture it is must for villagers to update themselves with current changes.

Educated farmer is definitely better placed than the uneducated one. He is able to understand the present changes in farming and latest techniques of farming –be it thrashing, cutting, ploughing,

irrigating crops, quality of seeds, techniques of better production and schemes launched by state and central government. PRIs play a vital role in spreading the awareness among villagers through education, whether it is primary or adult education, especially among farmers. Awareness camps, seminars, workshop and exhibitions are some unconventional means of educating rural India. To handle and utilise the benefits of advanced gadgets, education is a prerequisite. For example, a rural farmer who has access to modern agricultural tools like fertilisers, tractors, thrashers, and harvesters, must be educated enough to understand the advantages of these tools. Improving agriculture is a must for growth of industries. As agriculture is carried out in villages, education is needed to improve agriculture. Similarly industries need literate labour force. So it is needed to increase the education level of majority of the population in rural areas.

Apart from economic, social and cultural reasons, political reasons are also important to educate rural India. Due to the existence of Panchayati Raj, many political parties have been involved in elections. Only adequate education can make the villagers understand the programmes and principles of the ruling bodies and elect worthy leaders not only at the village level, but also at state and national level. PRIs should try their best to change the mindset of rural people through education, which will lead to a successful and developed nation. Steps should be taken not only by PRIs, but the government should also make an extra effort to increase the levels of education in all sections of rural people including promotion of adult education. As mentioned earlier, educated sections of the society with the help of village administration, should organise seminars, workshops and different awareness programmes from time to time in rural areas, on different issues like empowerment of people (especially women), health, socio-economic issues, gender inequality and female foeticide etc. Panchayats should also keep a check on Anganwadi Centres where informal education is given to toddlers. Good monitoring can also improve the status of education and health in Indian villages. It is also important to critically examine the linkage and coordination between development, administration and panchayati raj department. PRIs have bridged the gulf between the bureaucratic elite and the people. To summarise the whole discussion, we can specifically lay down the reasons for providing basic education by PRIs. As mentioned earlier, Indian Constitution provides the right to education and in this respect, to understand the significance and functioning of such rights; education is a must for every citizen. Major responsibility falls on the shoulders of Panchayats as till date, most of the population still lives in villages.

It can be concluded that, government, NGOs and various political parties, along with Panchayats should organise people-friendly "Awareness Programmes" and educate them to create awareness among the rural people. PRIs are important instruments in removing illiteracy and providing primary education at large. PRIs have generated a new leadership having a modern and pro-social outlook. Finally viewed from the development angle, PRIs have enabled the rural population to cultivate a progressive outlook through educating them and by developing rural India at large. As we all know, rural education and development are important not only for the enhancement of quality of life of rural community, but also for the overall progress and development of the country. Rural development is a comprehensive term and a multidimensional process. By educating rural India, PRIs have definitely affected the intellectual life of the people and helped them to contribute towards the advancement of the society. It is important to keep moving and progressing. It does not matter how slow you go as long as you do not stop. Basically, education is the ability to learn, to analyse, to create, to read and write and most importantly, to think. Education and development for all, is definitely

challenging but it is the right agenda for the coming decades. India will grow only when rural India marches hand in hand with the urban population, to meet the challenges of the 21st century.

References

1. *Rural Development Before and After Independence in India', Article by Puja Mandal , Google Crome, dated:29.8.2017*
2. *Rural Society', Dr. Kumar, Chapter 22,'Rural Education, Social Education', Publ. Laxmi Narain Agrawal Educational Publishers, Agra.*
3. *Bhartiya Samaj me Mahilao ka Vikas', Smt. Manju Sharma, Publ. Raj Publishing House, Jaipur.*
4. *Rural Administration Through Woman Programme'. S. Narayan, Publ. Inter-India Publications, New Dehli.*
5. *Bhartiya Gramin Samajshastra', A.R. Desai,Chapter 15, 'Gramin Shiksha', Publ. Rawat Publications, Jaipur and New Dehli.*
6. *Kurushetra', August 2017, 'Badalata Gramin Parivesh aur Digital Prodhogiki', Sunita Gandhi aur Sakshi Khurana.*

Industrial Scenario of Pali City

Deepak Sharma,
Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The textile industry is the oldest occupation of human civilization as the history of human beings. Cloth manufacturing contains various varieties of different components like silk, rayon, nylon, filament yarn etc. textile industry is not only limited in the northern and western parts of the India but these spreaded all over India. This industry plays a vital role in country's GDP. In total the production of textiles in Rajasthan accounts for 21.96 per cent of the total national production. In Pali city there are five major industrial clusters that cover maximum work of textile in the state. Mandia Road industrial cluster is highly developed area in Pali city with 473 industrial units. Umed Mills is most famous and popular for textile features in and out of the city. CAZRI road industrial area is under deployment as a newly industrial cluster.

keywords : *Textile industry,Energy, RIICO, fuels,Pali.*

The textile industry is as old as the human civilization. Cloth is one of the basic needs of human being. In ancient ages, the cloth was made only from cotton. At present, cloth is made from silk, rayon, nylon, filament yarn, man-made fiber, viscose, staple and polyester etc. Besides this, cloth is prepared by hand process. But in this modern era highly modernized technique and computerised looms are used for the production of cloth. The entire process is being done by high technique machines. Earlier, textile industry comprised of only cloth weaving, but today it includes ginning, reeling, spinning, weaving, processing, sizing, printing and garment manufacturing also. The textile industry plays a vital and significant role in the economy of country. The industrial development of Rajasthan began between 1950 and 1960. Large and small scale industries sprung up in the Kota, Jaipur, Udaipur, Bhilwara and other industrial estates of Rajasthan. The key industries of Rajasthan include textile, rugs, woolen goods, vegetable oil and dyes. Heavy industries include copper and zinc smelting and the manufacture of railway rolling stock. The private sector industries include steel, cement, ceramics and glass wares, electronic, leather and footwear, stone and chemical industries. Textile sector holds for about 20 per cent accountability of investment made in the state. Rajasthan contributes over 7.5 percent of India's production of cotton and blended yarn and over 5 percent of fabrics. The state holds a leading position in spinning of polyester viscose yarn and synthetic suiting (at Bhilwara) and processing, printing & dyeing of low cost, low weight fabric (at Pali, Balotra, Sanganer and Bagru). In total the production of textiles in Rajasthan accounts for 21.96 per cent of the total national production scenario

Table : Distribution of Textile Industries in different localities of Pali city (2012)

S.N.	Location	Number of Units
1	Mandia Road Industrial Area Phase III	473
2	Industrial Area I and II	121
3	Main Mandia Road, Ramdev Nagar, Residential Area, Gandhi Nagar	173
4	Sumerpur Road, Bajrang Bari, Ramleela Maidan, Sojat Road, Village Mandia	95
5	Composite Unit- Maharaja Shri Umaid Mills Ltd., Pali	1
6	Total	860

Source: Master Plan of Pali City

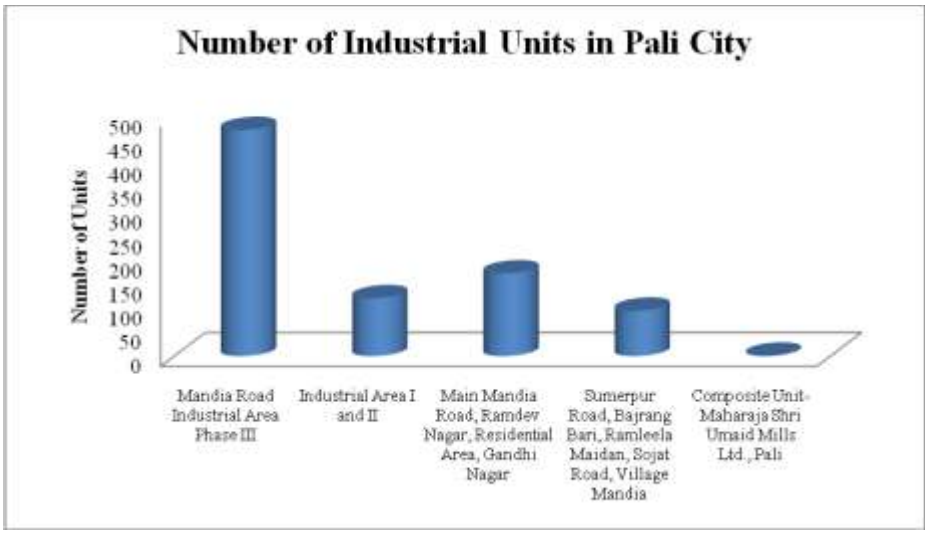

Diagram: Industrial Units in Pali City

There are total 860 industrial textile units in Pali city at different localities. Mandia Road Industrial Area Phase III covers 473 units over whole city. 173 units are lying in main Mandia Road, Ramdev Nagar, Residential Area and Gandhi Nagar. Industrial Area Phase I and II have 121 industrial units that are scattered in the city. Sumerpur Road, Bajrang Bari, Ramleela Maidan, Sojat Road and Village Mandia have 95 units of textile industries. Maharaja Umaid Mills Ltd. is a separate industrial unit in this region. CAZRI Road Industrial Area is newly developed area in the city along the CAZRI Road.

Pali city Cluster background

The origin of the cluster dates back to ancient times when the Chhippas or Rangrej (colouring community) used to Dye dress called "Tool" worn by Muslim ladies. It was in 1940 when a composite mill in the name of Maharaja Shri Ummed Mills was established in Pali and the people in Pali got opportunity to be employed in the sector and learn the tricks of Textile Dyeing and Finishing strangely. The entrepreneurs who once worked for this mill and subsequently started doing jobbing for this mill itself own most of the old units in Pali. The development of the cluster got triggered by visit of traders to the city to deal with Maharaja Shri Ummed Mills, thus providing ready customers for the produce. The textile trading business in the bigger markets like Mumbai, Kolkata, and Chennai is predominantly in the hands of people belonging to the Marwar region. This provided the

entrepreneurs here access to the larger markets and also offered opportunity to network with the traders. Contribution of this mill was immense in the growth of the cluster as it gave local entrepreneurs insight into the technology and process of textile dyeing and printing. Also, the trained manpower was drawn from the pool of workers who once worked for the mill. Ironically, the textile cluster at Pali has grown despite all odds as none of the resources required for textile processing is available locally. The industrial area has no water and all the water required is transported from a distance of over 20 KM. The labour working in the cluster is mostly from outside Pali, at times from as far as Eastern UP and Bihar. Equipment suppliers are all based in Gujarat and Pali does not have local service providers or consultants. Even the Grey and Dye and Chemicals are brought from Maharashtra and Gujarat. Even coal or Residual Pet Coke is not available locally. Only resource available locally is the entrepreneurship of the people, availability of clear sky for over 340 days in a year and good power availability. Availability of a pool of dye masters to process over 400 shades through colour recipe based on experience is another plus for Pali. Initially, Surat used to be the largest processing center for Dyeing and Finishing but a large portion of the job there got outsourced from Pali due to problems like Pollution, Flood, Plague *etc*. Opening of new markets like Africa and popularity of PC Blend, Polyester in African Prints provided the units here with great business opportunity which the entrepreneurs lapped up and grew many folds.

Product manufactured

Initially, the units dyed cotton only. With passage of time, new units started working and the product portfolio also changed with time and demand pattern. The units progressively added dyeing of Voil, Poplin, PC Blend and Polyester in their product ranges. On the basis of end products, the major products of the units here are – Blouse Pieces, Petticoat pieces, Lungies, Sarees, printed Poplin, turbans and African Prints. In fact, Pali is famous for Blouse Pieces. The cluster mainly uses very thin fabric, mostly below 100 grams per meter. The product also is very cheap and caters to the lower strata of the society in some of the backward states.

Classification of Units

S.N.	Unit Class	Distribution (in per cent)
1	Hand Process	60
2	Power Process	28
3	Trading Co.	12

Source: Master Plan of Pali City

Diagram : Classification of Units in a industry

Production capacity detail

Most of the units operate round the clock. The units involved in power process produce anywhere between 40000 metres to 50000 metres per day. The production of hand process units is very less and would be in the range of 10000 to 15000 metres per day. However, as per the situation analysis, the total daily production of the cluster is to the tune of approx. 5500000 RM per day. Going by the production levels, Pali happens to be one of the biggest centers for processing of textiles.

Industrial Consumers in Clusters

The different types of the consumers are existed in Pali city. 5 major clusters are in the city.

Industrial Consumer List in Pali City

S.N.	Industrial Area	Number of Consumers	Percentage to total
1	Mundia Road	532	48.76
2	Phase I and II	194	17.78
3	Punayata Road	129	11.82
4	Phase III and IV	236	21.63
5	Total	1091	100.00

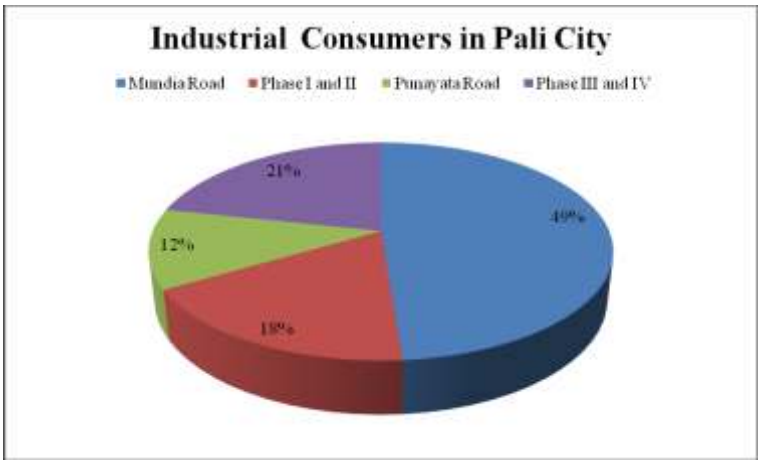

Diagram: Industrial Consumers

There are total 1091 industrial consumers in Pali city till June, 2016. The maximum numbers of consumers are in Mundia Road that are the 48.76 per cent to total consumers. Phase III and IV industrial area has 21.63 per cent consumers. Phase I and II area has 11.82 per cent to total and Punayata road covers 11.82 consumers to the total consumers of the city.

Energy Situation and Supply in the cluster

The textile Dyeing and Finishing requires use as of heat as well as Electricity for processing. Heat is used for dye application and dye fixation so as to ensure colour fastness. Heat is also required for Drying, Heat Setting, Colour development, Sanforizing and special finishes. Electricity is required for all the processing in power process units. Over 51 Crore Kwh electricity was used in the year 2007-08. Other fuels used were Diesel, Wood, Lignite, Coke, Bio Mass Briquettes *etc*.

Energy Supplied to Industrial Areas in Pali City

S.N.	Industrial Area	Energy Supplied (in LU)	Percentage to total
1	Mundia Road	102.95	38.35
2	Phase I and II	51.42	19.18
3	Punayata Road	64.57	24.05
4	Phase III and IV	49.46	18.42
5	Total	268.4	100.00

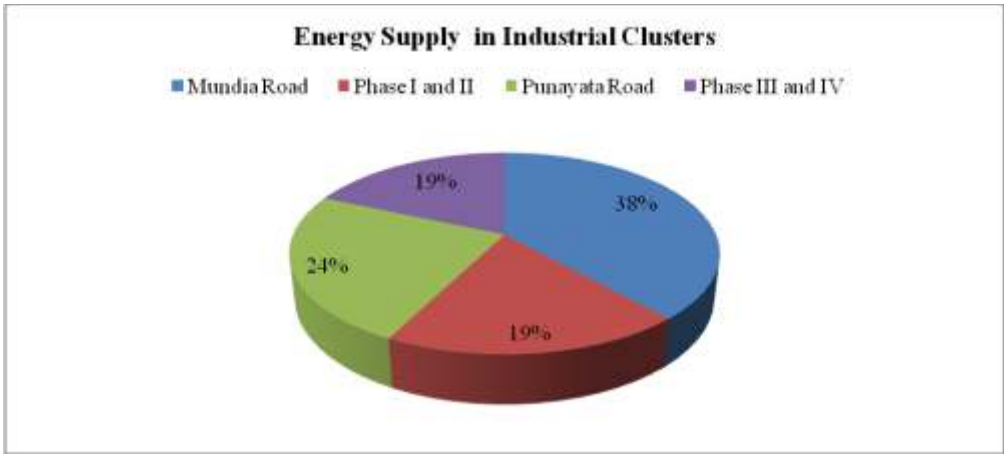

Diagram: Energy Supplied in Industrial Areas of Pali City

Supply of lignite has now been discontinued and hence units are purchasing Residual Pet Coke now. Mundia road cover the maximum energy supply to total of the city that is 38.35 per cent. Phase I and II are the industrial area where minimum energy supplied, only 18.42 per cent to total.

Types of fuels used and prices

The units in the cluster have mainly Boilers and Thermopaks for catering to the heating requirements. The units presently use Steam Coal, Residual Petcoke, Wood and Biomass Briquettes for heating application. About a year ago, the units were using Lignite brought from Gujarat. However, with change in policy of not selling Lignite outside Gujarat, the units had to convert their Boilers and Thermopaks to Residual Pet Coke. Petroleum based Fuels, Gases or Biomass Gas is not at all used. One of the units has installed solar water heater for meeting its requirement of hot water. Typically, RPC is available at a landed price of Rs. 7000/- to Rs. 7500/- per MT. The landed costs of other fuels are Coal – Rs. 4500/- per MT (4000 CV), Biomass Briquettes – R. 3500/- MT, Wood Rs. 2500/- to Rs 3500 per MT.

Industrial Development in Pali City

Pali is famous for its textile industries. Some new industries have also been developed like marble cutting, marble finishing, etc. in the industrial areas in Pali. One of the biggest composite textile mills of India 'M/s Maharaja Shri Ummaid Mills' (established in the year 1940) is also situated at Pali. However, the industry is not within the limits of the CEPI study and hence not covered in this study. The main industrial areas to be considered in this Cluster include Mandia Road, Punayata Road and Sumerpur Road. All these three industrial areas are located towards the South of the City; in close proximity to the Bandi River.

Industrial Area under RIICO in Pali City (2016)

Industrial Area	Planned		Developed		Allotted	
	Plots	Area	Plots	Area	Plots	Area
Pali Phase I	71	15.53	71	15.53	71	15.53
Pali Phase II	124	68.6	124	68.6	124	68.6
Mandia Road	522	268.25	522	268.25	521	268.12
Pali Phase IV	210	73.73	210	73.73	130	64.47
Industrial Estate Pali	38	2.21	38	2.21	38	2.21
Punayata Road Pali	334	139.40	334	139.40	271	118.94
Naya Goan Pali	511	162.84	511	162.84	165	37.31

Source: R.M. RICCO LTD., Pali

The PI of any industrial sector is a number ranging from 0 to 100. Increasing value of PI denotes the increasing degree of pollution load from the industrial sector. Based on the on 'Range of Pollution Index', industrial sectors have been categorised into four colours category. Under the new categorisation system,

- **Red category:** PI score of 60 and above. These are severe polluting industries. Total 60 industries including sugar, thermal power plants, paints and others are under in it.
- **Orange category:** PI score of 41 to 59. They moderately polluting industries. Total 83 industries like coal, washeries and automobile servicing are placed under it.
- **Green category:** PI score of 21 to 40. They are significantly low polluting industries. Total 63 industries are under in it.
- **White category:** PI score below and up to 20. They are non-polluting industries. Total 30 industries are under in it. These industries are exempted from requirement of environmental clearance.

The industrial scenario of Pali is dominated by small scale textile units. The RSPCB has indentified about 600 units in the industrial area of Pali. The details are as under:

Details of the Industries in Pali Industrial Area

S.N.	Name of Industrial Area	Total Units	Textile Units	Red Category Textile Units	Orange Category Textile Units
1	Phase I and II	78	78	70	7
2	MRIA	350	335	285	64
3	Punayata	191	191	189	2
4	Mahavir Udyog	9	9	4	5

Source: Master Paln of Pali City

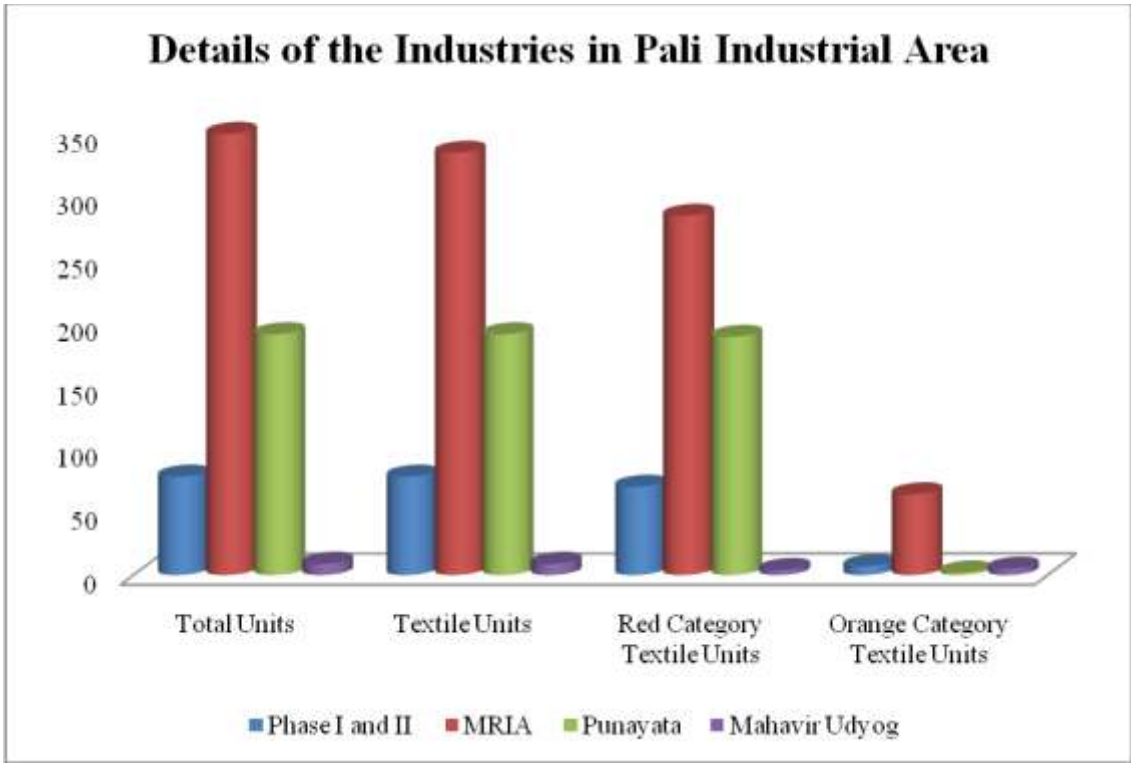

Diagram : Industries in Pali City

There are approximately 364 units in textile dyeing and printing units in this cluster who are engaged in manufacturing. Rajasthan State Industrial Development and Investment

Status of Development of Various Industrial Areas in Pali Industrial Cluster

S.N.	Location	Land Acquired (Acres)	Developed Land (Acres)	Saleable Land (Acres)	No. of Plots Planned (Nos.)	Plots Allotted (Nos.)	Vacant Area (Acres)	Vacant Plots (Nos.)
1	Mandia Road	360	360	265.38	528	524	2.68	4
2	Punayata Road	228.04	228.04	147.23	304	269	13.26	35

Source: RIICO, Pali

Types of Industries

Major identified industrial units in Pali Cluster are textiles and dyeing industries. The main reason for such a large number of textile units is the availability of cheap labour during peak season – April to October and the suitability of the groundwater for dyeing and block printing.

Types of Industries in Pali Industrial Area

S.N.	Type of Product	Mandia Road Industrial Area				Punayata Road			
		Units	Orange Unit	Red Unit	Others	Units	Orange Unit	Red Unit	Others
1	Textile, Yarn, Thread Manufacturing	335	53	282	0	191	02	189	0
2	Plastic, Polymers	4	3	0	1	0	-	-	-
3	Chemical, Dyes	11	8	3	0	0	-	-	-
	Total	350	64	285	1	191	02	189	0

Source: Regional Office, Pali, RSPCB

Table gives a brief introduction of the type and number of industries in the Pali Industrial Cluster. Mandia Road is the major Industrial Area and has 350 units; out of which 335 are Textile units. Nearly 80 per cent of the industries in Mandia Road are Red Category units. Punayata Road Industrial Area has 191 units, all of which are Textile units falling in the Red Category. There are no highly polluting industries in this Cluster as per the CPCB categorization.

References

1. *Chatterjee A., (2009) - "Sixty Years of Indian Industry – 1947 to 2007, Growth, Reforms and outlook" - p 20, 21.*
2. *Datt R., Sundharam K. P. M., (2009), - "Indian Economy" -S. Chand & Company Ltd. New Delhi-110055 – p632.*
3. *Datt R., Sundharam K. P. M., (2007), - "Indian Economy" -S. Chand & Company Ltd. New Delhi-110055 – p116, 177, 180, 181,184.*
4. *Economic Survey of Maharashtra, 2009-10, p 102-119.*
5. *Government of India, (1969) : Report of the Industrial Licensing Policy Inquiry Committtee, July, p.12*
6. *Hazari R. K., (1967), – Industrial Planning and Licensing Policy, Final Report.*

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees - 1500 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1000/-)	(Rs. 1800/-)	(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No._____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly) i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma ,OBC Bank, Adarsh Nagar, Jaipur
SB A/C NO.06722151002965
IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर